भाषा-विज्ञान-सार

लेखक

रामपूर्ति मेहरोत्रा

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

मुद्रक : शंभुनाथ वाजपेयी, नागरीमुद्रण, वाराणसी ।

पंचम संस्करण : २१०० प्र०, सं० २०२४

मूल्य : ३.००

प्राक्कथन

इस पुस्तक के प्रायः सभी लेख नागरीप्रचारिणी-पत्रिका, हिंदुस्तानी, सम्मेलनपत्रिका, साहित्यसंदेश, विशालभारत, वीणा, माधुरी, जीवनसाहित्य, हिंदीपत्रिका, इत्यादि हिंदी की उच्चकोटि की पत्रिकाओं में सन् १९४० से १९४२ तक प्रकाशित हो चुके हैं। अतः इनकी उपयोगिता पाठकों को पहले ही विदित हो चुकी है। खेद है कि कागज संबंधी कठिनाइयों के कारण यह इससे पूर्व प्रकाशित न हो सकी।

अँगरेजी, जर्मन, फ्रेंच, इत्यादि पाश्चात्य भाषाओं में तो भाषा-विज्ञान की अनेक पुस्तकें हैं, परंतु खेद का विषय है कि हमारी मातृभाषा हिंदी में इस विषय की पुस्तकें इनी गिनी ही हैं और उनमें से कोई भी एक पुस्तक ऐसी नहीं है जिससे विद्यार्थियों की समस्त कठिनाइयों का निवारण एक साथ होकर उन्हें पूर्ण संतोष हो सके। मैंने प्रस्तुत पुस्तक द्वारा इसी अभाव की अंशतः पूर्ति करने की चेष्टा की है। भाषावैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझाने तथा विद्यार्थियों की कठिनाइयों को दूर करने के लिये केवल सरल तथा सुबोध भाषा का ही प्रयोग नहीं किया गया है अपितु प्रत्येक विषय की विभिन्न उदाहरणों द्वारा इतनी विस्तृत व्याख्या तथा विवेचना की गई है कि वह पूर्णतः स्पष्ट हो जाय और विद्यार्थी उसे सरलता से हृदयंगम कर सकें। उदाहरण यथासंभव भारतवर्ष की भाषाओं के ही दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त विषय अधिक प्राचीन न होने पर भी परिभाषिक शब्द यथासंभव हिंदी के ही प्रयुक्त किए गए हैं, उनके अंगरेजी तथा संस्कृत रूपों को यथाशक्ति बचाया गया है। हाँ, कहीं कहीं सुविधा के विचार से हिंदी के साथ साथ कोष्ठक में अँगरेजी शब्द भी दे दिए

गए हैं यथा उपमान (analogy), टीका (Key), अक्षर (syllable) इत्यादि ।

यद्यपि इस पुस्तक का उद्देश्य भाषाविज्ञान के मूल सिद्धांतों का दिग्दर्शन करानामात्र ही है, तथापि विद्यार्थियों से संबंध रखनेवाले मुख्य मुख्य विषयों को यथासंभव अछूता नहीं छोड़ा गया है। संक्षेप में परंतु स्पष्टतः सभी विषयों की व्याख्या करके पुस्तक का नाम 'भाषा-विज्ञान-सार' सार्थक सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि लेखों के शीर्षक कहीं कहीं प्राचीन से प्रतीत होते हैं, तदपि मैंने भाषाविज्ञान का इतिहास, भाषा तथा भाषण, भाषाओं का वर्गीकरण, ध्वनियों का इतिहास तथा वर्गीकरण, स्वदेशी तथा विदेशी हिंदी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन, ध्वनिविकार, रूपविकार, अर्थविकार इत्यादि प्रमुख विषयों को यथाशक्ति मौलिक रूप देने का प्रयत्न किया है। शायद लिपि-संबंधी सामग्री का अभाव देखकर आप को आश्चर्य होता होगा, परंतु चूँकि विषय विस्तृत था और इधर इस पुस्तक के निकलने में विलंब होने की आशंका हुई, अतः उसे एक पृथक् पुस्तक के रूप में निकालना ही उचित समझा गया, जो 'लिपिविकास' के नाम से गत वर्ष साहित्यरत्न भंडार, आगरा से प्रकाशित हो चुकी है। इसमें लिपि का आविष्कार तथा विकास, भारत की प्राचीन लिपियाँ, देवनागरी तथा अन्य लिपियाँ, इत्यादि विषयों की गवेषणात्मक ढंग से विस्तृत विवेचना की गई है।

उक्त पुस्तक के लिखने में मुझे अनेकों विद्वानों तथा ग्रंथों से सहायता लेनी पड़ी है, जिनमें डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० श्यामसुंदरदास, डा० धीरेंद्र वर्मा, आई० जे० एस० तारापुरवाला, गुणे, मैक्समुलर, कैलाग, बीम्स; ग्रियर्सन, हार्नले, इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। मैं उनका तथा अन्य सब महानुभावों का अत्यंत कृतज्ञ हूँ और उन्हें धन्यवाद देता हूँ। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या (कलकत्ता विश्वविद्यालय), का जिन्होंने प्रथम अध्याय का अवलोकन

करने तथा यत्रतत्र संशोधन बताने की कृपा की, तथा प्रोफेसर सुब्रह्मण्य अय्यर (लखनऊ विश्वविद्यालय) का जिन्होंने मेरे कई एक लेखों को पढ़ने और मेरा उत्साह बढ़ाने की कृपा की है, मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। अंत में मैं परम पूज्य पं० रामनारायणजी मिश्र तथा सभा को, जिन्होंने अपने यहाँ से इस पुस्तक को प्रकाशित करके मेरा मान बढ़ाया, बिना हार्दिक धन्यवाद दिए नहीं रह सकता।

यदि यह पुस्तक भाषावैज्ञानिकों, विद्यार्थियों तथा अन्य पाठकों का कुछ उपकार कर सकी, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा। यदि सुविज्ञों को इसमें कोई त्रुटि दिखाई दे, तो वे कृपया मुझे सूचित करने का कष्ट करें, जिससे आगामी संस्करण में उन्हें दूर किया जा सके।

प्रयाग
२०-१२-४६ } —राममूर्ति नेहरोत्रा, एम० ए०, बी० एड०

संकेत शब्द

अ० = अरबी
अं० = अंग्रेजी
आइस = आइसलैंडिश
इटै० = इटैलिक
ई० प० = ईसवी पश्चात्
ई० पू० = ईसवी पूर्व
उ० = उत्तरी, उर्दू
उ० ज० = उच्च जर्मन
उ० पु० = उत्तम पुरुष
ए० से० = एंग्लो सेक्सन
गा० = गाथिक
गुज० = गुजराती
ग्री० = ग्रीक
च० = चतुर्थी
ची० = चीनी
ज० = जर्मन
जि० = जिंद
डा० = डाक्टर
ता० = तालीम
तु० = तर्की
ते० = तेलुगु
द० = दक्षिणी
न० = नंबर
प० = पश्चिमी
प० हिं० = पश्चिमी हिंदी
पा० = पाली
पुर्त० = पुर्तगाली
पू० = पूर्वी
पू० हि = पूर्वी हिंदी
पं० = पंजाबी
प्र० पु० = प्रथम पुरुष
प्रा० = प्राकृत
प्रा० अं० = प्राचीन अंग्रेजी
फा० = फारसी
फ्रें० = फ्रेंच
बं० = बंगला
बो० = बोली
ब्रज = ब्रज भाषा
म० = मराठी
मुं० = मुंडा
लै० = लैटिन
ष० = षष्ठी
शता० = शताब्दी
सं० = संस्कृत
स्पे० = स्पेनिश
हिं० = हिंदी

परिभाषिक शब्द

अक्षर (वर्ण)	Letter	एकरूपता	Assimilation
अघोष	Unvoiced,	एकाक्षरी	Mono-syllabic
	Hard	ओष्ठ्य	Labial
अनुनासिक	Nasal	कंठ्य	Guttral, Velar
अपवाद	Exception	कला	Art
अल्पप्राण	Unaspiate	कण्ठपिटक	Larynx
अनेकाक्षरी	poly. syllabic	कीलाक्षर	Cuneiform
अनुकरणात्मक	Onomatopoetic	चरमावयव	Unit
अर्थमात्र	Semanteme	चित्रलिपि	Hieroglyphice
अर्थावनति	Deteriortion	तालव्य	Palatal
	of meaning	दंत्य	Dental
अर्थोन्नति	Elevation	द्वित्व	Duplication
	of meaning	दीर्घ	Long
अर्थापदेश	Euphemistic	ध्वनिनियम	phonetic law
	expression	धातु	Root
अमूर्तिकरण	Abstraction	नाद	Voice
अर्थसंकोच	Contraction of	परसर्ग	pcst-position
	meaning	प्रत्यय	Sufflx
अर्थविस्तार	Expansionof	प्रतीकात्मक	Conventional
	meaning	प्रथम वर्ण	First sound
अर्थभेद	Change of	परिवर्तन	shifting
	meaning	प्राचीनविधान	Old Testament
अपश्रुति	Ablant		
आदि स्वरागम	prothesis	पार्श्विक	Lateral
ईषत्-संवृत्	Half-closed	पारिवारिक	Genealogical

ईषद्विवृत्	Half-open	बल	Stress
उपसर्ग	preposition	बोली	Dialect
उपमान	Analogy	बौद्धिकनियम	Intellectual law
उत्क्षिप्त	Flapped		
ऊष्म	Sibilant	भाव	Idea
भाषाविज्ञान	philology	विश्लेषणात्मक, व्यवहित	Analytic
भाषण	Speech		
भाषणावयव	Mechanism of Speech	व्युत्पत्ति	Ftemology
		व्यावहारिक	practical
मध्यस्वरागम	Anaptyxis	व्यासप्रधान	Isolating
महाप्राण	Aspirate	श्वासनलिका	Wind-pipe
मानवविज्ञान	Ethnogy		
मिथ्यासादृश्य	False analogy	श्रुति	Glide, Epenthesis
मूर्धन्य	Cerebral		
रचनात्मक	Structural	सघोष	Voiced, Soft
रूपमात्र	Merpheme	संघर्षी	Fricative
रूपविचार	Morphology	समीकरण	Assimilation
कुंठित	Rolled	समास	Compound
लोप	Elison	संहित, संश्लेषणात्मक	Synthetic
वर्ण	Letter		
वर्गीकरण	Classification		
वर्त्स्य	Alveolar	स्वर, सुर	Accent
विपर्यय	Metathesis	स्पर्शी	Explorive
विषमीकरण	Dissimilation	सादृश्य	Analogy
विभक्ति	Inflexion	सांकेतिक	Symbolic
विवृत	Ohen	ह्रस्व	Short

विषयसूची

भाषा-विज्ञान-सार

अध्याय १

प्रारंभिक ज्ञान

(क) भाषाविज्ञान और उसका महत्त्व

भाषाविज्ञान—मनुष्य मननशील है। वह जिन चीजों के संपर्क में आता है उनको अपने मनन का विषय बनाकर उनका व्यवस्थापूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। व्यवस्थापूर्ण निश्चित ज्ञान को ही विज्ञान या विशेष ज्ञान कहते हैं। भाषा मनुष्य के मानसिक तथा सामाजिक जीवन के लिये अत्यंत आवश्यक वस्तु है। मानव जीवन का जितना विकास हुआ है, वह पारस्परिक सहकारिता से ही हुआ है और यह विना भाषा के असंभव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य था। भाषा मनुष्य के लिये ईश्वर की बहुत बड़ी देन है। यह एक चमत्कार है। इस चमत्कारपूर्ण देन के ऊपर भी मनुष्य ने विचार किया है। भाषा-विज्ञान उसी विचार का फल है।

भाषाविज्ञान विज्ञान है या कला?—यह तो उसके नाम से ही प्रकट है कि यह विज्ञान है, कला नहीं। अब प्रश्न रहा कि यह है क्या? भाषाविज्ञान में सामान्यतया भाषा की उत्पत्ति, परिवर्तन और विकास आदि का और विशेषतया किसी भाषा-विशेष की रचना और इतिहास का विचार और भाषाओं या प्रादेशिक भाषाओं की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक विवेचन और वर्गीकरण किया जाता है, अर्थात् भाषाविज्ञान में भाषा के भिन्न भिन्न अंगों तथा स्वरूपों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। हमने किस प्रकार बोलना सीखा, हमारी बोली का किस प्रकार विकास हुआ, हमारी बोली और भाषा में समय समय

पर किस प्रकार और क्या क्या परिवर्तन हुए, हमारी भाषा में विदेशी भाषाओं के शब्द किस प्रकार और किन किन नियमों के अधीन होकर आए, किसी भाषा विशेष की प्राचीन, अर्वाचीन तथा नवीन अवस्थाओं में क्या भेद है, भिन्न भिन्न देशों तथा जातियों की भाषाओं में क्या संबंध है, इत्यादि विषयों का भाषाविज्ञान में समावेश किया जाता है।

भाषाविज्ञान का क्षेत्र—भाषाविज्ञान का सबंध भाषा से है। प्रायः लोग पशुपक्षियों की बोली को भी भाषा के अंतर्गत मान लेते हैं, परंतु यह ठीक नहीं, क्योंकि भाषा केवल वही व्यक्त ध्वनियाँ कहला सकती हैं जो सप्रयोजन हों, जैसे मनुष्यों की भाषा। पशुपक्षियों के के ध्वनि संकेत सप्रयोजन नहीं होते। वे सहज और स्वाभाविक होते हैं। अतः भाषाविज्ञान का विषय केवल मानवी भाषा है, पशुपक्षियों के ध्वनिसंकेत नहीं।

भाषाविज्ञान का एक उद्देश्य किसी भाषा विशेष का इतिहास और उसका मूल रूप ज्ञात करना भी है। अतएव भाषावैज्ञानिक को आधुनिक और प्राचीन सभी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना पड़ता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान का संबंध केवल जीवित भाषाओं से ही नहीं, अपितु मृत भाषाओं से भी है।

असभ्य जातियों की भाषा नदी के समान है। उसका विकास प्राकृतिक रूप से होता है और सभ्य जातियों की भाषा उस नदी से बने हुए सरोवर के समान है जो सुंदर होते हुए भी कृत्रिम है। असभ्य और ग्रामीण जातियों की भाषा का विकास सहज और स्वाभाविक रूप से होता है और उसमें परिवर्तनशीलता, जो कि भाषा का जीवन है, बनी रहती है, जब कि सभ्य जातियों की भाषा पर साहित्य का प्रभाव पड़ता है और उसकी परिवर्तनशीलता नष्ट हो जाती है। इस प्रकार भाषाविज्ञान की दृष्टि से असभ्य और ग्रामीण मनुष्यों की भाषाएँ सभ्य मनुष्यों की भाषाओं से अधिक

उपयोगी और आवश्यक हैं। अतएव भाषाविज्ञान में सभ्य और असभ्य सभी जातियों की भाषाओं का विचार करना पड़ता है।

१. *भाषाविज्ञान का ज्ञान के विभागों से संबंध*—व्याकरण से संबंध—व्याकरण भाषा के तात्कालिक स्वरूप और नियमों को बताता है, परंतु यह नहीं बताता कि भाषा को वह रूप कैसे प्राप्त, हुआ? वह नियम कैसे बना? यह कार्य भाषाविज्ञान करता है। वह व्याकरणसिद्ध नियमों के कारणों को भी बताता है। उदाहरणार्थ व्याकरण यह बताता है कि संज्ञा शब्दों में 'आ' विभक्ति लगाने से तृतीया एकवचन रूप बन जाता है, जैसे हस्तिन् से हस्तिना, इसी प्रकार हरि से हरिणा, वारि से वारिणा, परंतु यह नहीं बताता कि हरि या वारि में 'ण' न होते हुए भी 'ण' कहाँ से आ गया। यह भाषाविज्ञान बताता है—इसका कारण है उपमान या मिथ्यासादृश्य। इसी प्रकार कर्मन से कर्माणि तो ठीक है, परंतु गृह से गृहाणि कैसे बना? यह भाषाविज्ञान ही बताता है। अतः भाषाविज्ञान व्याकरण का व्याकरण है।

मनोविज्ञान से संबंध—भाषाविज्ञान का विषय है भाषा। भाषा का संबंध विचारों से है और विचारों का मन या मस्तिष्क से। मन या मस्तिष्क मनोविज्ञान के विषय हैं। अतः मनोविज्ञान और भाषाविज्ञान में घनिष्ट संबंध स्थापित हुआ। शब्दों में जो अर्थपरिवर्तन होते हैं उनके कारण और स्वरूप आदि को समझने के लिये भाषाविज्ञान को मनोविज्ञान की सहायता लेनी पड़ती है।

साहित्य से संबंध—भाषाविज्ञान का एक उद्देश्य किसी भाषा का इतिहास और उसके मूल रूप का ज्ञान प्राप्त करना भी है। भाषा और उसके रूपपरिवर्तन का ज्ञान प्राप्त करानेवाली समस्त सामग्री हमें साहित्य में मिलती है। साहित्य किसी भाषा की अमर कृति है। यदि किसी भाषा में साहित्य न हो, तो हम

उसके इतिहास का पता नहीं लगा सकते और यदि इतिहास का पता न लगेगा तो भिन्न भिन्न शब्दों में और उनके रूपों में क्या और कैसे परिवर्तन हुए, इसका ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार यदि किसी भाषा में साहित्य न हो तो उसका भाषाविज्ञान भी शून्य होगा। उदाहरणार्थ यदि संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश आदि में साहित्य न होता, तो भाषाविज्ञान इतनी उन्नति न कर पाता। ऋग्वेद की भाषा से पूर्व का कोई साहित्य न होने के कारण उस समय का भाषाविज्ञान भी कुछ नहीं है। साहित्य भाषाविज्ञान का मुख्य आधार है।

मानवविज्ञान से संबंध—मानवविज्ञान का मुख्य विषय यह है कि मनुष्य ने प्रारंभिक अवस्था से वर्तमान अवस्था तक किस प्रकार उन्नति की, उसका विकास किस प्रकार हुआ। यह उन्नति दो प्रकार की है—(क) स्वाभाविक या प्राकृतिक (ख) सांस्कृतिक। संस्कारजन्य उन्नति यह बताती है कि मनुष्य की रहनसहन, बातचीत, लेखनकला आदि का विकास किस प्रकार हुआ। भाषा और लेखनप्रणाली की उत्पत्ति और विकास भाषाविज्ञान के भी अंग हैं। अतः मानवविज्ञान और भाषाविज्ञान में घनिष्ट संबंध है।

इतिहास से संबंध—राजनैतिक परिवर्तनों और विप्लवों का प्रभाव भाषाओं पर भी बहुत कुछ पड़ता है। उदाहरणार्थ अपभ्रंश के देशव्यापी होने का कारण आभीरों का प्रभुत्व था; हमारी बोलचाल की भाषा में उर्दू, फारसी और अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग का कारण यथा समय मुसलमानों और यूरोपियनों के साथ हमारा संसर्ग ही है।

समाज से संबंध—भाषाविज्ञान का मुख्य विषय भाषा है और भाषा समाजसापेक्ष है। भाषा समाज का दर्पण है। राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति का भाषा पर बहुत कुछ प्रभाव

पड़ता है। भाषाविज्ञान जातियों का प्राचीन इतिहास अर्थात् उनकी सभ्यता का विकास आदि बताता है।

भूगोल से संबंध—किसी देश की जलवायु का मनुष्यों के शरीर के अवयवों पर, विशेषकर वाग्यंत्र पर, और शरीर अवयवों का भाषा पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इससे ध्वनि विकार होते हैं जिनका विवेचन भाषा-विज्ञान का एक मुख्य अंग है। अतः भूगोल और भाषा-विज्ञान में स्पष्ट संबंध है। उदाहरणार्थ अँग्रेज 'त' की जगह 'ट'; स्काच अल्पप्राण को महाप्राण, मुख्यतया 'ट' को 'ठ' और बंगाली 'स' को 'श' बोलते हैं। सबका कारण जलवायु की विभिन्नता और वाग्यंत्रों की गठन है।

2. *भाषाविज्ञान का महत्त्व तथा उपयोगिता*—भाषाविज्ञान हमारी भाषाविषयक स्वाभाविक ज्ञानपिपासा को शांत करता है और भाषा के स्वभाव, जीवन, उत्पत्ति, विकास आदि पर प्रकाश डालता है। भाषाविज्ञानी हमको समझाता है कि किस प्रकार संसर्ग द्वारा भाषा-क्रिया का विकास और उससे वाक्यों की और वाक्यविग्रह से शब्दों की उत्पत्ति हुई, किस प्रकार रंगबिरंगे चित्रों से वर्णों की और उनसे लिपिप्रणाली की उत्पत्ति हुई, और किस प्रकार शब्दों और वाक्यरचना में समानता होने पर भाषाओं का भिन्न भिन्न वर्गों में विभाजन हुआ।

वास्तव में भाषाविज्ञान भाषाओं और शब्दों का जीवनवृत्त है। भाषाविज्ञान यह बताता है कि एक भाषा मृत और दूसरी जीवित क्यों है। उदाहरणार्थ एक ही माँ वैदिक भाषा की दो पुत्रियों में से एक, उसके साहित्यिक रूप से निष्क्रमित संस्कृत बाँझ और दूसरी उसके कथ्य-रूप से निष्क्रमित प्राकृत संतानवती क्यों हुई, एक ही खड़ीबोली की दो बेटियों, उच्च हिंदी (खड़ीबोली) और उर्दू ने दो विरुद्ध धर्म, हिंदू और इस्लाम कैसे ग्रहण किये? कभी कभी शब्दों के इतिहास का पता

लगाने में बड़ी मनोरंजक बातें ज्ञात होती हैं। उदाहरणार्थ एक ही शब्द 'काम' के इच्छा या 'कामदेव' और 'कार्य' दो बिलकुल भिन्न अर्थ कैसे हुए। 'भला' और 'भद्दा' एक ही शब्द 'भद्र' से निकलने पर भी अर्थ में विरोधी कैसे हुए। 'उपाध्याय' 'ओझा', 'अध्यापक' 'भद्र' 'बापू' 'बाबू', 'हिंस्र' 'सिंह', कैसे बन गए?

भाषाविज्ञान से व्याकरण के अध्ययन में बड़ी सहायता मिलती है। हम तद्भव शब्दों को उनके तत्सम रूपों के साथ रखकर भली भाँति समझ सकते हैं। जैसे भात भक्तम्, बात-वार्ता, ओदा आर्द्र, ईंधन-इंधन, निगलना-निगलति, छकड़ा-शकट, छिलका शल्क, इत्यादि। नवीन रूपों को समझने के लिये प्राचीन रूपों की खोज करनी पड़ती है। इस प्रकार हम प्राचीन भाषाओं का भी बड़ा सुंदर व्याकरण तैयार कर सकते हैं।

भाषाविज्ञान द्वारा एक भाषा सीखने पर उससे संबंधित उसी परिवार की दूसरी भाषा सरलता से सीखी जा सकती है, जैसे वैदिक संस्कृत और जिंद दोनों परस्पर बहुत मिलती जुलती हैं और उच्चारण में जो थोड़ा बहुत भेद है वह निश्चित नियमों के अनुसार है। अतः उन नियमों को ध्यान में रखकर एक भाषा का ज्ञाता दूसरी सरलता से सीख सकता है। इसी प्रकार संस्कृत और लैटिन का भी संबंध है और संस्कृत का ज्ञाता लैटिन सरलता से सीख सकता है।

भाषा और समाज का घनिष्ठ संबंध है। किसी जाति की सभ्यता, उसकी सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था और भाषा में अटूट संबंध है। सभ्यता की उन्नति के साथ विचारों की वृद्धि और विचारों की वृद्धि के साथ उनके द्योतक नए नए शब्दों की उत्पत्ति होती है। अतः जब हम किसी भाषा का इतिहास ज्ञात करते हैं, तो शब्दों के इतिहास से विचारों का इतिहास और उसके द्वारा किसी जाति की सभ्यता का पता चलता है। इस प्रकार यदि हम अनुसंधान करते जायँ, तो मूल जातियों की सभ्यता का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जनविज्ञान की नींव इसी प्रकार

पड़ी। भारत और यूरुप की मूल जातियों की दशा का ज्ञान भाषाविज्ञानियों ने भारत तथा यूरुप की भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ही प्राप्त किया है।

प्राचीन भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन में हमको पुराण और धार्मिक ग्रंथों का भी अवलोकन करना पड़ता है जिनसे हमको मनुष्यों के धार्मिक विचारों तथा पौराणिक गाथाओं के स्वभाव, उत्पत्ति, विकास आदि के विषय में बहुत सी बातें ज्ञात हो जाती हैं। मतविज्ञान और पुराणविज्ञान की नींव इसी प्रकार पड़ी है।

इधर भाषाविज्ञान में जो महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है वह है ध्वनितत्त्व की उन्नति। सूक्ष्म यंत्रों की सहायता से ध्वनियों का गहरे से गहरा विवेचन किया जा सकता है। आज उच्चारण में होनेवाले वायुकंपन गिने जा सकते हैं, उदात्तादि स्वरों में ध्वनि के उठने और गिरने के आपेक्षिक तारतम्य की माप की जा सकती है, वर्णों के मध्य में आने वाली क्षणिक श्रुतियों का स्वरूप निर्धारित किया जा सकता है और विद्यार्थी शिक्षक के उच्चारण को ध्यानपूर्वक सुनकर अनुकरण करने के अतिरिक्त यह भी जानता है कि किसी वर्णविशेष के उच्चारण में उसके उच्चारणोपयोगी शरीर अवयवों को किस स्थिति में रक्खे। विदेशी भाषाओं की दोषयुक्त लेखनप्रणाली के ठीक ठीक उच्चारण के लिये अनेकों phonetic Readers बन गई हैं। आजकल का विद्यार्थी 'संशय' और 'नहीं' के 'अनुस्वार' (ं) का भेद, examination और box के सघोष और अघोष X का भेद आदि सूक्ष्म बातें भली भाँति जानता है।

३. (ख) भाषाविज्ञान का इतिहास

भारतवर्ष विद्या तथा सभ्यता का प्राचीन केंद्र रहा है। भाषाविज्ञान की नींव भी यहीं पड़ी। प्राचीन काल में विद्याध्ययन धार्मिक

कारणों से होता था, वेदों में बहुत प्राचीन काल में ही बहुत कुछ पवित्र साहित्य संचित हो चुका था। वे अनादि समझे जाते थे। उनकी भाषा में किसी भी प्रकार का विकार अथवा परिवर्तन लोगों को सह्य न था। समय बीतने पर जब वैदिक ऋचाओं की भाषा को लोग विस्मरण करने लगे, तो धर्म के कट्टर पक्षपातियों ने इस प्रवृत्ति को रोकने का प्रयत्न किया और वैदिक भाषा को बोधगम्य बनाने तथा शुद्ध रखने के लिये कुछ व्याकरणसंबंधी नियम बनाए जिनसे भाषाविज्ञान की नींव पड़ी और आगे चलकर व्याकरण का पूर्ण विकास हुआ।

उधर यूनान भी प्राचीन सभ्यता का केंद्र रहा है। वहाँ प्लेटो, अरिस्टाटिल आदि अनेक विद्वानों ने ग्रीक भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया। इनकी देखा देखी रोमवालों ने भी लैटिन भाषा का विश्लेषण किया। इसी समय यूरुप में ईसाई धर्म का प्रचार होने से इस अध्ययन की तरंग इतनी बढ़ी कि अनेक यूरोपीय विद्वान् केवल पाश्चात्य भाषाओं के अध्ययन से ही संतुष्ट न रह सके और उन्होंने प्राच्य भाषाओं की ओर भी ध्यान दिया। इस प्रकार संस्कृत का अध्ययन भी प्रारंभ हो गया जिससे आगे चलकर भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की नींव पड़ी और भाषाविज्ञान के इतिहास में एक नवीन युग प्रारंभ हो गया।

इधर कुछ वर्षों से भारत की देशी भाषाओं का भी अध्ययन होने लगा है और पाश्चात्य विद्वानों के अतिरिक्त प्राच्य विद्वानों ने भी केवल आँग्ल भाषा में ही नहीं, अपितु हिंदी में भी अनेक उच्च कोटि के भाषावैज्ञानिक ग्रंथों की रचना की है।

इस प्रकार हम भाषाविज्ञान के इतिहास को प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक तीन कालों में विभाजित कर सकते हैं।

(अ) प्राचीन काल

(१४५० ई० पू० से १७८५ ई० तक)

भारत में भाषावैज्ञानिक कार्य—सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद हैं। धर्मज्ञों का विश्वास था कि ये ऋषियों को आप से आप भासित हुए हैं, उनके मंत्र ईश्वर के मुख से निकले हैं और उनकी भाषा पवित्र और अमर है; परंतु ज्यों ज्यों आर्य भारत में फैलने लगे और उनका अनार्यों से संपर्क बढ़ने लगा, त्यों त्यों वैदिक भाषा मिश्रित होने लगी और उसमें विकार उत्पन्न होने लगे। विभिन्न स्थानों में एक ही शब्द के भिन्न भिन्न रूप प्रयुक्त होने लगे। उदाहरणार्थ—क्षुद्रक = क्षुल्लक, पश्चात् = पश्चा, श्रवण = श्रोण, आत्मना = त्मना, युवां = वां, इत्यादि इससे वैदिक भाषा में अशुद्धता ही नहीं, अपितु विषमता भी उत्पन्न होने लगी। इस कठिनाई को दूर करने के लिये ऋषियों ने भाषा की व्यवस्था की। यद्यपि यह सब कार्य धार्मिक कारणों से हुआ, परंतु इसके द्वारा भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन भी हुआ। अतः भाषाविज्ञान का बीजारोपण इसी समय (२५ वीं शताब्दी पूर्व) होता है।

वेदमंत्रों की पवित्रता स्थिर रखने के लिये ऋषियों ने अनेक युक्तियाँ कीं जिनमें शब्दों की व्युत्पत्ति की गई है। इसी प्रकार वेद पाठ के लिये भी अनेक ध्वनिनियम बनाए गए। इन युक्तियों तथा नियमों से व्याकरण का प्रादुर्भाव हुआ जिसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती रही और अंत में संस्कृत व्याकरण इतना उन्नत हो गया कि इस विषय में कुछ करने को रह नहीं गया। जो कुछ भी रचनाएँ आज तक हुई हैं वे सब इसी के आधार पर हैं।

भारत में भाषावैज्ञानिक कार्य—यद्यपि भाषाविज्ञान का बीजारोपण २५ वीं शताब्दी पूर्व में हो चुका था, परंतु लेखनप्रणाली का

प्रादुर्भाव १० वीं शताब्दी पूर्व में हुआ। प्रामाणिक सामग्री इससे दो-चार-सौ वर्ष पूर्व की ही मानी जा सकती है। अतः प्राचीन काल १४५० ई० पू० से ही मानना उचित है। इस काल में निम्नलिखित कार्य हुआ—

(१) *शब्दों की व्युत्पत्ति*—२५ वीं शताब्दी पूर्व में अनेक ऋषियों ने वेदों के शब्द स्थिर रखने के लिये पदपाठ, क्रमपाठ, जटापाठ तथा घन-पाठ की युक्तियों के द्वारा संहिता को पदों में परिवर्तित किया। इससे शब्दों की व्युत्पत्ति तथा समासविग्रह हुआ। यह संस्कृत भाषा के विश्लेषण का प्रथम प्रयास था।

(२) *स्वरों का उच्चारण*—फिर वेदमंत्रों के शुद्ध पाठ के लिये उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित ध्वनिनियम बने। इस पर सर्वप्रथम ग्रंथ प्रातिशाख्य (१५ वीं शताब्दी पू०) हैं। इनमें वर्णों का विश्लेषण इतना सुंदर किया गया है कि पाश्चात्य भाषाविज्ञान मात है।

(३) *वैदिक शब्दों का संग्रह*—तत्पश्चात् मुख्य अथवा कठिन वैदिक शब्द का 'निघंटु' में संग्रह किया गया।

(४) *वेदार्थ*—१५ वीं शताब्दी पूर्व में संहिता को वर्तमान रूप मिला अर्थात् वेदों का संपादन हुआ। प्रायः विद्वान् अपने नवीन विचारों को प्राचीन सिद्ध करने के लिये प्राचीन ग्रंथों के नवीन अर्थ लगाया करते हैं। ब्राह्मणों के लेखकों ने भी ऐसा ही किया, जिससे उनको अनेक स्थानों पर संहिता के शुद्ध अर्थ लगाना कठिन हो गया और कई स्थानों पर अर्थ अशुद्ध हो गए। उदाहरणार्थ, उन्होंने 'अपाप'='अ+पाप' लिखा है, परंतु वास्तव में यह 'अप+आप' है।

(५) *शुद्ध वेदार्थ*—७ वीं शताब्दी पू० में यास्क मुनि सबसे बड़े वेदार्थकार हुए। इन्होंने 'निरुक्त' में वैदिक निघंटु का निर्वचन किया है। यह शुद्ध वेदार्थज्ञान का प्रधान साधन है, इसमें शाकटायन के 'धातु-मूलक-तत्त्व' (समस्त शब्दभंडार केवल कुछ

धातुओं से निकला है) की पुष्टि की गई है। यास्क मुनि ने शब्दों को 'नाम', 'आख्यात', 'उपसर्ग', तथा 'निपात' चार श्रेणियों में विभाजित किया है। इनका समय भाषाविज्ञान के इतिहास में प्रथम उत्थान-काल है।

(६) *व्याकरण*—लगभग ५५० ई० पू० पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' की रचना की। इन्होंने भी भाषा की उत्पत्ति तो धातुओं से ही मानी है; परंतु शब्दों को सुबंत, तिङंत तथा अव्यय तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। प्रथम तो अष्टाध्यायी स्वयं ही सर्वोत्कृष्ट व्याकरण है, फिर उसमें विश्लेषण हुआ देववाणी संस्कृत का, अतः धार्मिक प्रवृत्ति का भी योग हो गया और पाणिनि सर्वोच्च वैयाकरण माने जाने लगे। इससे व्याकरण के नियमों में जकड़कर संस्कृत अमरवाणी तो अवश्य हो गई, परंतु उसकी परिवर्तनशीलता, उसका जीवन नष्ट हो जाने से वह मृत भाषा हो गई।

(७) *पाणिनि पर आलोचनात्मक कार्य*——(क) कई शताब्दी बाद भाषा में परिवर्तन हो जाने के कारण, पाणिनि के व्याकरण के कुछ सूत्रों में संशोधन की आवश्यकता देखकर लगभग ३५० ई० पू० में कात्यायन ने अष्टाध्यायी पर 'वार्तिक' लिखे।

(ख) लगभग १५० ई० पू० में पतंजलि ने अपने 'महाभाष्य' में कात्यायन की आलोचना का खंडन और पाणिनि के कार्य का समर्थन करते हुए उसके व्याकरणिक सिद्धांतों की विस्तृत व्याख्या की। अतः महाभाष्य व्याकरण नहीं, अपितु व्याकरण का व्याकरण अथवा भाषा-शास्त्र है।

वास्तव में पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि व्याकरण के 'मुनित्रय' हैं। इनके पश्चात् कोई व्याकरणिक अन्वेषण नहीं हुआ, केवल इन्हीं के कार्य पर टीकाटिप्पणी होती रही। अतः इन

तीनों का समय भाषाविज्ञान के इतिहास में द्वितीय उत्थान-काल है।

(८) *मुनित्रय के कार्य पर टीका टिप्पणी*—(क) काश्मीर के जयादित्य और वामन ने 'वृत्तिसूत्र' अथवा 'कासिका वृत्ति' में पाणिनि के अष्टाध्यायी की टीकाटिप्पणी की। ७ वीं शताब्दी में तक्षशिला, नालंदा इत्यादि विश्वविद्यालयों में इसका अध्ययन होता था।

(ख) कयात ने पतंजलि के महाभाष्य पर 'प्रदीप' की रचना की।

(ग) अब संस्कृत के मृत हो जाने के कारण अष्टाध्यायी समयानुकूल नहीं रहा और उसके सूत्रों में संशोधन की आवश्यकता हुई। अतः अनेक कौमुदियाँ बनीं जिनमें भट्टोजी दीक्षित की 'सिद्धांत-कौमुदी' सर्वश्रेष्ठ है।

(घ) नागेश भट्ट ने भी 'परिभाषेंदुशेखर' में पाणिनि की परिभाषाओं की टिप्पणी की है।

(ङ) १२ वीं शताब्दी में हेमचंद्र ने 'शब्दानुशासन' लिखा, जिसका चतुर्थ भाग, जो प्राकृत व्याकरण पर है, बहुत सुंदर है। इससे जैनीप्राकृत व्याकरणिक नियमों में जकड़कर संस्कृत की भाँति मृत हो गई।

(च) अंत में भूपेंद्र ने 'शाब्दबोध' द्वारा पाणिनि के व्याकरण को सरल बनाने का प्रयत्न किया।

प्राचीनकाल का अंत—इस प्रकार १४५० ई० पू० से ११५० ई० पू० तक भारत में यास्क, पाणिनि, पतंजलि आदि ऋषियों ने प्रातिशाख्य, निरुक्त, अष्टाध्यायी, महाभाष्य इत्यादि ग्रंथों द्वारा वैदिक संस्कृत-भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया और व्याकरण उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। अब तक किसी प्रकार का वाह्य

प्रभाव नहीं पड़ा था; परंतु ११ वीं शताब्दी में मुसलमानों के आगमन से लोगों को अपना धर्म बचाने की चिंता लग गई, उधर अपभ्रंश हिंदी का रूप धारण करने लगी और संसकृत मृत भाषा हो गई और उसकी जगह फारसी इत्यादि का प्रयोग होने लगा। अतः इस समय यवनों का सामना करने के लिये, लोगों को उत्साहित करनेवाले वीर-काव्य और धार्मिक प्रवृत्ति उत्तेजित करनेवाले भक्तिकाव्य तो बने; परंतु भाषा का वैज्ञानिक विवेचन न हो सका। इस प्रकार जिस भाषा-वैज्ञानिक कार्य का आरंभ भारत में हुआ था, वह पूर्ण और परिपुष्ट न हो सका। उसकी पूर्ति और पुष्टि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा यूरुप में हुई। अतः पाश्चात्य भाषाविज्ञान के संक्षिप्त इतिहास का भी ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

यूरुप में भाषावैज्ञानिक कार्य

(क) *यूनान में कार्य*—भारत की भाँति यूनान भी प्राचीन सभ्यता का केंद्र रहा है। स्वर्णयुग में यहाँ भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन भी होने लगा था।। हीराक्लीस, डीमोक्रीटस और पिथागोरस इत्यादि अनेक विद्वानों ने भाषा की उत्पत्ति, शब्दों की व्युत्पत्ति और वर्णों तथा शब्दों के विभाग की ओर ध्यान दिया।

बाद में प्लेटो (४३०—३४६ ई० पू०) ने भाषा की व्याख्या की, वर्णों को नाद और श्वास दो भागों में विभक्त किया, शब्दों का श्रेणीविभाग किया और उद्देश्य, विधेय, तथा कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य की कल्पना की। इस श्रेणीविभाग को अरस्तू (३८४—३२२ ई० पू०) ने पूर्ण किया और शब्दों को आठ श्रेणियों में विभाजित किया। अंग्रेजी के आठ श्रेणीविभाग (Parts of speech) इसी के लैटिन नाम हैं।

तत्पश्चात् और भी अनेक विद्वान हुए जिनमें एरिस्टार्कस विशेष उल्लेखनीय है। इसने आठ शब्दभेदों—संज्ञा, क्रिया, कृदंत, सर्वनाम,

उपपद, संबंधवाचक, समुच्चयवाचक तथा विस्मयादिबोधक—का स्पष्टतया विवेचन किया। इसके शिष्य डियोनीसियस थ्रेक्स (२००- ई० पू०) ने अपने रोमन शिष्यों के लिये प्रथम व्याकरण अपनी भाषा में लिखा जिसमें अरिस्टाटिल के पथ का अनुसरण किया गया है।

(ख) *इटली में कार्य*—यूनानियों की देखा देखी रोमवालों ने भी उनकी नकल की और भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन आरंभ किया। डियोनोसियस थ्रेक्स के शिष्यों में अपोलीनियस अपनी शब्दविन्यासप्रणाली के लिये प्रसिद्ध है। इन दोनों को आदर्श मानकर रोमवालों ने भी अपनी भाषा का विश्लेषण किया और पहली ई० पू० तथा प० में व्हारो, जूलियस सीजर, सिसरो, पेलोयन प्रोवस आदि अनेक विद्वानों ने व्याकरण-संबंधी कार्य किया। १६० ई० प० में स्टोइक क्रेटस की रोम यात्रा से यहाँ ग्रीक भाषा का विशेष प्रसार हुआ। २०० ई० प० में अलस गौलियस ने 'भाषा' का विशेष अध्ययन किया। तत्पश्चात् और भी अनेक विद्वान् हुए और अनेक व्याकरण ग्रंथों की रचना हुई जिनमें लारेंटियस वल्ल का 'लैटिन व्याकरण' (१४४०· ई० प०) सर्वप्रमुख है। इसके नाम अरस्तू के आधार पर हैं।

(ग) *तुलनात्मक अध्ययन*—४७६ ई० पू० में रोम राज्य का अंत होने पर ईसाई धर्म का यूरुप में प्रचार होने लगा और लोगों में धार्मिक ग्रंथ पढ़ने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। इन ग्रंथों को समझने के लिये अनेक भाषाओं का अध्ययन करना पड़ता था। अतः भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन आरंभ हो गया। अभी तक प्राचीन विधान की भाषा हिब्रू मूलभाषा समझी जाती थी। और अन्य भाषाएँ घृणा की दृष्टि से देखी जाती थीं, परंतु लिवनिज ने जो संसार की परस्पर संबद्ध भाषाओं का विभाग करने के पक्ष में था, हिब्रू के महत्त्व का खंडन कर दिया। इसका प्रभाव यह पड़ा

कि लैटिन और यूनानी में निकट संबंध स्थापित हो गया और अरबी, असीरियन तथा हिब्रू एक वंशज समझी जाने लगीं। इस तुलनात्मक अध्ययन की तरंग इतनी बढ़ी कि अनेक विद्वान् केवल यूरोपीय भाषाओं के अध्ययन से ही संतुष्ट न रह सके। उन्होंने विदेशी भाषाओं की ओर भी ध्यान दिया और १८ वीं शताब्दी के अंतिम चरण में संस्कृत का अध्ययन भी होने लगा। इससे विद्वानों की आँखें खुल गईं और उनको विश्वास हो गया कि यूरुप, फारस और भारत की मुख्य-मुख्य भाषाएँ एक ही वंश की हैं। इस प्रकार संस्कृत के अध्ययन से यूरुप में तुलनात्मक भाषाविज्ञान की नींव पड़ी। मध्यकाल का प्रारंभ इसी समय से समझना चाहिए।

(अ) मध्यकाल (१७८५ से १८७५ ई० तक)

संस्कृत का अध्ययन और यूरूप में कार्य—

(१) सबसे प्रथम १७६७ ई० में कूरेडो ने अपने देश फ्रांस की एक साहित्यिक संस्था का संस्कृत और लैटिन की समानता की ओर ध्यान आकर्षित किया।

(२) चार्ल विल्किंस ने १७८५ ई० में श्रीमद्भगवद्गीता का और १७८७ ई० में हितोपदेश का अँग्रेजी में अनुवाद किया।

(३) परंतु वास्तव में संस्कृत का अध्ययन कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रधान विचारपति विलियम जोंस के समय (१७८६) से ही प्रारंभ हुआ। इन्होंने संस्कृत का अध्ययन करके यह ज्ञात किया कि यूनानी, लैटिन, गाथिक, केल्टिक तथा प्राचीन फारसी और संस्कृत में परस्पर अधिक समानता है और इस कार्य की आलोचना के लिये १७८६ ई० में 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' की नींव डाली। इन्होंने लिखा कि 'यद्यपि संस्कृत ग्रीक से अधिक पूर्ण, लैटिन से अधिक संपन्न और दोनों से अधिक परिमार्जित है, तथापि तीनों भाषाओं के धातुओं तथा नाम-

रूपों में अधिक सादृश्य है जो आकस्मिक नहीं कहा जा सकता। यह सादृश्य इतना अधिक है कि कोई भी भाषावैज्ञानिक, बिना यह माने हुए कि तीनों एक ही मूल भाषा से निकली हैं—जिसका अब कोई आस्तित्व नहीं है—इनकी विवेचना नहीं कर सकता। ऐसे ही कारणों से गाथिक, केल्टिक तथा प्राचीन फारसी का संस्कृत से घनिष्ठ संबंध है" इन शब्दों ने यूरुप में संस्कृत के अध्ययन की एक लहर पैदा कर दी और हेनरी टामस, कोलब्रुक, विल्सन, वर्नेफ आदि ने अनेक संस्कृत ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। विलियम जोंस ने स्वयं भी १८०४ ई० में शकुंतला, मनुस्मृति और ऋतुसंहार का अनुवाद किया।

(४) यद्यपि संस्कृत का अध्ययन इंगलैंड में प्रारंभ हुआ, तथापि तुलनात्मक भाषा विज्ञान का सर्वप्रथम कार्य जर्मनी में हुआ। एक अँग्रेज सैनिक अलेकजेंडर हैमिल्टन ने भारत में रहकर संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया था। १८०३ ई० में जब वह इँगलैंड लौट रहा था, तो नैपोलियनिक युद्ध में पैरिस में कैद कर लिया गया। कैद की दशा में इसने जर्मन कवि श्लेगल को संस्कृत पढ़ाई। श्लेगल ने "भारत-वासियों की भाषा और बुद्धि" नामक ग्रंथ की रचना करके दूसरे जर्मन विद्वानों में संस्कृत के अध्ययन की उत्कंठा उत्पन्न कर दी और १८७५ ई० तक रैसमस रास्क (डेनमार्क), फ्रैंज वाप, जैकब ग्रिम आदि अनेक विद्वान् हुए जिन्होंने तुलनात्मक भाषा विज्ञान की नींव डाली।

(५) १८०३-१८७५ ई० में कार्य—(क) विल हैल्मवोन हुमवोल्ट (१७६७-१८३५) ने अनेक भाषावैज्ञानिक ग्रंथ लिखे और भाषा विज्ञान की आलोचना में ऐतिहासिक प्रणाली पर जोर दिया। इसने शब्दों के धातुमूलक तत्त्व को स्वीकार किया है। इसका विश्वास था कि सब प्रत्यय किसी समय स्वाधीन थे।

(ख) एडल्फ श्लेगल (१७६७-१८४५ ई०) यूरुप में संस्कृत-भाषा-विज्ञान का प्रवर्त्तक था।

(ग) रैसमस रास्क ने ध्वनिनियमों पर अधिक जोर दिया।

(घ) फ्रैंज बाप (१७९१-१८६७ ई०) ने १८१८ ई० में० तुलनात्मक भाषाविज्ञान का प्रथम ग्रंथ 'तुलनात्मक व्याकरण' लिखा। इसी कारण यह तुलनात्मक भाषाविज्ञान के जन्मदाता माने जाते हैं। इसमें इन्होंने विभिन्न भाषाओं के धातुरूपों की तुलना करके इनका परस्पर संबंध स्थापित करके यह सिद्ध किया है कि यह सब भाषाएँ एक ही मूल भाषा से निकली हैं।

(ङ) जेकब ग्रिम (१७६७-१८६३ ई०) ने १८१९-१८२२ ई० में ध्वनिपरिवर्तन के एक अपूर्व नियम (Grim's Law) का शास्त्रीय प्रतिपादन किया जो विशेषतया जर्मन वर्ग की भाषाओं में ही अधिक लागू है।

(च) १८३३-३६ ई० में आगस्ट पाट ने व्युत्पत्तिसंबंधी पहला वैज्ञानिक ग्रंथ, 'एटीमालाजिकल इनव्हैस्टीगेशंस' लिखा।

ग्रिम के इन सूत्रों से मध्यकाल का अंत और नवीन युग का आरंभ हो गया। मध्यकाल का सर्वप्रमुख कार्य भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन था। इस समय यूरुप में संस्कृत के अध्ययन से आधुनिक भाषा-विज्ञान की नींव पड़ी और यूरुप के, विशेषतया जर्मनी के, अनेक विद्वानों ने संस्कृत का अध्ययन किया और अनेक तुलनात्मक भाषावैज्ञानिक ग्रंथों की रचना की।

[इ] आधुनिक काल

(१८७५ ई० से आज तक)

१८६०-७५ ई० में मैक्समूलर, रूडल्फ राथ, आटोवोह्टिंक श्लाइशर, कार्ल ब्रुगमैन, पाल, ह्विटनी, लेस्कीन आदि अनेक विद्वानों ने पूर्वयुग के मतों का खंडन और नए सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जिनका सविस्तर वर्णन पालकृत, 'भाषा के इतिहासतत्त्व' में मिलता

है। काल ब्रुगमैन इस नवीन संप्रदाय का नायक था। मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं—

(१) 'आधुनिक जीवित भाषाओं की विवेचना उतनी ही आवश्यक है जितनी प्राचीन मृतक भाषाओं की।' तदनुसार जीवित भाषाओं की संकीर्ण ध्वनियों का पूर्णतया अध्ययन किया गया और ध्वनितत्व का महत्त्व बढ़ गया। १८७८ ई० में लेस्कीन, पाल, ब्रुगमैन इत्यादि ने यह सिद्ध कर दिया कि ध्वनिनियम निरपवाद हैं और जो अपवाद दीख पड़ते हैं उनका उपमान द्वारा निराकरण हो सकता है। ब्रुगमैन प्रभृति विद्वानों ने यह ज्ञात किया कि यूनानी भाषा में संस्कृत से अधिक मूल स्वर हैं। इससे संस्कृत का महत्त्व कुछ घट गया, परंतु व्यंजनों में उसकी पूर्णता अब भी सर्वमान्य है। इसके अतिरिक्त यह विश्वास, कि भाषाएँ अपनी प्रारंभिक अवस्था में व्यासप्रधान थीं और वे वियोग से संयोग की ओर अग्रसर होती हैं, दूर हो गया और यह सिद्ध हो गया कि वे प्रारंभिक अवस्था में संहित थीं और नित्य प्रति संहित से व्यवहित होती जाती हैं। वास्तव में यह भाषाचक्र—संहित से व्यवहित और व्यवहित से संहित—चलता ही रहता है।

(२) हम्बोल्ट का मत है कि भाषा तथा भाषण के आदि और अंत का निर्णय करना असंभव है। अतः केवल उसके मध्य का ही अध्ययन करना चाहिए।

(३) पहले विद्वानों का यह मत था कि जलवायु तथा प्राकृतिक दशा का वाग्यंत्र पर और वाग्यंत्र का भाषा पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान का शरीरविज्ञान से तो घनिष्ठ संबंध था, परंतु मनोविज्ञान से कोई संबंध न था। इस समय विद्वानों ने यह ज्ञात किया कि भाषा केवल मनुष्यमात्र की ही सम्पत्ति विशेष है अन्य प्राणियों की नहीं। जानवर वाग्यंत्र होते हुए भी भाषा नहीं बोल सकते। अतः केवल वाग्यंत्र से ही भाषा की उत्पत्ति नहीं हो

सकती। इसके लिये मस्तिष्क की क्रिया की भी आवश्यकता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान में भी संबंध स्थापित हो गया।

(४) प्रायः ऐसा होता है कि किसी वस्तु विशेष को देखने से दूसरी वस्तु का और कोई शब्दविशेष कहने से दूसरे शब्द का स्मरण हो आता है, उदाहरणार्थ नदी का प्रवाह देखने से जीवनस्रोत की, वसंत देखने से यौवन की, दुःख कहने से सुख की तथा मृत्यु सुनने से जन्म की याद आ जाती है। शिक्षक भी शब्दों को याद कराने के लिये उनके पर्यायवाची तथा विरोधी शब्द बताया करते हैं। विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि इनमें सादृश्य अथवा वैषम्य किसी न किसी प्रकार का संबंध अवश्य है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मस्तिष्क संबंधित वस्तुओं तथा शब्दों को एक साथ रखता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान में मनोविज्ञान का महत्त्व बढ़ने से मिथ्या सादृश्य अथवा उपमान (analogy) के सिद्धांत का महत्त्व भी बढ़ गया। १८६७ ई० में ह्विटनी ने 'भाषा और भाषा के अध्ययन' में इस पर विशेष जोर दिया।

(५) संसार की कोई भी जाति किसी न किसी दूसरी जाति से बिना मिले और बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकती। जब वे एक दूसरे से मिलती हैं, तो उनकी बोलियाँ भी मिलती हैं और बोलियों के इस संमिश्रण का भाषा के इतिहास पर भी बहुत प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार प्रत्येक भाषा जातियों तथा बोलियों के संमिश्रण से बनी है।

इस समय तक भारतवासियों का ध्यान भाषाविज्ञान की ओर नहीं गया था। १८३४ ई० में लार्ड मेकाले के उद्योग से भाषा का माध्यम अँग्रेजी होने के कारण तथा लार्ड डलहौजी के समय में उच्च शिक्षा के लिये कालेज और विश्वविद्यालयों की स्थापना होने से १८७५ ई० तक भारत में अँग्रेजी शिक्षा का समुचित रूप से प्रचार

हो चुका था। इधर कांग्रेस की स्थापना होने से भारतवासियों के मस्तिष्क भी जाग्रत हो चुके थे। अतः पाश्चात्य ग्रंथों का अध्ययन प्रचुरता से होने लगा। भारतवासियों ने देखा कि यूरुप में पाश्चात्य भाषाओं के अतिरिक्त संस्कृत आदि भारतीय भाषाओं का भी वैज्ञानिक अध्ययन प्रचुर रूप से हो चुका है और वे अपनी भारतीय भाषाओं में भी पिछड़े हुए हैं। अतः उनका ध्यान भी इस ओर गया। कुछ समय से भारतवासियों में पाश्चात्य सभ्यता की नकल करने की प्रवृत्ति अधिक चल पड़ी है। इस समय यूरुप में प्रवृत्ति आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन की ओर थी। अतः प्राच्य विद्वानों ने भी पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकों के सुर में सुर मिलाया और उनके साथ अपनी देशी भाषाओं का अध्ययन आरंभ किया। उनकी एडल्फ श्लेगल के इस कथन से सत्यता प्रतीत होने लगी— The language of the east should be studied in the reverent spirit of the 'ब्राह्मण' and in the critical spirit of the western philosophy." सबसे प्रथम १८७७ ई० में गोपालकृष्ण भंडारकर ने 'विल्सन फिलालाजिकल लैक्चर्स' द्वारा भारतवासियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था, परंतु कुछ समय तक कोई विशेष कार्य न हो सका। जब १९०८ ई० में संस्कृत, अरबी आदि के लिये विदेशी छात्रवृत्तियाँ (Foreign Scholarships) दिए गए, तो अनेक विद्यार्थियों ने इँग्लैंड, फ्रांस तथा जर्मनी जाकर पाश्चात्य आलोचना और अनुसंधान अथवा अन्वेषण के ढंग सीखे। इन्होंने लौटकर पाश्चात्य ढंग पर तुलनात्मक भाषावैज्ञानिक कार्य किया। इस प्रकार देशी भाषाओं का अध्ययन भी होने लगा और जेस्पर्सन, स्वीट, डेलब्रुक, वील, उलन बैंक, टर्नर आदि अनेक यूरोपीय विद्वानों के अतिरिक्त एस० के० चटर्जी, आई० जे० एस० तारापुरवाला इत्यादि अनेक भारतीय विद्वान् भी हुए, परंतु ये सब अँग्रेजी

के सामने हिंदी पढ़ना हेय समझते थे। अतः १९२५ ई० तक जो कुछ भी भाषावैज्ञानिक कार्य हुआ वह सब अंग्रेजी में ही था, हिंदी में नहीं। १९२५ ई० के लगभग इस बात का अनौचित्य विद्वानों को खटका और उन्होंने भाषावैज्ञानिक कार्य अपनी मातृभाषा हिंदी में करने का प्रस्ताव किया। उनमें सर्वप्रथम सर आशुतोष मुकर्जी थे। इनकी चेष्टा से कलकत्ता विश्वविद्यालय में एक पृथक् भाषाविज्ञान का विभाग खोला गया। फिर बंबई, मद्रास इत्यादि विश्वविद्यालयों में भी देशी भाषाओं का अध्ययन आरंभ हुआ। इधर रवि बाबू, नलिनीमोहन सान्याल, बाबू श्यामसुंदरदास, डा० मंगलदेव शास्त्री, डा० धीरेंद्रवर्मा इत्यादि अनेक विद्वान् हुए हैं जिन्होंने आधुनिक देशी भाषाओं पर हिंदी में कार्य किया है।

(क) अंग्रेजी में :—(१) बीम्स ने १८७२–७९ ई० में 'कंपैरेटिव ग्रैमर ऑव दि माडर्न आर्यन् लैंग्वेजेज ऑव इंडिया' की रचना की, जिसमें हिंदी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, बँगाला तथा उड़िया का तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन किया गया है।

(२) १८७६ ई० में कैलाग ने ग्रैमर ऑव दि हिंदी लैंग्वेज, लिखा।

(३) १८७७ ई० में रामकृष्ण गोपाल भंडारकर ने 'विलसन फिलालॉजिकल लैक्चरर्स' दिए जो १९१४ ई० में प्रकाशित हुए।

(४) १८८० ई० में रुडल्फ हॉर्नॉनी ने, ग्रैमर ऑव दि ईस्टर्न हिंदी' लिखा।

(५) इस समय तक यूरुप में शब्दों के रूपों तथा ध्वनियों का ही अध्ययन हुआ था। शब्दों के अर्थ और उनकी शक्ति की ओर ध्यान नहीं दिया गया था। १८९७ ई० में डेलब्रुक में कंपैरेटिव सिन्टेक्स' और ब्रील ने 'सिमेंटिक्स' पर एक निबंध लिखकर इस कार्य की पूर्ति की। इसका प्रभाव भारत पर पड़ा और आई० जे० एस० तारापुरवाला ने 'एलीमैंटेस ऑव दी साइंस

ऑव लैंग्वेज' में, नलिनीमोहन सान्याल ने 'भाषाविज्ञान' में, तथा बाबू श्यामसुंदरदास ने 'भाषाविज्ञान' में शब्दों के रूपों तथा ध्वनियों के अतिरिक्त वाक्यविचार और अर्थविचार पर भी अच्छा प्रकाश डाला है।

(६) १९१९ ई० में ज्यूल ब्लाक ने फ्रैंच में 'मराठी भाषा' की रचना की।

(७) १९२१ ई० में ग्रियर्सन ने हीरालाल काव्योपाध्याय के छत्तीसगढ़ी के इतिहास का अंग्रेजी में अनुवाद किया।

(८) १९२६ ई० में सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'ओरिजिन एंड डेवेलपमेंट आव दि बंगाली लैंग्वेज' की रचना की, जिसकी भूमिका बहुत सुंदर है। इसकी उपेक्षा कोई भाषावैज्ञानिक नहीं कर सकता।

(९) १९२७ ई० में ग्रियर्सन ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इंडिया' लिखा।

(१०) १९३१ ई० में टर्नर ने 'नेपाली डिक्शनरी' लिखी।

(११) १९३१ ई० में बाबूराम सक्सेना ने 'एवोल्यूशन ऑव अवधी' लिखी, जिस पर इनको डाक्टरेट मिली। यह १९३८ में प्रकाशित हुई।

(१२) १९३४ ई० में ब्लाक ने 'दि इंडो आर्यन' फ्रांसीसी भाषा में लिखी।

(१३) १९३५ ई० में धीरेंद्र वर्मा ने 'ला लॉग ब्रज' फ्रांसीसी भाषा में लिखी।

(ख) हिंदी में—(१) १८९० में भारतेंदु ने 'हिंदी-भाषा' लिखी।

(२) १८९४ ई० में गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने 'प्राचीन भारतीय लिपिमाला' की रचना की।

(३) १९०७ ई० में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी भाषा की उत्पत्ति' लिखी।

(४) १९०८ ई० में बालमुकुंद गुप्त ने 'हिंदी भाषा' लिखी।

(५) १९२० ई० में कामताप्रसाद गुरु ने खड़ीबोली का 'हिंदी व्याकरण' लिखा।

(६) १९२४ ई० में बदरीनाथ भट्ट ने 'हिंदी' लिखी।

(७) १९२५ में दुनीचंद ने 'पंजाबी और हिंदी का भाषा-विज्ञान' लिखा।

(८) १९२५ ई० में बा० श्यामसुंदरदास ने 'भाषाविज्ञान' की रचना की। इसका संशोधित संस्करण १९३८ ई० में निकला था। यह विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता है।

(९) १९२६ ई० में मंगलदेव शास्त्री ने तुलनात्मक भाषाशास्त्र अथवा भाषाविज्ञान की रचना की। इसका संशोधित संस्करण हाल ही (१९४० ई०) में निकला है। यह भी विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता है।

(१०) १९३३ ई० में धीरेंद्र वर्मा ने 'हिंदी भाषा का इतिहास' लिखा। इसका भी संशोधित संस्करण १९४० ई० में निकल चुका है। यह भी हिंदी की उच्च कक्षाओं में पढ़ाया जाता है।

(११) १९३५ ई० में श्यामसुंदरदास तथा पद्मनारायण आचार्य-कृत 'भाषारहस्य' का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ।

(१२) १९३७ ई० में धीरेंद्र वर्मा ने 'ब्रजभाषा' की रचना की। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'हिंदी लिपि' भी लिखी है।

इस काल में यूरुप में कार्ल ब्रुगमैन, पाल, ह्विटनी प्रभृति विद्वानों ने नवीन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। इस काल के प्रमुख पाश्चात्य विद्वान् जेस्पर्सन, स्वीट, डेनियल, जोंस, टर्नर इत्यादि हैं। पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकों की देखादेखी भारत में भी भंडारकर के उद्योग से देशी भाषाओं का अध्ययन होने लगा। अब तक शब्दरूपों तथा ध्वनियों की ही विवेचना हुई थी, परंतु १८९७ ई० से डेलबुक तथा ब्रील के उद्योग से वाक्य-

विचार और अर्थविचार का भी विवेचन होने लगा और तारापुरवाला, चटर्जी इत्यादि अनेक विद्वानों ने अँग्रेजी में भाषावैज्ञानिक कार्य किया। आशुतोष मुकर्जी के उद्योग से हिंदी में भी कार्य होने लगा और मंगलदेव शास्त्री, श्यामसुंदरदास, धीरेंद्र वर्मा इत्यादि अनेक विद्वानों ने मातृभाषा में कार्य किया। इधर डा० बाबूराम सक्सेना तथा डा० धीरेंद्र वर्मा ने देशी बोलियों की ओर भी ध्यान दिया परंतु इन पर अभी बहुत कम कार्य हुआ है। इस ओर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है। हमको चाहिए कि डा० सक्सेना और डा० वर्मा के मार्ग का अनुसरण करें, परंतु यह प्रयास मातृभाषा में ही होना चाहिए।

अध्याय २

भाषा तथा भाषण का विकास

(क) भाषा तथा भाषण

भाषा—'भाषा' शब्द के अनेक अर्थ हैं। उदाहरणार्थ, किसी देश की भाषा—जैसे चीनी, फारसी, तिब्बती इत्यादि; किसी प्रांत की भाषा—जैसे विहारी, बँगला. अवधी, व्रज, राजस्थानी, मराठी, गुजराती इत्यादि; किसी स्थानविशेष की भाषा—जैसे शहरी, गँवारू इत्यादि; किसी संप्रदायविशेष की भाषा—जैसे कथक्कड़ी, सधुक्कड़ी, पंडिताऊ, साहित्यिक इत्यादि; किसी जातिविशेष की भाषा—जैसे गूजरों को भाषा, जाटों की भाषा, कायस्थों की मुंशियाना जुबान इत्यादि; किसी व्यवसायविशेष की भाषा—जैसे सुनारों, सर्राफों तथा अन्य दूकानदारों की भाषाएँ; गुप्त अथवा सांकेतिक भाषाएँ—जैसे ठगों, चोरों, स्काउटों इत्यादि की भाषाएँ; सी० आई० डी० की भाषा, सांकेतिक भाषा, तार की भाषा इत्यादि; भापा का कोई रूप-विशेष—जैसे लिखित भाषा, बोलचाल अथवा सर्वसाधारण की भाषा, कृत्रिम भाषा, परिमार्जित भाषा इत्यादि; किसी विषय-विशेष की भाषा—जैसे रेखागणित की भाषा, मनुष्यमात्र की भाषा। भाषाविज्ञान में हमारा संबंध भाषा के साधारण अर्थ अर्थात् मनुष्यमात्र की भाषा से है। मनुष्य समाजबद्ध प्राणी है। वह सदैव अपने मन की बात दूसरों पर प्रकट करने तथा दूसरों के मन की बात जानने के लिये उत्सुक रहता है। वह साधन, जिससे मनुष्य किसी वस्तु के विषय में मुखद्वारा परस्पर विचार विनिमय

तथा भावप्रकाशन करते हैं, भाषा है। अतः भाषा 'वह व्यक्त ध्वनिसंकेत हैं जिनके द्वारा हम किसी वस्तु के विषय में परस्पर विचारविनिमय करते हैं।

भाषा तथा भाषण—जब हमारा किसी वस्तुविशेष से संपर्क होता है, तो एक लहर सी उत्पन्न होती है, जो वाह्य इंद्रियों से टकराती है, जिससे उनमें एक प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न होती है, जो अंतर्मुखी स्नायुओं द्वारा मस्तिष्क में पहुँचती है, जहाँ विचार उत्पन्न होता है, जो वहिर्मुखी स्नायुओं द्वारा शब्दोत्पादक तथा स्वरोत्पादक स्नायुकेंद्रों में होता हुआ वाग्यंत्र में आता है और मुखद्वारा व्यक्त ध्वनियों के रूप में निर्गत होता है। यह सार्थक व्यक्त 'ध्वनि-संकेत' ही भाषा हैं और मनुष्यों द्वारा इनका सप्रयोजन व्यवहार करना अर्थात् बोलनामात्र ही भाषण है। अतः नवजात शिशु की सहज तथा स्वाभाविक ध्वनियों को भाषण नहीं कह सकते, क्योंकि वे सप्रयोजन नहीं होतीं। इस प्रकार भाषण से ही भाषा की उत्पत्ति होती है। यदि भाषा सिद्धांत है, तो भाषण प्रयोग; यदि भाषा कार्य है, तो भाषण क्रिया; यदि भाषा नित्य है, तो भाषण अनित्य; यदि भाषा शाश्वत है, तो भाषण क्षणिक; यदि भाषा स्थायी है, तो भाषण परिवर्तनशील; यदि भाषा विद्या है, तो भाषण कला, यदि भाषा अर्जित है, तो भाषण प्राकृतिक, यदि भाषा का चरम अवयव शब्द है, तो भाषण का वाक्य। एक उदाहरण से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। कल्पना कीजिए कि एक मनुष्य कहता है—'बचो, सर्प है।" इन शब्दों से वायु में एक प्रकार का कंपन हुआ, जिससे एक लहर उत्पन्न हुई, जो कर्णेंद्रिय पर टकराई, जिससे वहाँ एक संवेदन उत्पन्न हुआ, जो अंतर्मुखी स्नायुओं द्वारा मस्तिष्क में गया, जहाँ यह विचार आया कि पूछा जाय—"कहाँ है?" यह बहिर्मुखी स्नायुओं द्वारा शब्दोत्पादक तथा स्वरोत्पादक स्नायुकेंद्र में होता हुआ वाग्यंत्र में आया और मुखद्वारा व्यक्त ध्वनि संकेतों के रूप

में प्रकट हुआ। ये शब्द अथवा वाक्य 'कहाँ है ?' ही भाषा और इनका व्यवहार ही भाषण है। यदि दूसरा मनुष्य बहरा, गूँगा अथवा एकांतवासी जंगली होता, तो भाषा तथा भाषण का प्रयोग न कर पाता।

भाषा की विशेषताएँ—(१) भाषा विचारों तथा मनोभावों का प्रतिबिंब अथवा बाह्य स्वरूप है। यदि विचार आत्मा है, तो भाषा शरीर।

(२) भाषा सदैव किसी न किसी वस्तु के विषय में—चाहे वह भौतिक हो अथवा मानसिक—विचार प्रकट करती है।

(३) भाषा अर्जित संपत्ति है, प्राकृतिक नहीं, और वह अनुकरण से सीखी जाती है, अतः समाजसापेक्ष है।

(४) मनुष्य भाषा का प्रयोग सदैव परस्पर विचारविनिमय के लिये ही करते हैं, अतः भाषा सप्रयोजन है। यही कारण है कि पशुपक्षियों की भाषा—जो सहज और स्वाभाविक ध्वनियों के रूप में होती है, मनुष्य की भाँति सप्रयोजन नहीं—भाषा नहीं कही जाती।

भाषा के आधार—सामान्य दृष्टि से भाषा केवल 'व्यक्त ध्वनिसंकेतों का एक समूह' मात्र है। ध्वनिसंकेतों से हमारा अभिप्राय शब्दों तथा वाक्यों से है। इनके दो रूप होते हैं-मूर्त और अमूर्त, प्रत्यक्ष और परोक्ष, बाह्य और आंतरिक, शब्द और अर्थ, व्यक्त ध्वनिसंकेत और उनसे अभिव्यक्त होनेवाले विचार तथा भाव, प्रकट और अप्रकट, भौतिक और मानसिक। विचार तथा भाव मन अथवा मस्तिष्क से संबंधित होने के कारण मानसिक क्रिया हैं, जिसका बाह्य स्वरूप शब्द तथा वाक्य हैं। अतः भाषा के दो आधार हैं—मानसिक और भौतिक। यदि मानसिक आधार भाषा का प्राण है, तो भौतिक शरीर।

भाषा प्राकृतिक है अथवा अर्जित—भाषा का पद केवल मनुष्यों की भाषा को ही प्राप्त है, पशुपक्षियों की भाषा को नहीं।

यह मनुष्यों को ईश्वर की देनविशेष है, परंतु इसके माने यह नहीं हैं कि भाषा प्राकृतिक है और उस पर मनुष्य जाति का जन्मसिद्ध अधिकार है। यदि ऐसा होता, तो मनुष्यसमाज से पृथक् रहनेवाला जंगली मनुष्य भी प्राकृतिक भाषा सीख जाता, सारे संसार के मनुष्य एक ही भाषा बोलते तथा बच्चा भिन्न वातावरण अथवा समाज में रहने पर भी दूसरी भाषा न सीख पाता, परंतु ऐसा नहीं है। राबिन्सन क्रूसो का 'फ्रायडे' प्रारंभ में कोई भाषा नहीं बोलता था। संसार में चीनी, जर्मन इत्यादि अनेक भाषाएँ व्यवहृत होती हैं तथा एक भारतीय शिशु अंग्रेज धाय द्वारा परिपोषित होने पर अंग्रेजी सीखता है हिंदी नहीं। हम किसी भी देश अथवा जाति की भाषा पूर्वजों के अनुकरणमात्र से ही सीख सकते हैं। अतः भाषा प्राकृतिक नहीं, अपितु अर्जित संपत्ति है; परंतु मनुष्य उसका अर्जन कर सकता है, उत्पादन नहीं। भाषण के अतिरिक्त भाषा का कोई भी अंग प्राकृतिक नहीं है। भाषण का बीज प्रत्येक नवजात शिशु की सहज और स्वाभाविक ध्वनियों में पाया जाता है।

भाषा व्यक्तिगत संपत्ति है अथवा परंपरागत—यद्यपि भाषण-क्रिया अनित्य तथा क्षणिक है, उसमें वैयक्तिक विभिन्नता के कारण नित्यप्रति परिवर्तन होते रहते हैं, परंतु इसका भाषा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। भाषा संसर्ग तथा अनुकरण द्वारा सीखी जाती है। जब कोई ध्वनिसंकेत अकस्मात् किसी वस्तु-विशेष का प्रतीक बन जाता है और वह प्रयोग चल निकलता है, तो उसको बुद्धिगत कारणों से सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया जाता, वरन् सब उसको वैसे ही ठीक मानकर प्रयोग करने लगते हैं। इसका कारण यह है कि भाषा का मुख्य उद्देश्य है विचारविनिमय कराना। यदि उसमें नित्यप्रति नवीनता बढ़ती जाय, तो विचारविनिमय में कठिनाई पड़े। अतः नवीनता को यथाशक्ति बरका जाता है। इस

प्रकार भाषा एक सामाजिक संपत्ति है। यद्यपि वैयक्तिक विभिन्नता के कारण उसमें कुछ न कुछ विकार अवश्य होते रहते हैं, परंतु फिर भी उसकी धारा अविच्छिन्न रहती है। अतः हमको अपनी नई भाषा बनानी नहीं पड़ती, वरन् अपने पूर्वजों की ही भाषा सीखनी पड़ती है। इस प्रकार भाषा परंपरागत संपत्ति है, व्यक्तिगत नहीं।

बोली, प्रांतीय भाषा, राष्ट्रभाषा तथा अंतर्राष्ट्रीय भाषा

बोली—किसी स्थानविशेष के मनुष्यों की घरू भाषा को बोली कहते हैं। यह केवल बोलचाल की भाषा है, साहित्यिक नहीं। इसका क्षेत्र बहुत संकुचित होता है। शाहजहाँपुरी, फर्रुखाबादी, खड़ीबोली (प्रारंभिक रूप), बलियाटिक, सीतापुरी इत्यादि इसके अनेक उदाहरण हैं। एक दो उदाहरणों से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। फर्रुखाबादी, 'काल सूकवार को अमाउस हती, भोर गंगा हनान चलियौ, लाला, अपन तो दूर हते;" हरदोई की बोली, "उद्द की दारि में थोरो मिच्चा छोड़ओ, थोरी हद्दी छोड़ई और वह फुद्द-फुद्द होन लागी;" सीतापुरी, "हम न जइबा, बड़ो नीक मनई है, खिलौना ले लीन है, आज बच्चा को जीउ नाई रहत है;" बलियाटिक, "कौनो चीठी बा? राउर कौनो चीठी ना बा, रउआँ कहाँ गइल रहलीं? हमार बबुआ सूतल बाटे," प्रयाग, काशी विंध्याचल आदि के पंडों की बोली, "तू कहाँ गया रहा," पटना के पास की बोली, "साहूकार पुछल कई डाकिया आयल हलई न? मौगी बैठल हलकई; जलालपुर, अकबरपुर आदि की बोली, "मोरा खता आवा रहा कि नाहीं?" देहली मेरठ की खड़ीबोली, पैड़ों (पैरों) पड़ूँ, आरिया है, उल्ली तरफ आ, पल्ली तरफ बैठ, इंगे, उंगे, धीरे, अपने तईं, लेके नय्याँ, बयबरबानी, भला-मानस।" उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि बोली साहित्य में प्रयुक्त नहीं हो सकती है।

प्रांतीय भाषा—किसी प्रांत अथवा उपप्रांत की बोलचाल

तथा साहित्य की भाषा को प्रांतीय भाषा कहते हैं। इसका क्षेत्र बोली से विस्तृत होता है। ब्रज, अवधी, राजस्थानी, कोंकड़ी इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

राष्ट्रभाषा—किसी प्रांतीय भाषाविशेष का विकसित रूप ही राष्ट्रभाषा है। जब कोई प्रांतीय भाषा राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा साहित्यिक कारणों से इतनी उन्नत और व्यवहृत हो जाती है कि अपने प्रांत के अतिरिक्त अन्य कई प्रांतों की ही क्या देशभर की विभाषाओं में परिगृहीत हो जाती है, तो उसे राष्ट्रभाषा कहते हैं। इसका क्षेत्र प्रांतीयभाषा के क्षेत्र से कहीं विस्तृत होता है। अनेक प्रांतीय भाषाओं के शब्द इसमें और इसके अनेक प्रांतीय भाषाओं में पाए जाते हैं। राष्ट्रभाषा का प्रांतीय भाषा पर पूर्ण अधिकार रहता है; परंतु यदि किसी कारण से राष्ट्रभाषा छिन्न भिन्न होने लगती है, तो प्रांतीय भाषाएँ भी स्वतंत्र हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, जब 'दिल्ली मेरठ' प्रांत की भाषा खड़ी-बोली का एक रूप, उच्च हिंदी (खड़ीबोली), राजनैतिक तथा ऐतिहासिक कारणों से राष्ट्रभाषा हो गया, तो खड़ीबोली के अन्य रूप (उर्दू तथा हिंदुस्तानी), राजस्थानी, ब्रज, अवधी, बिहारी इत्यादि सब प्रांतीय भाषाएँ इसके अंतर्गत आ गईं और इन सब में राष्ट्र-भाषा के शब्द और राष्ट्रभाषा में इन सबके शब्द प्रयुक्त होने लगे। आजकल राजनैतिक कारणों से (हिंदुस्तानी) राष्ट्रभाषा का रूप धारण कर रही है, अतः सब प्रांतीय भाषाएँ भूतपूर्व राष्ट्रभाषा से स्वतंत्र हो गई हैं।

अंतर्राष्ट्रीय भाषा—जब राजनैतिक तथा अन्य किसी कारण से कोई राष्ट्रभाषा इतनी विस्तृत हो जाती है कि सारे संसार में प्रयुक्त होने लगती है और विदेशों से सामान्य चिट्ठीपत्री तथा राजनैतिक लिखा पढ़ी उसी में होने लगती है, तो उसे अंतर्राष्ट्रीय भाषा कहते हैं। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी।

भाषा तथा भाषण की आदि उत्पत्ति—क्योंकि भाषण प्राकृतिक तथा भाषा से अधिक प्राचीन है, अतः भाषा की उत्पत्ति की ज्ञानप्राप्ति के पूर्व भाषण की उत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है। भाषण का प्रारंभिक स्वरूप अर्थात् सहज और स्वभाविक ध्वनियाँ प्रकट करना, तो प्रत्येक मनुष्य में जन्म से ही रहता है—रोना, किल्लियाना, प्रलापना, गूँगूँ करना तथा किलकारना इत्यादि तो प्रत्येक अबोध शिशु भी कर लेता है। इस प्रकार भाषण क्रिया का आदि स्वरूप—भाषा का बीज तो मनुष्यों में सहज तथा स्वाभाविक ध्वनियों के रूप में आदिम काल से ही वर्तमान था। अब प्रश्न यह है कि उसका विकास किस प्रकार हुआ और उसे भाषण का रूप तथा पद कब और कैसे प्राप्त हुआ?

यद्यपि हम्बोल्ट के मतानुसार भाषा तथा भाषण की उत्पत्ति का निश्चित रूप से पता लगाना असंभव है; परंतु फिर भी बच्चों की भाषा तथा भाषण की उत्पत्ति तथा विकास का अध्ययन करने से भाषण तथा भाषा के विकास पर कुछ प्रकाश पड़ता है। जीवविज्ञान-वेत्ताओं का मत है कि मानवजाति का विकास एक व्यक्ति के विकास की भाँति ही हुआ है। जिस प्रकार अबोध शिशु स्वांतःसुखाय कुछ सहज और स्वाभाविक ध्वनियाँ निकालता है और भूखप्यास, दुखदर्द इत्यादि के लिये रोता तथा किल्लियाता है, उसी प्रकार प्रारंभ में आदिम मानव जाति भी कुछ सहज और स्वाभाविक ध्वनियाँ निर्गत करती रही होगी।

जब शिशु तीन चार मास का हो जाता है, तो मस्त होकर कूँकूँ, गूँगूँ आदि ध्वनियाँ निकालने तथा किलकारियाँ भरने लगता है। इसी प्रकार आदिम मनुष्य भी स्वांतःसुखाय गुन-गुनाया करते रहे होंगे। पर मनुष्य समाजबद्ध प्राणी है, वह साथी बनाना और उनसे परस्पर विचारविनियम करना चाहता है,

अतः केवल स्वांतःसुखाय सहज और स्वाभाविक ध्वनियों से ही काम नहीं चल सकता।

जब बच्चा पाँच छः मास का हो जाता है, तो खिलौना इत्यादि वस्तुओं को देखकर उनकी ओर लपकने लगता है और हस्तादि से उनको पकड़ने की चेष्टा करने लगता है। इसी प्रकार आदिम मानवजाति भी इंगित द्वारा अपना काम चलाती रही होगी।

जब बच्चा आठ-नौ मास का हो जाता है, तब वह बा बा, मा मा इत्यादि ओष्ठ्यध्वनियाँ अकारण ही निकालने लगता है, परंतु मातापिता उनको अपने लिये प्रयुक्त समझ कर उत्तर दे देते हैं और बच्चे से बोलने लगते हैं। धीरे धीरे बच्चा इन ध्वनियों को मातापिता के लिये प्रयोग करने लगता है। इस प्रकार ध्वनियों का अर्थ से आकस्मिक संसर्ग अथवा संबंध हो जाता है, और ये सार्थक होकर ध्वनिसंकेत बन जाती हैं। इसी प्रकार पा पा का पिता अथवा पानी से, हप्पा का खाने पीने की वस्तु से, चा चा का चचा से, बुआ का किसी स्त्री से संसर्ग हो जाता है। भाषा तथा भाषण का यहीं से आरंभ होता है। चाचा, बुआ, बाबा, मामा, पापा इत्यादि ध्वनिसंकेत ही भाषा और इनका व्यवहार करना ही भाषण है। इस प्रकार बच्चों की भाषा का प्रारंभ समाज तथा आकस्मिक संसर्ग द्वारा होता है। मानवसमाज ने भी अधिक संसर्ग में आनेवाले व्यक्तियों तथा वस्तुओं को सहज ध्वनियों से अकस्मात् संबंधित कर लिया होगा।

जब बच्चा डेढ़ दो वर्ष का हो जाता है, तो वह म्याउँ, कूँ कूँ भौंभौं, चूं चूं, खों खों, काका, घुग्घू इत्यादि अनुकरणमूलक और अहा, हाहा, ओहो इत्यादि विस्मयादिबोधक शब्द तो सहज ही बना लेता है और कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, बंदर, भाई, बीबी इत्यादि शब्दों का ज्ञान समाज द्वारा प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार बच्चों को पुराने तथा उपस्थित संसर्गों अर्थात् विकसित भाषा का अर्जन

करना पड़ता है और उनको सिखानेवाले मनुष्य भी पहले से ही विद्यमान रहते हैं, परंतु आदिम मानवजाति को यह सुविधा न थी। उसके सामने न तो संसर्ग ही उपस्थित थे और न उनके सिखानेवाले मनुष्य ही। अतः प्रश्न यह है कि उन्होंने सार्थक शब्दों की उत्पत्ति कैसे की और उनका वर्तमान अर्थों से संबंध कैसे हुआ? संभव है कुछ अनुकरणमूलक तथा विस्मयादिबोधक शब्द अनायास ही बन गए हों, परंतु शेष शब्दकोश का उद्‌भव किस प्रकार हुआ? इसका निश्चित रूप से निर्णय करना तो असंभव है। परंतु अनेक विद्वानों ने भिन्न भिन्न मतों तथा सिद्धांतों द्वारा निकटतया निर्णय करने का प्रयत्न किया है, जिनका वर्णन पृथक् रूप से किया जायगा।

भाषा तथा भाषण का विकास—जब बच्चा लगभग दो वर्ष का हो जाता है, तो वह कुत्ते, बिल्ली, बंदर, माँ, बाप इत्यादि को देखकर तुत्ता, बिल्ली, बंनर अम्मा, बाबू इत्यादि कहने लगता है, परंतु इसके यह माने नहीं है कि वह पहले शब्द सीखता है। वह सोचता तो वाक्यों में ही है, परंतु अभिव्यंजनाशक्ति निर्बल होने के कारण अपने विचारों को वाक्यों में अभिव्यक्त नहीं कर पाता। उसका अभिप्राय यही होता है कि देखो बिल्ली आई, अम्मा आओ, बाबू आए, इत्यादि। इसी प्रकार 'मामी' से पानी लाओ' 'दूद' से 'दूध लाओ', 'दोदी से गोदी ले लो, 'पैसिया' से पैसा दो, 'बज्जा' से बाजार चलो, 'घर' से घर चलो, इत्यादि होता है। इस प्रकार बच्चा भाषा में प्रयोग चाहे शब्दों का करे, परंतु उनका व्यवहार, उनका भाषण, वाक्यों के लिये ही करता है। अतः भाषा का चरम अवयव चाहे शब्द भले ही हों; परंतु भाषण का चरम अवयव वाक्य ही हैं। संभवतया आदिम मानवजाति भी प्रारंभ में वाक्यशब्दों का ही प्रयोग करती रही होगी। इसकी पुष्टि असभ्य जंगली जातियों की भाषाओं के अध्ययन तथा उपलब्ध

भाषाओं के इतिहास से भी होती है। यद्यपि जंगली भाषाएँ सैकड़ों हजारों वर्षों के विकास का फल हैं, तदपि उनसे इतना पता अवश्य चलता है कि भाषा की प्रारंभिक अवस्था में वाक्यशब्दों का आधिक्य था और शब्द अनेकाक्षर, लंबे और जटिल होते थे। अमरीका के आदिनिवासी तो अब भी सहस्रों वाक्यों के लिये वाक्यशब्दों का ही प्रयोग करते हैं—जैसे नीनकक = मैं मांस खाता हूँ, नाघोलिनिन = हमें एक नाव लाओ, इत्यादि तथा 'धोने' के लिये १३ वाक्यक्रियाएँ प्रयुक्त होती हैं। इसके अतिरिक्त उपलब्ध प्राचीन भाषाओं में भी अनेक वाक्यशब्द पाए जाते हैं—जैसे संस्कृत में 'गच्छामि' = मैं जाता हूँ, फारसी में 'दीदम' (دیدم) = मैंने देखा ; मराठी में 'मकुंजे' = मैंने कहा कि, वास्क में नर्कसु' = तू मुझे ले जाता है; इत्यादि।

जब बच्चा दो तीन वर्ष का हो जाता है, तो वह दो दो, तीन-तीन शब्दों का एक साथ प्रयोग करने लगता है। जैसे—अम्मा, कपीज, बाजार = अम्मा, कमीज पहना दो, बाजार जाऊँगा; बाबू, पैसा, = चीज = बाबू, पैसा दे दो चीज लूँगा; बाबू, साम तती = बाबू, श्याम तख्ती छूता है इत्यादि। इसके अतिरिक्त वह अधूरे वाक्य भी बोलने लगता है—जैसे बाबू, पाल मारा = बाबू गोपाल ने मुझे मारा है; पूरी खा = मैं पूरी खाऊँगा; दूध गिरी, बिल्ली गई, कुत्ता गई चाचा गई, एबुद (महमूद) गई, बिल्लीबच्चा गई, बाबू आ गए, कन (किशन) आ गए, कन कापू (चाहे कापी हो या किताब) लाई, घोड़ा (घोड़ा हो या गधा) आ, भावी गोदी आओ (ले लो) इत्यादि। परंतु उसे काम, लिंग, वचन, कारकचिह्न, क्रियाभेद, सूक्ष्म वस्तुभेद आदि का ज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार आदिकालीन मनुष्य भी वाक्य के अवयव पृथक् पृथक् करने लगे होंगे। पहले मूर्त पदार्थ तथा संबंधित व्यक्तियों के नाम बने होंगे, फिर धीरे धीरे जातिवाचक, भाववाचक शब्द भी बन गए होंगे।

इसी अवस्था में बच्चे में एक और भी प्रवृत्ति पाई जाती है। वह कभी कभी शब्दों को, संभवतया उनकी क्लिष्टता दूर करने के लिए, लयकाकर कहता है, जैसे गदहा (गधा), डंडआ (डंडा), बनरुआ (बंदर), देदय (दे दे), हअये (है) इत्यादि। इतना ही नहीं, कभी कभी तो वह मस्त होकर 'झंडा ऊँचा, झंडा ऊँचा', 'जै विंदे पाल, माधो दयाल', (जै गोविंद जै गोपाल, वेणीमाधव दीनदयाल) इत्यादि लय से गाया करता है। उसकी भाषा में स्वर और लय की अधिकता होती है और उसका भाषण बड़ा प्यारा लगता है, परंतु ज्यों ज्यों वह बड़ा होता जाता है और पूरे वाक्य बोलने लगता है, त्यों-त्यों उसकी भाषा में स्वर और लय में कमी होती जाती है। यहाँ तक कि जब वह तीन-चार वर्ष का हो जाता है, तो वह लेशमात्र भी लयकाकर नहीं बोलता और उसकी भाषा में व्यंजनों की अधिकता और स्वरों की न्यूनता हो जाती है। हाँ, वाक्शक्ति की निर्बलता के कारण वह कभी-कभी हिच-किचा जाता है और पूरी बात नहीं कह पाता, अतः भाषण अपूर्ण रहता है; परंतु पाँच वर्ष की आयु तक यह बात भी जाती रहती है। आदिम मानव जाति में भी भाषण तथा भाषा का विकास इसी प्रकार हुआ होगा। भाषाओं के इतिहास तथा जंगली भाषाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आदिकालीन भाषाएँ सुरप्रधान थीं। मूल भारोपीय भाषा में स्वर और व्यंजन के अतिरिक्त पदस्वर तथा वाक्यस्वर का आधिक्य था। इसके अतिरिक्त यह भी सिद्ध होता है कि काव्यभाषा गद्यभाषा से कहीं प्राचीन है।

जब बच्चा पाँच वर्ष का हो जाता है और स्कूल में जाकर सभ्यता के चक्कर में पड़ जाता है, तो उसकी भाषा की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। वह पूर्ण और सुव्यवस्थित वाक्य बोलने लगता है और लयकाने की प्रकृति नहीं रहती। इसी प्रकार आदिम काल में भी जब शब्दभंडार विस्तृत और भाषा अधिक संपन्न तथा विकसित

हो गई और परस्पर विचार विनिमय भलीभाँति होने लगा, तो वैयाकरणों ने उसकी व्यवस्था कर दी और गद्यभाषा की भी उत्पत्ति हो गई।

जिस प्रकार बच्चा दस पाँच वर्ष स्कूल में पढ़ने के बाद साहित्यिक भाषा से परिचित हो जाता है और अपढ़ मनुष्यों से उत्तम भाषा बोलने लगता है, उसी प्रकार भाषा की व्यवस्था होने पर वह साहित्यिक हो जाती है और शिक्षित समुदाय उसका प्रयोग करने लगता है; परंतु साधारण और अशिक्षित जनता बोलचाल में इससे सरल और व्याकरणिक नियमों से स्वतंत्र भाषा का ही प्रयोग करती है। इस प्रकार भाषा के दो रूप हो जाते हैं—एक प्राकृतिक और दूसरा कृत्रिम, एक साधारण और दूसरा परिमार्जित अथवा परिष्कृत, एक सर्वसाधारण की भाषा और दूसरी शिक्षित समाज की, एक बोलचाल की भाषा और दूसरी शिक्षित समाज की, एक बोलचाल की भाषा और दूसरी साहित्य की भाषा। इन दोनों रूपों में सदैव ही खींचातानी होती रहती है और समय समय पर प्रत्येक बोलचाल की भाषा साहित्यिक और पूर्व साहित्यिक भाषा मृत और नई बोलचाल की भाषा उत्पन्न होती रहती है। अतः भाषा पूर्ण कभी नहीं हो पाती।

५. (ख) भाषा की उत्पत्ति

भाषण प्राकृतिक क्रिया और भाषा अर्जित संपत्ति है। भाषण-शक्ति तो मनुष्य में प्रारंभ से ही थी, अतः सहज ध्वनियाँ निर्गत करना तो उसका स्वभाव ही था, परंतु प्रश्न यह है कि वे सार्थक कैसे हुई? अर्थात् भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? भाषा एक सामाजिक संस्था है, उसका प्रारंभ संसर्ग ज्ञान से हुआ है, अतः उसकी उत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें यह देखना चाहिए कि किसी शब्द का किसी अर्थविशेष से प्रारंभिक संबंध कब और कैसे हुआ? इसका निश्चित रूप से निर्णय करना असंभव

है, परंतु अनेक विद्वानों ने भिन्न भिन्न मतों द्वारा कुछ निर्णय करने का प्रयत्न किया है। मुख्य मत (१) दिव्य उत्पत्ति (२) स्वाभाविक उत्पत्ति (३) सांकेतिक उत्पत्ति (४) अनुकरणात्मक उत्पत्ति (५) मनोरागात्मक उत्पत्ति (६) प्रतीकात्मक उत्पत्ति (७) औपचारिक उत्पत्ति (८) समन्वित उत्पत्ति हैं।

(१) *दिव्य उत्पत्ति*—'ईश्वर ने मनुष्य के साथ ही साथ भाषा की भी उत्पत्ति की और उसे दैवीशक्ति द्वारा मनुष्यों को सिखा भी दिया।' इसी आधार पर भिन्न भिन्न धर्मानुयायी अपने प्राचीन धर्मग्रंथों की भाषा को आदिभाषा मानते थे और उसे संसार की समस्त भाषाओं की जननी समझते थे। उदाहरणार्थ, ईसाई प्राचीन विधान की भाषा हिब्रू को, मुसलमान कुरानशरीफ की भाषा अरबी को, बौद्ध त्रिपिटक की भाषा पाली को और हिंदू वेदों की भाषा संस्कृत को आदि तथा मूल भाषा मानते थे। इस मत के मानने में निम्न आपत्तियाँ हैं :—

(क) यदि भाषा ईश्वरप्रदत्त होती, तो वह प्रारंभ में ही पूर्ण-तथा विकसित और पूर्ण होती और उसकी उत्पत्ति का प्रश्न ही न उठता, परंतु भाषा का इतिहास बताता है कि वह अपने मूल रूप में केवल कुछ धातुओं का समूहमात्र थी और आदिकाल से ही लगातार विकसित होती चली आने पर भी अभी तक पूर्ण नहीं हो पाई है।

(ख) मानवजाति की संस्कारजन्य उन्नति का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिस प्रकार मनुष्य ने आवश्यकतानुसार भोजन बनाना, खेती करना, वस्त्र बनाना तथा पहिनना, गृह निर्माण करना इत्यादि सीखा, उसी प्रकार उसने समाजबद्ध प्राणी होने के कारण विचारविनिमय की कठिनाई दूर करने के लिये भाषा का भी निर्माण किया। क्योंकि भाषा तथा वास्तुकला, मूर्ति-कला, चित्रकला, लेखनकला, काव्यकला, इत्यादि की उत्पत्ति

तथा विकास एक ही भाँति हुआ है। अतः भाषा भी एक कला है और वह भी अन्य ललित कलाओं की भाँति मनुष्य के मस्तिष्क अथवा बुद्धि की ही उपज है, ईश्वरप्रदत्त नहीं।

(ग) यदि भाषा दैवी होती, तो समस्त संसार एक ही भाषा बोलता, भिन्न वातावरण अथवा समाज में परिपोषित होने पर भी बच्चे एक ही भाषा सीखते और निर्जन वन का वासी जंगली मनुष्य भी सभ्य नागरिक की भाँति ही बोलता, परंतु ऐसा नहीं है। संसार में सेमिटिक, हैमिटिक, चीनी, तुर्की, इत्यादि अनेक भाषाएँ हैं। यदि हिंदू शिशु कारणवश मुसलमानों द्वारा परिपोषित हो, तो वह उर्दू सीखेगा, हिंदी नहीं। इसी प्रकार यदि मुसलिम बच्चा हिंदू समाज में परिपालित हो, तो वह हिंदी बोलेगा, उर्दू नहीं।) यदि कोई भारतीय बच्चा इंगलैंड अथवा अफगानिस्तान ले जाया जाय, तो वह अँग्रेजी अथवा पश्तो ही बोलेगा; भारतीय भाषा नहीं तथा संयुक्तप्रांत में रहनेवाले पंजाबी, बंगाली, मद्रासी, मारवाड़ी और मराठी बच्चे हिंदी सहज ही बोलने लगते हैं, और 'राबिंसनक्रूसो' का "फ्राइडे" तथा 'टेम्पेस्ट' का "कैलीबन" प्रारंभ में जानवरों की भाँति केवल कुछ अबोध्य ध्वनियाँ ही निर्गत करते थे; इसके अतिरिक्त मिश्र के राजा संमेटिकस, स्वाबिया के सम्राट् फ्रेडरिक, स्काटलैंड के राजा जेम्स चतुर्थ तथा भारत के एक मुगल-सम्राट् ने नवजात शिशुओं को मनुष्यसमाज से पृथक् रखकर देखा है कि वे बड़े होकर या तो गूँगे रहे या कुछ अबोध्य ध्वनियाँ निर्गत कर सके, जिन्हें भाषा नहीं कह सकते। अतः भाषा दैवी उत्पत्ति का फल नहीं हो सकती।

(घ) हिब्रू, अरबी, पाली, संस्कृत, इत्यादि देववाणी मानी जानेवाली भाषाओं में संस्कृत का महत्त्व अधिक रहा है। अतः संस्कृत पर ही विचार करके देखना चाहिए कि यह कहाँ तक देव-वाणी तथा मूल भाषा हो सकती है। यदि वैदिक भाषा देववाणी

होती, तो न तो भगवान् 'द्वि + दशति' जैसे स्पष्ट व्युत्पत्तिवाले शब्द के होते हुए 'विंशति' का प्रयोग करते और न उनके ऋग्वेद में विवृति नियम के विरुद्ध 'तितउ' जैसे शब्द पाए जाते, फिर यदि संस्कृत मूल भाषा है तो 'ट्वंटी' को 'विंशति' से निकालना चाहिए, परंतु संस्कृत 'व' का 'टी' हो जाना ध्वनिनियम के प्रतिकूल है। अतः संस्कृत न तो देववाणी ही हो सकती है और न मूल भाषा ही।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा की उत्पत्ति दैवी मानना ठीक नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि जिस प्रकार उड़ने की शक्ति केवल कुछ पक्षियों तथा कीड़ों में पाई जाती है, अन्य जीवधारियों में नहीं, उसी प्रकार भाषणशक्ति केवल मनुष्य में ही पाई जाती है। भाषा मनुष्य के लिये ईश्वर की देनविशेष है: परंतु अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य भाषा का उत्पादन नहीं कर सकता, वह उसका उसी प्रकार सहज ही अर्जन कर सकता है जिस प्रकार पक्षी उड़ना सीख सकता है।

(२) *स्वाभाविक उत्पत्ति*—भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि भाषा का प्रासाद केवल कुछ मूल धातुओं पर खड़ा है। संसार की समस्त भाषाएँ इन्हीं मूल तत्त्वों से निकली हैं। यही कारण है कि भिन्न भिन्न भाषा परिवारों में अनेक शब्द ऐसे पाए जाते हैं जिनके रूप तथा अर्थ दोनों में सादृश्य है, उदाहरणार्थ सं० 'दानम्' लैटिन Do-num सं० 'ददामि' लैटिन Do ग्रीक Di-do-mi यह सब आर्यन धातु 'दा' से निकले हैं। प्रारंभ में ये मूल तत्त्व ही धातुशब्दों की भाँति प्रयुक्त होते रहे होंगे। इसके प्रमाणस्वरूप चीनी भाषा में, जो प्रारंभिक भाषा का नमूना मानी जाती है, अब भी धातु एक ही रूप में अनेक अर्थभेदों में प्रयुक्त होते हैं! उदाहरणार्थ, 'मु' (।☰।) के अर्थविचार (संज्ञा), विचारना (धातु), विचार किया (क्रिया) इत्यादि तथा

'ता' धातुशब्द के अर्थ बड़ाई (संज्ञा), बड़ा होना (धातु), बड़ा हुआ (क्रिया), बड़ा (विशेषण), बड़प्पन से (क्रिया विशेषण), इत्यादि हैं। संभव है कि बाद में इन धातुशब्दों के अर्थानुसार अनेक रूप हो गए हों, अतः उत्पत्ति समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि इन धातुशब्दों का निर्माण किस प्रकार हुआ। अनुसंधान से चार पाँच सौ धातु भाषा के मूल तत्वस्वरूप शेष रह जाते हैं। मैक्समूलर ने इनकी व्याख्या की है जिसका आधार 'शब्द और अर्थ अथवा भाषा और विचार का अटूट संबंध' है। मैक्समूलर का मत है कि 'प्रकृति की प्रत्येक वस्तु मे आघात लगने अथवा अन्य वस्तु के संपर्क में आने पर, एक विशेष प्रकार की ध्वनि अथवा झंकार उत्पन्न होती है. उदाहरणार्थ पीतल, ताम्र, स्वर्ण, पत्थर इत्यादि पर आघात पड़ने से एक दूसरे से भिन्न ध्वनि निकलती है। फिर भला मनुष्य तो प्रकृति की सर्वोत्कृष्ट रचना ठहरी। वह इस प्राकृतिक नियम का अपवाद कैसे हो सकती है? अतः मनुष्य में प्रारंभ से ही एक ऐसी विभाविका शक्ति थी कि उसका जैसी वस्तु से संपर्क अथवा संसर्ग होता था वैसी ही उसमें ध्वनि उत्पन्न होती थी, जो बाद में उसी वस्तु का प्रतीक बन जाती थी। बाह्य अनुभवों के प्रतीक वर्णात्मक शब्द इसी प्रकार बने होंगे। भाषा इन्हीं के आधार पर बनी होगी और उसके पूर्णतया विकसित हो जाने पर अन्य नैसर्गिक प्रवृत्तियों की भाँति आवश्यकता न रहने पर उसकी उत्पादक विभाविका शक्ति भी नष्ट हो गई होगी। संभव है, प्रारंभ में ऐसे वर्णात्मक शब्द अधिक रहे हों, परंतु बाद में कटते छँटते थोड़े से रह गए हों, और भाषा का वर्तमान प्रसाद इन्हीं मूल तत्त्वों अथवा धातुशब्दों पर निर्मित हुआ हो।' इस मत में निम्नलिखित दोष हैं—

(अ) भाषा का इतिहास इस बात का साक्षी है कि भाषा अपनी आरंभिक अवस्था में केवल कुछ धातुओं का समूहमात्र थी और वह नित्यप्रति पूर्ण और उन्नत होती जा रही है; परंतु उक्त मत

के अनुसार वह आदिकाल में ही पूर्णतया विकसित हो चुकी थी और धातु अवस्था को बाद में प्राप्त हुई। यह विकासवाद के विरुद्ध है।

(आ) भाषोत्पादक शक्तियाँ अनवरत भाषा का विकास करने में लगी रहती हैं, परंतु फिर भी वह पूर्ण नहीं हो पातीं। अतः यह समझ में नहीं आता कि कोई शक्ति आदिकाल में अपना कार्य पूर्ण करके कैसे नष्ट हो गई।

(इ) नवीन भावों तथा विचारों के द्योतक शब्द नित्यप्रति बनते ही रहते हैं, परंतु उनके निर्माण में कोई नैसर्गिक प्रवृत्ति कार्य करती हुई नहीं दिखाई देती। हाँ, मनोरागात्मक शब्द अवश्य स्वाभाविक ध्वनियों द्वारा बनते हैं। अतः यदि भाषोत्पादन नैसर्गिक प्रकृति द्वारा होता, तो भाषा का प्रारंभ मनोभावाभिव्यंजक शब्दों से होता न कि वर्णात्मक शब्दों से।

(ई) भाषा के चरम अवयव वाक्य हैं और उसका प्रारंभ वाक्यों से ही हुआ है, परंतु उक्त मत में भाषा का प्रारंभ वर्णात्मक शब्दों से हुआ है, ठीक नहीं है।

(उ) उक्त मत का आधार 'भाषा तथा विचार का नित्य संबंध है, परंतु हम देखते हैं कि एक ही विचार स्थानभेद के अनुसार भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा प्रकट किया जाता है। इसके अतिरिक्त गूँगे में विचार तो होते हैं; जिनको वह इंगित द्वारा अथवा कागज पर प्रकट कर सकता है, परंतु भाषा का अभाव होता है। इस प्रकार भाषा और विचार का संबंध अनित्य है। अतः यह मत निराधार है। संभवतः इन्हीं कारणों से मैक्समूलर ने भी बाद में इस मत की उपेक्षा कर दी थी।

(३) सांकेतिक उत्पत्ति—आदिकाल में मनुष्य गूँगों की भाँति संकेत तथा इंगितों द्वारा काम चलाता था; परंतु जब पारस्परिक संपर्क बढ़ गया और विचारविनिमय में कठिनता होने

लगी, तो एक बृहत् सभा द्वारा कुछ ध्वनिसंकेतों का निर्माण किया गया। वर्तमान भाषा इन्हीं का विकसित रूप है।'

इसके मानने में आपत्ति यह है कि जब भाषा ही नहीं थी तो उस सभा ने स्थिति पर विचार किस प्रकार किया। इस प्रकार उक्त तीनों मत निराधार हैं।

(४) *अनुकरणात्मक उपत्ति*—एक बार चीन में एक अंग्रेज ने भोजन में नवीन प्रकार का मांस देखकर पूछा, "क्योक क्योक ?" उत्तर मिला, "बाउ बाउ।" इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि बच्चे प्रायः पशुपक्षियों की बोली की नकल किया करते हैं और उनको उसी नाम से पुकारते हैं। उदाहरणार्थ, वे बिल्ली को म्याँऊ, कुत्ते को भौं भौं, बंदर को खों खों, बकरी को में में, चिड़िया को चूँ चूँ, कौवे को काँव काँव अथवा कोयल को कू कू, बत्तख को क्वेक क्वेक, पिल्ले को पी पी इत्यादि कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य में अनुकरण की प्रवृत्ति नैसर्गिक है। इसी आधार पर हरडर का मत है कि आदिकाल में मनुष्य जड़ तथा चेतन प्रकृति की प्राकृतिक ध्वनियों का अनुकरण करता रहा होगा और बाद में वही ध्वनियाँ उन पदार्थों तथा जीवों की प्रतीक बन गई होंगी। तदनंतर उन्हीं ध्वनिसंकेतों से अन्य शब्द बन गए होंगे, जैसे भौ भौं से भोंकना, भूकना, भौं भौं करना, पी पी से पिपियाना, में में से मिमियाना, इत्यादि। अतः भाषा का प्रारंभ अनुकरणात्मक शब्दों से हुआ है। यही कारण है कि प्रायः जानवरों तथा निर्जीव पदार्थों के वाचक शब्द उनकी स्वाभाविक ध्वनियों से मेल खाते हैं और भिन्न भिन्न भाषाओं में एक ही अथवा समान रूप से मिलते हैं। उदाहरणार्थ 'म्याऊँ' चीनी, मिश्री तथा भारतीय भाषाओं में एक ही रूप में प्रयुक्त होता है; सं० गो अं० Cow ग्री० Kuh, अं० Cat, लै० Catus, ज० Katze, सं० कुक्कुट, अं० Cock, हिं० भौंभौं, अं० Bow Bow, सं० कोकिल,

ग्री० Kokkyx, अं० Cuckoo इत्यादि के रूप से समानता है; तथा म्याँउ म्याँउ, Mewing, काँवकाँव Cawing, बबूला Bubble, बलबलाना, Babbling' भनभन Buzzing, हिनहिनाना, फ्रे० Hennir, फड़फड़ाना, Flapping. कड़कड़ाना Cracklng. गड़गड़ान Thunderig, इत्यादि और भी अनेक इसी प्रकार के अनुकरणात्मक शब्द हैं।

क्योंकि भाषा में बाह्य जगत के आधार पर बने हुए अनुकरणात्मक शब्दों के अतिरिक्त मनोभावाभिव्यंजक, प्रतीकात्मक, औपचारिक इत्यादि और भी अनेक प्रकार के शब्द पाए जाते हैं, जिनकी इस मत द्वारा व्याख्या नहीं हो सकती। अतः यह मत केवल आंशिक रूप में ही सत्य है।

(५) मनोरागात्मक उत्पत्ति—कांडिलक आदि कुछ विद्वानों का मत है कि 'मनुष्य ही क्या पशुओं तक में यह नियम पाया जाता है कि हर्ष, भय; शोक, आश्चर्य आदि मनोरागों तथा छींकना, खाँसना, फुंकारना आदि अनैच्छिक क्रियाओं के आवेग के समय उनके मुख से आह, उह, तथा छींह, फूँक, इत्यादि कुछ स्वाभाविक ध्वनियाँ सहज ही निकल पड़ती हैं। संभव है कि बाद से इन मनोभावाभिव्यंजक ध्वनियों में से कुछ उन्हीं मनोरागों तथा क्रियाओं की द्योतक हो गई हों और उनसे अन्य ध्वनिसंकेत निकले हों, जैसे धिक् से धिक्कार, धिक्कारना, दुरदुर से दुरदुराना, छिःछिः से छीछी, छिया, छी छी, वाह वाह से वाहवाही, बच्चे की Goo-Goo से Good, God तथा छींह अथवा अहः छिंह से छींक,, छीं छीं करना, छींकना; सर्प आदि पशुओं को फूँहफूँह से फुंकारना, फुँकारना, फूँकना, फुँकनी, फूह, खूँह खूँह अथवा खह खह से खाँसना, खखारना, खाँसी, कफ, cough, फुस्स से फुसकी, फुसफुस, फुसकारना डकार से डौं डौं उद्‌गार, हुचकी, से हुच हुच, हूचकना, इत्यादि। इसमत में निम्नलिखित दोष हैं—

(क) विस्मयादिबोधक अव्यय भाषा के अंग नहीं कहे जा सकते, क्योंकि मनुष्य उनका प्रयोग केवल उस समय करता है जब उसको बोलने में कष्ट होता है अथवा वह बोलना नहीं चाहता है। अतः इनका प्रारंभ भाषा की समाप्ति पर होता है।

(ख) भिन्न भिन्न जाति तथा देशों के विस्मयादिबोधक अव्ययों में समानता नहीं है जैसे शोक के समय भारतवासी 'हाय' अंग्रेजी Alas, हर्ष के समय भारतीय 'आहा' अंग्रेज़ Hurrah दुःख के समय भारतवासी आह, उह, अंग्रेज, oh फ्रेंच 'अहि', जर्मन 'औ' धिक्कारने के लिये भारतवासी धिक् धिक् अंग्रेज Fie-Fie इत्यादि करता है। अतः विस्मयादिबोधक अव्यय स्वाभाविक न होकर सांकेतिक अथवा परंपरागत हैं और भाषा के मूल तत्व नहीं हो सकते।

यदि हम विस्मयादिबोधक अव्ययों को भाषा के अंतर्गत न भी मानें, तो भी प्रत्येक भाषा में उनके आधार पर बने हुए अनेक ऐसे शब्द पाए जाते हैं, जिनको भाषा का पद प्राप्त है; इसके अतिरिक्त अनैच्छिक क्रियाओं से बने हुए शब्द तो भाषा के अंग हैं ही, परंतु इस प्रकार के शब्द थोड़े हैं। इस मत द्वारा समस्त शब्दभंडार की व्याख्या नहीं हो सकती, अतः यह भी केवल आंशिक रूप में ही सत्य कहा जा सकता है।

(६) *प्रतीकात्मक उत्पत्ति* :—स्वीट का मत है कि मनुष्य जड़ तथा चेतन प्रकृति की प्राकृतिक बोली, उसके स्वाभाविक गुणों द्वारा उत्पादित ध्वनियों तथा अपनी और अन्य पशुओं की अनैच्छिक क्रियाओं तथा मनोरागों के आवेग के समय वाह्य इंद्रियों द्वारा निर्गत स्वाभाविक आवाजों के अतिरिक्त अपनी तथा अन्य पशुपक्षियों आदि की साधारण क्रियाओं अथवा घटनाओं में होनेवाली स्वाभाविक ध्वनियों का भी अनुकरण करता होगा और उनके आधार पर भी ध्वनिसंकेत बनते होंगे। प्रत्येक भाषा में ऐसे शब्द

मिलते हैं जो उनमें होनेवाली क्रियाओं अथवा घटनाओं के प्रतीक अथवा संकेत हैं। उदाहरणार्थ, अरबी 'शरब' (شرب) अं० Sherbet हि० 'शरबत' सं० पिबति, हि० पीना, लै० बिबेरे; चूसना; गपकना कटकटाहट, किटकिटाहट, कड़कड़ाहट, किचकिचाहट, गपकना, dive डुबकी, इत्यादि अपनी क्रियाओं के प्रतीक हैं। इसी प्रकार आदिकाल में जब भाषा का अभाव था और मनुष्य गूँगे की भाँति हस्तादि इंगितों द्वारा विचार-विनिमय करता था, वह किसी वस्तु अथवा प्राणी की ओर संकेत करते समय इ–इ, अ–अ–आ, उ–उ, इत्यादि कुछ ध्वनियों का भी प्रयोग करता रहा होगा। बाद में यह ध्वनियाँ ही उनकी प्रतीक बन गई होंगी, जैसा कि इससे स्पष्ट है कि ग्रामीण तथा असभ्य भाषाओं में 'यह' और 'वह' की जगह अब भी 'इ' और 'उ' के प्रयोग होते हैं। यह, वह, तू, this, that, thou, ग्री० to इत्यादि सर्वनाम इसी प्रकार स्वरभेद से बने होंगे। जैस्पर्सन के अनुसार मामा, बाबा, पापा, इत्यादि भी इसी भेद के अंतर्गत आते हैं।

इस मत द्वारा भाषा के बहुत से शब्दों की व्याख्या हो जाती है, परंतु औपचारिक इत्यादि कुछ शब्द फिर भी शेष रह जाते हैं। अतः यह भी अपूर्ण है।

(७) औपचारिक उत्पत्ति—आजकल सादृश्य नियम का महत्व अधिक है। कुछ विद्वानों ने परंपराप्राप्त शब्दों का समाधान उपचार द्वारा करने का प्रयत्न किया है जिसका आधार ज्ञात द्वारा अज्ञात की व्याख्या करना है। इसकी पुष्टि इससे होती है कि बच्चे प्रायः अज्ञात वस्तुओं के नाम ज्ञात के आधार पर सादृश्यनियम के अनुसार रक्खा करते हैं। जैसे वायुयान की आवाज सुनकर अँगुली उठाकर, 'मोटर मोटर' चिल्लाते हैं, केंचुएँ को साँप इत्यादि कहा करते हैं। इसी प्रकार माली अनेक नए विदेशी पौदों के नाम रक्खा करते हैं। गुलमेंहदी, 'मेंहदी' की समानता पर बना हुआ

इसी प्रकार का नाम है। ज्योतिष, रेखागणित, गणित, विज्ञान आदि के नाम तो सभी औपचारिक हैं। क्योंकि औपचारिक शब्दों के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के शब्दों की व्याख्या इस मत से नहीं हो सकती, अतः यह भी पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

(८) समन्वित उत्पत्ति—हम देखते हैं कि उक्त मतों में से प्रथम तीन तो निराधार हैं परंतु अंतिम चार अपूर्ण होने पर भी अंशतः ठीक अवश्य हैं। क्योंकि इनमें से किसी से भी पृथक् तथा समस्त भाषाभंडार की व्याख्या नहीं हो सकती, अतः व्यष्टिरूप से कोई मत भी पर्याप्त नहीं है। फरार ने अनुकरणमूलकतावाद तथा मनोभावाभिव्यंजकतावाद का एकीकरण करके और स्वीट ने भाषा को अनुकरणात्मक, मनोभावाभिव्यंजक तथा प्रतीकात्मक भागों में विभाजित करके, समन्वितवाद द्वारा भाषा की उत्पत्ति समझाने का प्रयत्न किया है। उनकी व्याख्या भिन्न भिन्न आधारों पर निर्धारित है, परंतु उनका कोई मूल आधार नहीं है अतः उन मतों में समष्टि में भी व्यष्टि है। यदि हम अंशतः सत्य मतों के आधारों के एकीकरण द्वारा एक मूल आधार ज्ञात करके समन्वय करें, तो एक निरापद मत निकल सकता है। अनुकरणमूलकतावाद में मनुष्येतर प्राणियों तथा निर्जीव पदार्थों की प्राकृतिक ध्वनियों का मनोभावाभिव्यंजकतावाद में मनोभावों तथा अनैच्छिक क्रियाओं में होनेवाली स्वाभाविक ध्वनियों का, प्रतीकवाद में मनुष्य तथा अन्य प्राणियों की साधारण क्रियाओं द्वारा उत्पन्न ध्वनियों का और उपचारवाद में ज्ञात शब्दों का, अनुकरण होता है। इन सबके मूल में काम करनेवाली अनुकरण की प्रवृत्ति है। अतः इन सब मतों का मूल आधार 'अनुकरण' ही है, परंतु केवल अनुकरण द्वारा उत्पादित भाषा पशुपक्षियों की भाँति कुछ निरर्थक ध्वनियों का समूह मात्र होगी, जिनका ईश्वरप्रदत्त बुद्धि द्वारा सांकेतिक तथा संबंधित होना नितांत आवश्यक है। यह संसर्ग अथवा संबंध सादृश्य

नियमानुसार होता है। अतः भाषा वह सामाजिक तथा सांकेतिक संस्था है जो संसर्गज्ञान का फल है जिसकी उत्पत्ति "जड़ तथा चेतन प्रकृति की प्राकृतिक बोलियों तथा उनकी क्रियाओं में होने वाली स्वाभाविक ध्वनियों और उनके द्वारा बने हुए ध्वनिसंकेतों के, सादृश्य नियम के अनुसार बुद्धिपूर्वक अनुकरणमात्र से हुई है"।

उक्त अनुकरणात्मक समन्वित मत सर्वश्रेष्ठ होने पर भी निर्दोष नहीं कहा जा सकता। इसमें भाषोत्पत्ति के पूर्व मनुष्य मूक अथवा पशुवत् ठहरता है, जो विकासवाद के विरुद्ध है कारण कि भाषणशक्ति तो मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है, वह निरर्थक कैसे रह सकती है? अतः मनुष्य आदिकाल में भी किसी न किसी प्रकार का भाषण अवश्य करता रहा होगा। इसके अतिरिक्त इससे भी समस्त भाषाभंडार की व्याख्या होने में संदेह है। अतः अभी जैस्पर्सन की भाँति बच्चों तथा असभ्य भाषाओं के अनुशीलन तथा उपलब्ध प्राचीन भाषाओं के इतिहास के अध्ययन द्वारा और अनुसंधान तथा सत्य की खोज करने की आवश्यकता है।

अध्याय ३

भाषाओं का वर्गीकरण

(क) भाषाओं का रचनात्मक वर्गीकरण

भाषा का चरम अवयव—भाषाओं के रचनात्मक वर्गीकरण का आधार भाषा का चरम (छोटे-से छोटा परंतु स्वतः पूर्ण) अवयव है, अतः उसका जान लेना नितांत आवश्यक है। भाषा मानसिक क्रिया का फल है, विचार भाषा का प्राण अथवा आत्मा है, भाषा उन्हीं का बाह्य अथवा भौतिक स्वरूप है, विचारों का बोध वाक्यों द्वारा होता है। जिस प्रकार विचार (थाट) के अंतर्गत भाव (आइडिया)* होते हैं, उसी प्रकार वाक्य के अंतर्गत शब्द होते हैं; परंतु जिस प्रकार भाव से पहले विचार आता है, उसी प्रकार शब्द से पहले वाक्य आता है तथा जिस प्रकार विचार से पृथक् भाव की कोई स्थिति नहीं होती, उसी प्रकार वाक्य से स्वतंत्र शब्द का कोई

*विचार से पूरे विचार का अर्थ है—जैसे पुस्तक मेज पर रक्खी है, किंतु पुस्तक और मेज का बोध, भाव (आइडिया या कन्सेप्ट) है। कहने का तात्पर्य यह है कि पहले पूरा विचार आता है। वाक्य ही भाषा का छोटे-से-छोटा अवयव है। हमारे विचार का छोटे-से-छोटा बाह्य स्वरूप वाक्य ही है, शब्द नहीं। शब्दों को जोड़कर वाक्य नहीं बनाए जाते, वरन् पहले पहल वाक्य ही आता है। मीमांसादर्शन में इस विषय की अच्छी विवेचना है। शब्दों का अर्थ वाक्य से स्वतंत्र मानने या न मानने के संबंध में दो संप्रदाय भी हैं।

अस्तित्व नहीं होता। यद्यपि प्रत्येक शब्द में एक सांकेतिक अर्थ छिपा रहता है, तथापि जब तक वह वाक्य में प्रयुक्त नहीं होता उससे किसी अर्थ का बोध नहीं होता। जैसे यदि कोई कहे 'पुस्तक' तो समझ में नहीं आता कि प्रोक्ता क्या चाहता है; परंतु यदि वह कहता है 'पुस्तक लाओ', तो उसका आशय समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। अतः शब्द का महत्त्व वाक्य ही से है।

भाषा की प्रारंभिक अवस्था की तुलना बच्चों की भाषा से की जाती है। बच्चा वाक्यों में ही सोचता और बोलता है, जैसे 'पानी'- अथवा 'गोदी' कहने से उसका अभिप्राय 'पानी दे दो' अथवा 'गोदी ले लो' होता है। इसी प्रकार आदिकाल में ध्वनिसंकेतों का निर्माण वाक्यों से पूर्व भले ही हुआ हो, परंतु उनका प्रयोग वाक्यों के लिये ही होता था। यही कारण है कि उपलब्ध प्राचीन भाषाओं में अब भी अनेक शब्द वाक्यों ही के द्योतक हैं। जैसे ग्रीक 'Eureka' = मुझे मिल गया, लैटिन Adsit = उसे अनुपस्थित होने दो, Resurgam' = मैं फिर उठूँगा, फ्रेंच 'Attons' = आओ हम लोग चलें, 'Voila;= देखो यहाँ पर है या हैं, Gi-git' = यहाँ पर है; मेक्सिको 'नीनकक' = मैं मांस खाता हूँ, काफिर 'सिमतदा' = हम उसे प्यार करते हैं, संस्कृत 'गच्छामि' मैं जाता हूँ; फारसी آمدم (आमदम) = मैं आया, अरबी كتب (कतब) उसने लिखा, बास्क 'दकर्किआत' = मैं उसे उसके पास ले जाता हूँ, इत्यादि। इसके अतिरिक्त चेरो की भाषा में 'सिर धोना', 'मुँह धोना' इत्यादि अनेक प्रकार के धोने के लिये १३ वाक्यक्रियाएँ हैं, परंतु 'धोने' के लिये कोई स्वतंत्र क्रिया नहीं है। जब 'धोने' के लिये स्वतंत्र धातु निकल आयगा, तो उससे अनेक प्रकृतियाँ और रूप निकलते रहेंगे। भाषा के मूलतत्त्व, धातुओं का निष्क्रमण इसी प्रकार वाक्यशब्दों अथवा वाक्यों से हुआ है।

यद्यपि कुछ समय से हम लिखने में शब्दों के बीच स्थान छोड़ने

लगे हैं परंतु बोलने में अब भी वाक्यों का ही प्रयोग करते हैं। चाहे वे हाँ, न, आ, जा, चल, भाग, इत्यादि एक ही एक शब्द के क्यों न हों।

अतः भाषा का चरम अवयव वाक्य है। परंतु चूँकि वाक्य-विचार करने के लिये वाक्यों का शब्दों में उसी प्रकार विश्लेषण करना पड़ता है, जिस प्रकार शब्दविचार करने के लिए शब्दों का प्रकृतिप्रत्यय में अथवा वर्णविचार करने के लिये वर्णों में, अतः वैज्ञानिक अथवा व्यावहारिक दृष्टि से भाषा का चरम अवयव शब्द है। इस प्रकार भाषा के चरम अवयव दो हुए—वाक्य और शब्द। एक भाषावैज्ञानिक अथवा वास्तविक और दूसरा वैज्ञानिक अथवा व्यावहारिक; परंतु चूँकि शब्द वाक्य ही के अंतर्गत है, अस्तु सार्थक शब्दसमूह से संबद्ध रूप ही का नाम वाक्य है। वाक्यभेद शब्दभेद पर ही निर्भर है. अतः ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं और एक दूसरे से पृथक् नहीं किए जा सकते। इन दोनों के संमिश्रण से एक समन्वित चरम अवयव 'शब्दानुसार वाक्य' बन जाता है। रचनात्मक वर्गीकरण का आधार 'शब्दानुसार वाक्यभेद' ही है।

वर्गीकरण—रचना की दृष्टि से शब्दों का, तदनुसार वाक्यों तथा भाषा का, श्रेणीविभाग दो प्रकार से हो सकता है, (१) विकासक्रमानुसार, (२) शब्दाकृतिमूलक अथवा रूपात्मक।

(१) *विकासक्रमानुसार वर्गीकरण*—यह वर्गीकरण भाषाओं के विकास की व्यवस्था पर अवलंबित है।

(क) शब्दभेद—जब केवल एक ही शब्द वाक्य अथवा वाक्यखंड के अर्थ का द्योतक होता है, तो वह संश्लिष्ट कहलाता है; परंतु जब वही अर्थ कई शब्दों द्वारा प्रकट होता है, तो वे विश्लिष्ट कहलाते हैं, उदाहरणार्थ सं० अकरवम्=अहं कृतवान्, फा كتابم (किताबम्)=كتاب من (किताबे मन), हिं० व्युत्पत्त्यनुसार=व्युत्पत्ति के अनुसार, मनोविकार=मन के विकार, परमैश्वर्य=

परम ऐश्वर्य, इत्यादि में अकबरम्, किताबम्, व्युत्पत्यनुसार, मनोविकार तथा परमैश्वर्य संश्लिष्ट और 'अहं कृतवान्', किताबें मन, व्युत्पत्ति के अनुसार, मन के विकार तथा परम ऐश्वर्य विश्लिष्ट शब्द हैं। इस प्रकार शब्दरचना दो प्रकार की हुई—संयोगी और वियोगी अथवा संहित और व्यवहित।

वाक्यभेद—ऊपर उल्लेख हो चुका है कि भाषा का आरंभ वाक्य शब्दों से हुआ है, जिनमें उद्देश्य विधेय आदि का भेद न था अर्थात् आदिकालीन वाक्य संश्लेषणात्मक थे। मन अथवा मस्तिष्क का यह स्वभाव है कि वह जटिलता से सरलता की ओर अग्रसर होता है, तदनुसार ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, जातीय आदि बाह्य कारणों से, संश्लेषणात्मक वाक्यशब्द उत्तरोत्तर विश्लेषणात्मक होते गए। उदाहरणार्थ, प्राचीन काल में संस्कृत में केवल 'अगच्छम्' ही प्रयुक्त होता था, जिसमें सर्वनाम (कर्त्ता) क्रिया में अंतर्हित था और उद्देश्यविधेय अथवा कर्त्ताक्रिया का भेद स्पष्ट न था, परंतु आजकल 'अहं गतवान्' भी प्रयुक्त होता है, जिसमें सर्वनाम का क्रिया से पृथक्करण हो जाने से उद्देश्यविधेय अथवा कर्त्ताक्रिया का भेदीकरण हो गया है। इस प्रकार प्राचीन तथा आधुनिक वाक्यों में बड़ा अंतर हो गया है, प्राचीन वाक्य संहित थे, परंतु आधुनिक व्यवहित हैं। इस प्रकार शब्दरचना की भाँति वाक्यरचना भी दो प्रकार की हुई—संहित और व्यवहित।

(ग) *भाषाभेद*—उक्त वाक्यरचना के आधार पर भाषा की भी दो अवस्थाएँ हैं—संहित और व्यवहित। प्राचीन सभी भाषाएँ प्रायः संहित और आधुनिक व्यवहित हैं। उदाहरणार्थ आधुनिक संस्कृत वैदिक संस्कृत से, आधुनिक देशी भाषाएँ अपभ्रंश से, आधुनिक ग्रीक प्राचीन ग्रीक से, आधुनिक हिब्रू प्राचीन हिब्रू से, अँग्रेजी एंग्लोसेक्सन से, इटैलियन लैटिन से तथा फारसी पहलवी से अधिक व्यवहित हैं। वास्तव में जिस

भाषा पर जितना ही अधिक बाह्य प्रभाव पड़ता है वह उतनी ही व्यवहित हो जाती है—जैसे यद्यपि हिब्रू और अरबी दोनों एक ही परिवार की भाषाएँ हैं, तथापि हिब्रू अरबी से अधिक व्यवहित है। इसका कारण यह है कि हिब्रू विजित यहूदियों की भाषा होने के कारण अन्य भाषाभाषियों से प्रभावित हुई, परंतु अरबी विजयी अरबियों की भाषा होने के कारण बाह्य प्रभाव से बची रही। इसी प्रकार उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के अधिक काल तक अज्ञात रहने के कारण अमेरिकन भाषाएँ तथा लिथुआनियाँ के उच्च पर्वत श्रेणियों से घिरे रहने और उसकी जलवायु जीवनोपयोगी न होने के कारण लिथुआनियन भाषा अब भी बहुसंहित है।

यह याद रखना चाहिए कि कोई भाषा न तो सदैव संहित ही रहती है और न व्यवहित ही। यह भाषाचक्र चलता ही रहता है। जो भाषा आज संहित है, वह कल व्यवहित है और जो आज व्यवहित है वह कल संहित दिखाई देती है। यह एक स्वाभाविक नियम है कि जब भाषा इतनी क्लिष्ट हो जाती है कि विचार-विनिमय में बाधा पड़ने लगती है, तो उसे सरल बनाने का प्रयत्न किया जाता है, परंतु जब वह अत्यंत सरल हो जाती है, तो उसे परिष्कृत किया जाता है, जिससे वह कुछ क्लिष्ट हो जाती है। भाषाचक्र इसी प्रकार चलता है।

(२) शब्दाकृतिमूलक अथवा रूपात्मक वर्गीकरण—

शब्दभेद—आदिकालीन शब्द, वाक्यशब्द थे जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। क्योंकि इनमें अनेक पद समास की भाँति एक दूसरे में संश्लिष्ट होते थे, अतः इन्हें समासप्रधान कह सकते हैं। बाद में बाह्य कारणों के प्रभाव से इनसे धातुओं का निष्क्रमण हुआ, जिनसे अनेक प्रकृतियाँ निकलीं। चीनी भाषा में इस प्रकार के अनेक धातुशब्द पाए जाते हैं—जैसे न्गो, जिन तो

नी, लू इत्यादि। धीरे धीरे इन प्रकृतियों में से कुछ घिसते घिसते प्रत्यय बन गए। जैसे मध्ये से में, पार्श्व से पर, Like से ly इत्यादि। वे शब्द जो प्रकृति तथा प्रत्यय के स्पष्ट योग से बनते हैं—जैसे costs, player, books, गाड़ीवान, ऊँटनी, रमवत्, इत्यादि प्रत्ययप्रधान कहलाते हैं। तत्पश्चात् जब कुछ प्रत्यय ह्रास होते होते इतने विकृत हो गए कि उनके मूलरूप का अनुसंधान करना असंभव हो गया, तो वे विभक्ति कहलाने लगे। ऐसे शब्द जो प्रकृति तथा विभक्ति के संयोग से बनते हैं जैसे संस्कृत अकः, रामाय, अरबी قاتل (क़ातिल) كتب (कुतुब) आदि, विभक्तिप्रधान कहलाते हैं। शब्दावयव—प्रकृति तथा प्रत्यय—के अनुसार धातु निरवयव और प्रत्यय-प्रधान तथा विभक्तिप्रधान शब्द सावयव कहे जा सकते हैं।

(ख) वाक्य भेद—शब्दाकृतिमूलक शब्दभेदानुसार वाक्य के भी चार भेद हैं। (१) वे वाक्य जिनमें उद्देश्यविधेय अथवा कर्त्ता-क्रिया-कर्म आदि समासरूप में एक दूसरे से संश्लिष्ट होते हैं समासप्रधान कहलाते हैं, जैसे मकुंजे, इसमें 'मं' (कर्त्ता), 'कुञ्ज' (क्रिया) तथा 'जे' (अव्यय) तीनों का संश्लेषण हो गया है; (२) वे वाक्य जिनमें धातुशब्दों का स्वतंत्र रूप से प्रयोग होता है व्यासप्रधान कहलाते हैं—जैसे चीनी जिन न्गो (३) वे वाक्य जिनमें शब्दरूप प्रत्यय द्वारा बनते तथा प्रकट होते हैं, प्रत्यय-प्रधान कहलाते हैं जैसे तुर्की ओलोरिम, सेवरिम आदि में 'इम' प्रत्यय उत्तमपुरुष एकवचन क्रिया का द्योतक है, तथा (४) वे वाक्य जिनमें व्याकरणिक संबंधों का बोध विभक्ति द्वारा होता है, विभक्तिप्रधान कहलाते हैं, जैसे संस्कृत अस्मि, गच्छामि आदि में 'मि' विभक्ति उत्तमपुरुष एकवचन कर्त्ताकारक की द्योतक है।

(ग) *भाषाभेद*—उक्त शब्दाकृतिमूलक वाक्यभेद के अनुसार हम भाषाओं को क्रम से समासप्रधान, व्यासप्रधान, प्रत्ययप्रधान तथा विभक्तिप्रधान चार श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—

(क) *समासप्रधान भाषाएँ (अ) पूर्णतः समासप्रधान अथवा बहुसंहित—विशेषताएँ* (१) इस प्रकार के वाक्यों में शब्द एक दूसरे से इतने संश्लिष्ट होते हैं कि समस्त वाक्य एक वाक्यशब्द प्रतीत होता है—जैसे मेक्सिको की भाषा में 'no-tiazomahuiz teopixcatzine = no (my) + tiazontli (esteemad) +mahuiztic (revered) + teoti (god) + Pixqui (protector) + tatzi father = O my Father Divine and revered protector, ग्रीनलैंड की भाषा में औलिसरटररेसुअर्पाक' = औलिसर (मछली मारना) + पीयर्टर (में लगना) + पिनेसुअर्पाक (वह शीघ्रता करता है = वह शीघ्रता से मछली मारने जाता है, चेरो की भाषा में 'नाधोलिनिन = नातन (लाना) + अमोखल (नाव) + निन (हम) = हमें नाव लाओ, इत्यादि।

(२) पदसंश्लेषण में प्रायः अक्षर लुप्त अथवा परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है।

(३) उद्देश्यविधेय अथवा कर्त्ता-क्रिया-कर्म आदि सब एक दूसरे से ऐसे मिल जाते हैं कि उनका भेद करना कठिन हो जाता है, जैसा कि उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है।

(४) यदि किसी शब्द पर बल दिया जाता है तो उसको वाक्य के अंत में रख देते हैं और उसकी जगह, उसका सर्वनाम बढ़ा देते हैं, जैरे मान लो कि 'मैं किताब पढ़ाता हूँ' में 'किताब' पर बल देना है तो कहेंगे 'मैं उसको पढ़ाता हूँ किताब को।'

(५) वस्तुओं तथा जीवजंतुओं के नाम बड़े लंबे होते हैं, जैसे

३—Laffvre, 'Rice and Language' page 51.

Kwa Kwauh. tentone* = सींग और दाढ़ीवाला अर्थात् बकरा।

क्षेत्र—उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के आदिनिवासियों की भाषाएँ।

(आ) अंशतः समासप्रधान—

विशेषताएँ—(१) वाक्य में कुछ शब्द संश्लिष्ट होते हैं और कुछ विश्लिष्ट अर्थात् वाक्यरचना संहित होते हुए भी अंशतः व्यवहित होती है, जैसे सं० 'बुद्धं शरणम् गच्छामि,' ग्रामं गच्छति, तुर्की 'आगामह सेवरिम; तेलुगु 'गुरनुनु' पंपतुन्नानु'; फारसी گرفتش یک سنگ (गरफ्तश यक संग), از قلمت نوشتم (अज़ कलमत नविश्तम), इत्यादि।

(२) संहित अंशों में संश्लेषण निम्न प्रकार होता है—

(च) *सर्वनाम का क्रिया में समावेश* :—जब कर्ता या कर्म अथवा दोनों सर्वनाम होते हैं, तो ये प्रायः क्रिया में अंतर्हित हो जाते हैं, जैसे सं० अस्मि, ददामि, गच्छामि, अगच्छम्; तुर्की आलोरिम; फा० رفتم (रफ्तम); गुज० मंकुजे, इत्यादि में कर्ता 'मैं' तथा अरबी فعل (फ़अल), फा० گفت (गुफ्त), सं० गच्छति, अभविष्यत्, जिगमिषति, इत्यादि में कर्ता 'वह' क्रिया में अंतर्हित है। बांतू 'सिमतंदा' में कर्म 'उसे' का क्रिया में समाहार हो गया है, तथा वास्क 'नकसु' में कर्त्ता 'तू' और कर्म 'मुझे' दोनों 'ले जाना' क्रिया में संश्लिष्ट हो गए हैं।

(छ) सर्वनाम का संज्ञा में संश्लेषण—जब संबंधवाचक सर्वनाम संज्ञा के साथ आता है, तो उससे संश्लिष्ट हो जाता है, जैसे फा० پدرش (पिदरश), پدرت (पदरत) پدرم (पिदरम), तुर्की में एवलेरि, इत्यादि।

*—डा० मंगलदेव शास्त्री, तुलनात्मक 'भाषा शास्त्र'।

(ज) कभी कभी पूर्णतः समासप्रधान भाषाओं की भाँति कर्त्ता-क्रिया-कर्म अथवा संज्ञा, क्रिया, सर्वनाम आदि का संश्लेषण हो जाता है, जैसे—सं० नदीमगच्छम् ।

क्षेत्र—आंशिक समास के उदाहरण प्रत्ययप्रधान तथा विभक्ति-प्रधान भाषाओं में पाए जाते हैं। इस प्रकार की मुख्य भाषाएँ संस्कृत, वास्क, अरबी, फारसी, बांटू, इत्यादि हैं। कभी कभी लैटिन, फ्रैंच, ग्रीक तथा अंग्रेजी में भी इस प्रकार के उदाहरण पाए जाते हैं।

(ख) *व्यासप्रधान भाषाएँ*—इन्हें एकाक्षर भी कहते हैं। इनका सबसे सुंदर उदाहरण चीनी भाषा है।

विशेषताएँ—(१) वाक्यरचना पूर्णतः व्यवहित होती है, जैसे जिन न्गो, नी ता न्गो, जिन ता, इत्यादि।

(२) निरवयव धातुशब्दों का प्रयोग होता है जिनमें केवल प्रकृति होती है, परंतु संस्कृत, फारसी, हिंदी अथवा अंग्रेजी धातुओं की भाँति उनसे अनेक शब्द तथा रूप नहीं निकलते अर्थात् वे भिन्न भिन्न शब्दों तथा अनेक रूपों में ज्यों के त्यों रहते हैं। अतः उनमें प्रकृतिप्रत्यय का भेद नहीं होता और संज्ञा, क्रिया, विशेषण, क्रियाविशेषण आदि शब्दभेद तथा उद्देश्य-विधेय, कारक आदि व्याकरणिक संबंधों का बोध शब्दों के स्थान से होता है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह विषय स्पष्ट हो जायगा—

(च) *वचन तथा लिंग*—हिंदी में बहुवचन बनाने के लिये शब्द के अंत में बहुवचन प्रत्यय लगा देते हैं, जिससे उसके रूप में भेद हो जाता है, जैसे मनुष्य से मनुष्यों; परंतु चीनी में कोई समूह-वाचक शब्द बढ़ा देते हैं, अतः उसका रूप ज्यों का त्यों रहता है, जैसे 'जिन' से तो 'जिन' (अनेक) अथवा 'जिन क्यई (सब)। इसी प्रकार स्त्रीलिंग बनाने के लिये 'नियु' और पुलिंग के लिए 'नैन'

लगा देते हैं, जैसे 'नियुत्से (लड़की) 'नैनत्से' (लड़का) तथा 'नियुत्से' (स्त्री)।

(छ) *स्थान और शब्दभेद*—यदि कोई शब्द संज्ञा के पूर्व आएगा तो विशेषण और यदि बाद में आएगा तो क्रिया अथवा भाववाचक संज्ञा होगा, जैसे 'न्गो (बुरा) जिन (मनुष्य)' में न्गो विशेषण है परंतु 'जिन न्गो' में 'गो' क्रिया अथवा भाववाचक संज्ञा है। इस प्रकार 'न्गो' के अविकृत रहने पर भी उसके शब्दभेद का बोध उसके स्थान से हो गया।

(ज) *शब्दस्थान तथा व्याकरणिक संबंध*—शब्दक्रम अँग्रेजी की भाँति कर्त्ता-क्रिया कर्म ही रहता है जैसे 'जिन ता न्गो' में जिन (मनुष्य) कर्त्ता, ता (मारना) क्रिया तथा 'न्गो' (मुझे) कर्म है; यदि 'न्गो ता जिन, कर दिया जाय, तो 'न्गो' कर्त्ता हो जायगा। इस प्रकार 'न्गो' के कारक आदि का ज्ञान उसके स्थान से होता है।

३—शब्द एकाक्षर होते हैं अर्थात् 'एक स्वर और अनेक व्यंजन से बने होते हैं, अतः जैसे अनेकाक्षर भाषाओं में अक्षरावस्थान से अनेक शब्द बन जाते हैं वैसे चीनी भाषा में नहीं बन सकते। फलतः भिन्न भिन्न अर्थों के बोधक स्वतंत्र शब्द अति न्यून संख्या में हैं, परंतु इसकी पूर्ति निम्न प्रकार से हो जाती है—

(च) लहजे (सुर) के परिवर्तन से अर्थभेद हो जाता है, जैसे 'मु' के अर्थ एक लहजे से उच्चारण करने से जंगल, धोना, पर्दा आदि हैं और दूसरे से माता, अँगूठा आदि।

(छ) शब्द के प्रारंभिक व्यंजन तथा स्वर के बीच 'ह' जैसा वर्ण जोड़ देते हैं।

(ज) एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, जैसे 'लू' के अर्थ हैं ओस, गाड़ी, रत्न, जाल करना, एक ओर हटना, रास्ता इत्यादि। अर्थ की

अस्पष्टता दूर करने के लिये दो पर्यायवाची परंतु भिन्नाकार शब्द एक साथ रख देते हैं, जैसे ता (मार्ग) लू (मार्ग) ।

४—यद्यपि चीनी भाषा में अन्य भाषाओं की भाँति स्वतंत्र विभक्तियाँ नहीं होतीं, तदपि कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो मुख्य शब्दों के साथ आकर विभक्ति का काम देते हैं जैसे 'य' मानी 'लगाना' या 'प्रयोग करना' परंतु 'यचैग' (छड़ी से) में 'य' का अर्थ है 'से'; 'छिह' मानी 'जाना', परंतु 'मु छिह त्सु' (माँ का पुत्र) में 'छिह' का अर्थ है 'का'; इसी प्रकार 'युओ ली' में ली का अर्थ है 'में' तथा 'त्युंग पीकिंग लई' त्युंग लई का अर्थ है 'से'। इस प्रकार के शब्दों को रिक्त कह सकते हैं। अतः एकाक्षर भाषाओं में पूर्ण और रिक्त दो प्रकार के धातु होते हैं।

५—क्रियाओं में काल तथा काल-भेद-सूचक रूप नहीं होते। भिन्न-भिन्न काल तथा कालभेद बनाने के लिये क्रियाओं में अन्य क्रियाएँ जोड़ दी जाती हैं, जैसे त्सेऊ (चलना) से त्सेऊ-लिअउ = (चलना-समाप्त करना)=चला, इ की-त्सेऊ = (पहिले ही + समाप्त करना + चलना) = चला है, यऊ त्सेऊ = (चाहना+चलना) = चलेगा।

क्षेत्र—एशिया की चीनी, तिब्बती, वर्मी, स्यामी तथा अनामी भाषाएँ और अफ्रीका की सूडानी भाषा।

विशेषताएँ :—(१) वाक्य-रचना तो व्यवहित होती है, परंतु शब्द सावयव होते हैं जिनका निर्माण प्रकृति तथा प्रत्यय के स्पष्ट योग से होता है। प्रत्यय का सहज ही पृथक्करण किया जा सकता है जैसे तुर्की में 'एवलेरिमदन' = एव (घर, प्रकृति लेर)+(बहुवचन बोधक प्रत्यय)+ इम (मेरा, संबंधवाचक सर्वनाम)+दन (से, अधिकरण कारक प्रत्यय), सेव-इश-दिर इल-मे मेक = सेव-मेक (प्यार करना, प्रकृति)+इश (परस्पर) +दिर (प्रेरणार्थक क्रिया का चिह्न)+ इल (कर्मवाच्य का चिह्न)+ में

(नहीं); तेलुगु में नी-चेता = नी (तू प्रकृति) + चेता (से, करण कारक का चिन्ह), इत्यादि।

(२) व्याकरणिक संबंध प्रत्यय द्वारा प्रकट होते हैं, जैसा कि उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है।

(३) फारसी की भाँति तुर्की में भी सर्वनाम संज्ञा में संश्लिष्ट हो जाता है—जेसे एविम (मेरा घर), एवमुज (उनका घर)। एवन (तेरा घर), एवनिज (तुम्हारा घर), एवी (उसका घर) तथा एवलेरी (उनका घर)।

(४) प्रकृति सदैव अविकृत रहती है, भिन्न भिन्न व्याकरणिक संबंधों में, संस्कृत फारसी की भाँति इसके रूप में परिवर्तन नहीं होता, जैसा कि उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है। हाँ सर्वनाम प्रकृति में अधिक प्रयोग के कारण, कुछ विकार हो जाता है, जैसे तेलुगु में उत्तम पुरुष एकवचन सर्वनाम, कर्त्ताकारक में 'नेन' परंतु संप्रदान कारक में 'नाकु' होता है।

(५) यद्यपि प्रत्यय में विकार नहीं होता, तदपि इस कारण कि प्रत्यय का स्वर प्रकृति के अंतिम स्वर के अनुरूप होना चाहिए, कभी कभी उसका रूप कुछ परिवर्तित हो जाता है। जैसे* sev+mak = sev-mek, ev + lar = evler आदि।

(अ) पुरःप्रत्यय (पूर्वसर्ग) प्रधान भाषाएँ—विशेषता— प्रत्यय प्रकृति के पूर्व आता है। जैसे अंबुत वेतु अवन्चिल वयवो नकल में रेखांकित पद प्रत्यय है।

क्षेत्र—मध्य अफ्रीका की बांतू, जूलू, सुआहिली आदि भाषाएँ।

(आ) परप्रत्यय (परसर्ग) प्रधान भाषाएँ—विशेषता— प्रत्यय प्रकृति के बाद में आता है।

*डा० मंगलदेव शास्त्री 'भाषा-विज्ञान' पृ० ८०

क्षेत्र—यूराल, अल्टाई, द्राविड़ तथा कोल परिवारों की भाषाएँ और हंगेरियन।

(इ) *सर्गप्रत्यय (पूर्वसर्ग, परसर्ग आदि) प्रधान भाषाएँ*—*विशेषता*—प्रत्यय प्रकृति के आदि; अंत तथा मध्य सब में आता है।

क्षेत्र—मलाया तथा पूर्वी द्वीपसमूह की मलयन तथा मलयेशियन भाषाएँ।

(ई) *ईषत प्रत्ययप्रधान*—*विशेषता*—प्रत्ययप्रधान होते हुए भी इनका झुकाव समास, व्यास अथवा विभक्ति की ओर है, जैसे जापानी तथा काकेशियन का विभक्ति की ओर, हाउसा का व्यास की ओर तथा वास्क का समास की ओर है।

क्षेत्र—वास्क, जापानी, काकेशियन, हाउसा आदि पालिनेशियन परिवार की भाषाएँ।

विभक्तिप्रधान भाषाएँ—

विशेषताएँ—(१) यद्यपि व्याकरणिक संबंध का बोध प्रत्ययों द्वारा होता है, शब्द सावयव होते हैं और प्रकृतिप्रत्यय में योग से बनते हैं, तथापि प्रत्यय प्रकृति में इतने अस्पष्ट रूप से संश्लिष्ट हो जाता है कि उसका विश्लेषण करना कठिन है और यदि संयोग से पृथक्करण हो भी जाय, तो उसके मूलरूप का पता लगाना असंभव है, जैसे सं० अक:, चकार आदि यद्यपि कृ धातु से बने हैं, तथापि इनमें प्रत्यय का पृथक् से बताना कठिन है, तथा 'अस्मि = अ (धातु) + मिस् (प्रत्यय, जिससे उत्तम पुरुष एकवचन कर्त्ता का बोध होता है), परंतु संस्कृत में 'मैं' अर्थवाला 'मि' जैसा कोई शब्द नहीं मिलता।

(२) प्रत्ययप्रधान भाषाओं में प्रकृति तथा प्रत्यय अविकृत रहते हैं, परंतु विभक्तिप्रधान भाषाओं में दोनों में विकार होता है। कभी कभी तो तो वे इतने विकृत हो जाते हैं कि उनका अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है। निम्नलिखित उदाहरणों से इसका स्पष्टीकरण हो जायगा—

(२) *प्रत्यय विकार*—सं० 'गच्छताम्' में 'ता' का ताम् और 'अगच्छम्' में 'मी' का अम् हो जाता है तथा 'एधि' में 'सि' परिवर्तित और गच्छः में तो पूर्णतः लुप्त ही हो जाता है। इसी प्रकार लै० 'सम' तथा गाथिक 'इम' में 'मि' का 'म' ही शेष रह गया है।

(छ) *प्रकृतिविचार*—सं० पिबति में 'पा' का 'पिब्' तिष्ठति में में 'स्था' का तिष्ठ; गच्छति में गम् का गच्छ, धमति में ध्मा का धम्, इच्छति में 'इष्' का इच्छ, जिघ्रति में घ्रा का जिघ्र अथवा शक्नोति में में शक् का शक्नो हो जाता है तथा एतत् में इदम् का अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार सं० अस् ग्री० 'एइमि' में 'एइ', लै० 'सम' में 'स' तथा गा० 'इम्' में 'इ' हो जाता है।

(३) किसी किसी भाषा में अक्षरावस्थान (सुर अथवा स्वर परिवर्तन) से अर्थभेद होता है जैसे अंग्रेजी में sing—song, bite—bit, tip—tap, foot—feet, pock—peek, clip—clap, clink—clank, fall—fell तथा swim—swam—swum, take—took, get—got, bear—bore, इत्यादि में, और अरबी में کتاب (किताब), کتب (कुतब), طائر (तायर), طیور (तयूर) فعل (फेल), فاعل (फाइल), قتل (कत्ल) قتل (कतल), قتل (कुतल) इत्यादि में।

(अ) *बहिर्मुखी विभक्तिप्रधान भाषाएँ—विशेषताएँ*—विभक्ति प्रायः बहिर्मुखी होती है और प्रकृति के अंत में आती है—जैसे अभवम् में 'अम्' भूतकाल की विभक्ति 'भू' के बाद में है (१) ये विभक्तियाँ अपनी प्रारंभिक अवस्था में संभवतया स्वतंत्र शब्द थीं, उदाहरणार्थ 'ship' shape से, 'ने' सं० तन अथवा एन से, 'को' कृतं अथवा कक्षं से, तथा 'का सं० कृतः से निकली प्रतीत होती हैं। (२) धातु एकाक्षर होते हैं, जैसे 'कृ' 'नी' आदि। (४) यद्यपि पूर्वविभक्ति अथवा

पूर्वसर्ग नहीं होते, तदपि उपसर्ग होते हैं, परंतु उनका वाक्यान्वय से कोई संबंध नहीं होता। (५) अक्षरावस्थान भी पाया जाता है, परंतु यह सुर-प्रधान होता है और बलप्रयोग तथा उच्चारण की सुविधा आदि बाह्य कारणों से होती है, जैसे अं० read, lead, wind, learned ग्री० patroktonos, सं० इंद्रशत्रु इत्यादि में भिन्न भिन्न लहजे से उच्चारण करने से अर्थभेद हो जाता है। (६) यद्यपि ये भाषाएँ संहित से व्यवहित की ओर अग्रसर हो रही हैं, तथापि शुद्ध समासरचना की इनमें विशेष शक्ति है।

क्षेत्र—भारोपीय परिवार की भाषाएँ—

(आ) अंतर्मुखी विभक्तिप्रधान भाषाएँ—विशेषताएँ—(१) यद्यपि विभक्तियाँ आदि, अंत, मध्य सब में आती हैं, तदपि शब्दभेद तथा उनके रूप शब्दों के भीतर होनेवाले स्वरपरिवर्तन अथवा अपश्रुति द्वारा ही बनते हैं. जैसे حكم (हुक्म) से حكم (हुक्म) حاكم (हाकिम) حكم (हुकम) حكم (हुकुम) आदि। इस प्रकार अक्षरावस्थान इनमें भी पाया जाता है, परंतु वह रचनाप्रधान होता है और आंतरिक कारणों से होता है।

(२) धातुएँ केवल तीन व्यंजनों से बनती हैं, जैसे فعل (फ़ेल) قتل (क़त्ल) كتب (कत्ब) आदि।

(३) इसमें रूप बनाने में धातुओं में अक्षरों का आगम होता है, परंतु इससे वजन अथवा धातु में कोई परिवर्तन नहीं होता, जैसे فعل (फ़ेल) में مفعول (मफ़ूल), قتل (क़त्ल) से يقتل (यक़्तुल)।

(क) फारसी की भाँति सर्वनाम प्रायः क्रिया तथा संज्ञा के अंत में जुड़ जाते हैं, जैसे حكمنى (हुकमनी, ضربت (ज़रबत) قلمئ (क़लम ई) आदि।

(५) समासरचना की शक्ति न होने के कारण इनमें व्यवहित होने की प्रकृति बहिर्मुख विभक्तिप्रधान भाषाओं से अधिक है।

क्षेत्र—सेमेटिक तथा हेमेटिक परिवार की भाषाएँ—

उपयोगिता—(१) व्यावहारिक—उक्त वर्गीकरण में निम्नलिखित दोष है—

(क)—वे भाषाएँ जिनमें कोई पारिवारिक अथवा भौगोलिक संबंध नहीं है एक ही वर्ग के अंतर्गत ले ली गई हैं–जैसे व्यासप्रधान वर्ग में चीनी और सूडानी। कहीं कहीं एक ही वर्ग की भाषाओं की रचना में बड़ा अंतर है, जैसे अंतर्मुखी विभक्तिप्रधान वर्ग में सेमेटिक तथा हेमेटिक भाषाओं में। (ख)—प्रत्ययप्रधान वर्ग में तो अनेकों भाषा-परिवार हैं, परंतु व्यासप्रधान, विभक्तिप्रधान, अथवा समासप्रधान वर्ग में दो एक ही हैं। (ग) प्रत्येक भाषावर्ग की भाषाओं में अन्य भाषा-वर्गों की रचना के लक्षण तथा उदाहरण पाए जाते हैं, जैसे व्यासप्रधान भाषावर्ग की चीनी भाषा में रिक्त धातु विभक्तियों की भाँति प्रयुक्त होते हैं; तथा प्रत्ययप्रधान और विभक्तिप्रधान भाषावर्गों में तो केवल प्रकृति-प्रत्यय के भेदअभेद का ही अंतर है। इसके अतिरिक्त न कोई भाषावर्ग पूर्णतः संहित ही है और न व्यवहित ही। (घ)—संसार में कुछ ऐसी भी भाषाएँ हैं जो किसी भाषावर्ग में नहीं आतीं, जैसे अंडमन की भाषा। अतः व्यवहारिक दृष्टि से यह वर्गीकरण अनुपयोगी है।

(२) *विकास क्रम के अनुसार*—उक्त वर्गीकरण के अनुसार भाषाएँ उत्तरोत्तर संहित से व्यवहित और व्यवहित से संहित होती रहती हैं। तद्नुसार वे क्रम से समास से व्यास, व्यास से प्रत्यय तथा प्रत्यय से विभक्ति अवस्था को प्राप्त होती हैं और जब विभक्ति अवस्था को प्राप्त होने पर अतिसंहित हो जाती हैं, तब व्यवहित होने लगती हैं, जैसा कि इससे स्पष्ट है कि आधुनिक विभक्तिप्रधान भाषाएँ उत्तरोत्तर व्यवहित

होती जा रही हैं। यद्यपि इस विकासक्रम के मानने में कोई विशेष आपत्ति नहीं है, तदपि भाषा कि वर्तमान प्रगति को देखते हुए तनिक इस बात पर विश्वास नहीं जमता कि भाषा एकदम समास अवस्था से व्यास अवस्था को प्राप्त हो गई होगी।

(३) रचनात्मक वाक्यरचना समझने के लिये शब्दभेद तथा उनके रूप जानना तथा शब्दरचना समझने के लिये प्रकृतिप्रत्यय का विवेचन करना आवश्यक है। इस वर्गीकरण में इसकी विस्तृत व्याख्या हो जाती है। अतः वाक्यरचना, वाक्यान्वय, शब्दरचना तथा व्याकरणिक बंध समझने में इससे विशेष सहायता मिलती है।

(ख–१) भाषाओं का वंशनिर्णय

भाषापरिवारों की उत्पत्ति—प्रत्यक्षतः 'मनुष्य' और 'आदमी' शब्द बहुत साधारण प्रतीत होते हैं, परंतु वास्तव में बड़े महत्व के हैं। इनमें से प्रत्येक मानवजाति तथा भाषा की उत्पत्ति का द्योतक है। 'आदमी' का निष्क्रमण 'आदम' से और 'मनुष्य' का 'मनु' से हुआ है। 'बाबा आदम का जमाना' तो प्राचीनता के लिये प्रसिद्ध ही है, परंतु 'मनु' भी 'स्वयंभू मनु' कहलाते हैं। दोनों ही आदिपुरुष हैं। सनातन धर्म के अनुसार मानव सृष्टि की उत्पत्ति 'स्वयंभू मनु तथा शतरूपा' से और ईसाई तथा इस्लाम धर्मों के अनुसार 'आदम तथा इव अथवा हौवा' से हुई है। इस प्रकार यद्यपि भिन्न भिन्न धर्मों के आदि व्यक्तियों में विभिन्नता है तदपि यह सर्वमान्य है कि मानवजाति की उत्पत्ति किसी एक आदि दम्पति से हुई है। शिशु में भाषणशक्ति तो जन्म से ही होती है, परंतु वह बड़ा होने पर अपने पुर्वजों के अनुकरण द्वारा भाषा का अर्जन करता है। अतः, भाषा की उत्पत्ति मनुष्य की उत्पत्ति के पश्चात् होती है। अतएव यदि मूलभाषा उसी आदि दम्पति की

भाषा हुई। कालांतर में जनसंख्या बढ़ जाने तथा मानवजाति के दूर दूर तक प्रसरित हो जाने पर भिन्न भिन्न जनसमुदायों से संबंधविच्छेद हो गया और स्थानभेद आदि बाह्य कारणों से उनकी भाषाएँ एक दूसरे से पृथक् हो गईं इस प्रकार पृथक् पृथक् भाषा परिवार बन गए जो अधिक काल व्यतीत होने पर परस्पर इतने असंबद्ध हो गए कि उनमें शब्दात्मक, रचनात्मक, व्याकरणिक आदि किसी प्रकार का साम्य न रहा और उनके मूलरूप में एकता खोजना असंभव हो गया। यही कारण है कि अनेक विद्वान् भाषाओं की उत्पत्ति एक मूलभाषा से न मानकर अनेक भाषा-परिवारों से मानते हैं, परंतु यह भ्रमात्मक है।

पारिवारिक वर्गीकरण का आधार—यों तो एक ही नगर की भिन्न भिन्न जातियों की बोलियों में भी अंतर पाया जाया है, परंतु इतना नहीं कि एक दूसरे की बात न समझ सकें। यह प्रश्न दूसरा है कि कुछ कठिनाई पड़े और देर लगे। यदि एक मनुष्य अटक से कटक तक पैदल यात्रा करे, तो उसको पंजाबी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी, उड़िया आदि भिन्न भिन्न भाषाओं के क्षेत्रों में होकर जाने के कारण बराबर भाषाभेद मिलेगा; परंतु इतना नहीं कि परस्पर विचारविनिमय न हो सके। यदि वही मनुष्य काबुल की यात्रा करे, तो लहँदा के क्षेत्र को पार करके पेशावर के बाद पश्तो भाषा के क्षेत्र में पहुँच जायगा। वहाँ एक शब्द भी उसकी समझ में नहीं आयगा। इस प्रकार वह सरलता से जान लेगा कि लहँदा, पंजाबी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी तथा उड़िया एक परिवार की और पश्तो दूसरे परिवार की भाषा है। अतः एक से दूसरी भाषा को हम जितनी अधिक सरलता से समझ सकें उनमें उतना ही निकटवर्ती संबंध समझना चाहिए।

भाषाओं का परस्पर संबंध स्थापित करने अथवा उनका वंशनिर्णय करने के लिये उनका तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है।

तुलनात्मक अध्ययन—प्रत्येक भाषा के दो रूप होते हैं ? साहित्यिक तथा लौकिक। साहित्यिक भाषा कृत्रिम एवं सीमित होती है और लौकिक प्राकृतिक तथा सार्वजनिक; अतः केवल लौकिक भाषाओं की तुलना करनी चाहिए, साहित्यिक की नहीं। यह तुलना दो प्रकार से हो सकती है, शब्दों में और व्याकरणिक संबंधों में, अर्थात् शाब्दिक और व्याकरणिक।

(क) *शाब्दिक तुलना*—(१) शब्द संबंधी तुलना ऐसे शब्दों की करनी चाहिए जिनका रूप अस्थायी हो। साहित्य, दर्शन, विज्ञान, कला, न्यायालय आदि के शब्द शब्दकोष में अथवा केवल कुछ ही मनुष्यों तक सीमित रहते हैं और नित्य व्यवहार में प्रयुक्त नहीं होते, अतः उनके रूपों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। ऐसे शब्द जिनके रूप में विकार नहीं के बराबर होता है केवल वे हो सकते हैं जो नित्यप्रति सर्व-साधारण के व्यवहार में आते रहते हैं।

इस प्रकार के शब्द निकटसंबंधसूचक शब्द, जैसे माता पिता भाई बहन आदि, पुरुषवाचक सर्वनाम, जैसे मैं, हम, तू, तुम, वह आदि, संख्याएँ विशेषतः एक से दस तक, साधारण स्थानों, वस्तुओं तथा जानवरों के नाम जैसे गाँव, खेत, रुपया-पैसा, गाय-बैल, कुत्ता-बिल्ली आदि, शरीरावयव के नाम जैसे हाथ पैर और साधारण क्रिया तथा गुणबोधक शब्द जैसे उठना बैठना, लेन-देना, होना करना, खाना पीना भला बुरा आदि हैं। इनकी तुलना इस प्रकार करनी चाहिए—

हिंदी	संस्कृत	लैटिन	ग्रीक	गाथिक	जर्मनी	अंग्रेजी	फारसी
पिता	पितृ	pater	pater	fader	vater	father	पिद्र
मैं	अहम्	ego	ego	ik	ica	i	अम
तीन	त्रि	tres	treis	threis	berei	three	सेह
गाय (गऊ)	गो	bos	bous	—	kuh	cow	गाव
पैर	पद्	pedis, pes	podos pous	fotu	fuss	foot	पा
भर	भृ	fera	phero	bairan	beran	bear	बुर्दन

(२) तुलना शब्दों के उच्चरित स्वरूप की करनी चाहिए लिखित की नहीं, अर्थात् उनके हिज्जे से हमारा कोई संबंध नहीं। उदाहरणार्थ जब हम (हि०) बहिन, (पं०) भैण, (गुज०) बेहेण, (म०) बहीण आदि में साम्य दिखाते हैं, तो हमारा आशय उनके उच्चरित स्वरूप से होता है। इसके अतिरिक्त कभी कभी कुछ अक्षर लिखे तो जाते हैं, परंतु उनका उच्चारण नहीं होता—जैसे dam (n), (w) rite (k) ni (gh) t आदि में कोष्ठबद्ध अंश तथा गरदन, बोलना, इमली के र, ल तथा म में 'अ' कार। इनकी उपेक्षा न करनी चाहिए अपितु इनका और भी अधिक ध्यान रखना चाहिए, कारण कि कभी कभी ये प्राचीन उच्चारण के द्योतक होते हैं।

(३) शब्दों के साधक अंश अथवा प्रत्ययांश को पृथक् करके केवल उनके प्रकृत्यांश की तुलना करनी चाहिए क्योंकि कभी कभी उनके सप्रत्यय रूपों में बड़ा अंतर हो जाता है। उदाहरणार्थ यदि 'हुआ' तथा 'अभवम्' की तुलना करनी है, तो 'हुआ' में भूतकालिक 'आ' और 'अभवम्' से भूतकालिक विभक्ति 'अम्' तथा आगम 'अ' पृथक् करके केवल 'होना' तथा 'भू' की तुलना करेंगे।

(४) कभी कभी मूल शब्दों में कोई पारिवारिक संबंध न होने पर भी उनके रूपों में सामानता होती है, परंतु इनमें पारिवारिक संबंध आकस्मिक होता है। जैसे (अं०) page (बाल अनुचर) तथा Page (पृष्ठ) दोनों का रूप एक ही है, परंतु इनमें पारिवारिक संबंध कोई नहीं हैं; क्योंकि पहला Page (लै०) Pagensis से निकला है और दूसरा (लै०) Pagina से। इसी प्रकार (हिं०) काम (सं०) काम, (हिं०) सूप (अं०) Soup (हिं०) आम (अ०) (आम), इत्यादि समानश्रुति परंतु भिन्नार्थक हैं और इनमें कोई पारिवारिक संबंध नहीं है। अतः केवल रूपसाम्य अपर्याप्त है, इसके साथ अर्थसाम्य भी देखना चाहिए।

(५) कभी कभी एक ही मूल शब्द से निकले हुए दो शब्दों के अर्थों में कालांतर में भेद हो जाता है जैसे कार्य, कारज तथा काज तीनों (सं०) 'कार्य्य' से निकले हैं, परंतु इनमें कालभेद से अर्थ-भेद हो गया है। इसी प्रकार (सं) पश् धातु से 'पशु' और उसके लैटिन स्वरूप Pecus से (लै०) pecunia तथा Peculium और उससे क्रमशः (अं०) Pecuniary तथा peculiar निकले हैं, परंतु पशु Pecuniary तथा Peculiary तीनों के अर्थों में बहुत अंतर है; तथा (अं०) Captive तथा Caitiff (लै०) Captivus से निकलने पर भी अर्थ में भिन्न हैं। ऐसी दशा में ये सब शब्द एक ही वंश के माने जाएँगे। अतः अर्थसाम्य देखने के लिये शब्दों के प्राचीन रूप तथा अर्थ की खोज करना आवश्यक है।

(६) कभी कभी राजनैतिक, धार्मिक, व्यापारिक, आकस्मिक आदि बाह्य कारणों से एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में चले जाते हैं। ऐसी दशा में उन शब्दों के रूप और अर्थ दोनों में साम्य होने पर भी उनकी भाषाओं को एकवंशी नहीं कहा जा सकता। जैसे (हिं०) चाय, (फा०) चा, (रूसी) Chai तथा (तु०) Chav (ची०) Ch'a के विकृत रूप हैं, अतः हिंदी, फारसी, रूसी तथा तुर्की समानवंशी नहीं कही जा सकतीं, इसी प्रकार (अं) Tobacco (ज०) Tabak (स्पे०) Tabaco (फ्रें०) Tabac (फा०) तंबाकू तथा (हिं०) तमाकू के आधार पर इनकी भाषाएँ समानवंशी नहीं कही जा सकतीं कारण कि इनमें ये शब्द अमरीकन भाषा से आए हैं; अंग्रेजी में हिंदी, अरबी, फारसी आदि के अनेक शब्द हैं जैसे Loot (हिं०) Ryot (अ०) Rupee (सं०) Sepoy (फा०) Coolie (मु०) Curry (ता०) आदि: हिंदी में चुंगी (ते०) साबू (मलया), पिल्ला (ता०) कागज (फा०) चाकू (तु०) हिसाब (अ०) इंच (अं०, तुरुप (डच), कारतूस (फ्रें०), कमरा (पु०) आदि अनेक शब्दों का अन्य भाषापरिवारों से आगम हुआ है; तथा (अं०) Cover तथा

(हिब्रू) Kophar में कोई पारिवारिक संबंध न होते हुए भी आकस्मिक साम्य है। अतः शब्दों के इतिहास का अनुसंधान करना नितांत आवश्यक है।

(७) कभी कभी परस्पर संबंधित शब्द भिन्न भिन्न भाषाओं में स्थानभेद, भौगोलिक परिस्थिति आदि बाह्य कारणों से इतने विकृत, हो जाते हैं कि पहचानने में नहीं आते जैसे (सं०) कपर्द, महिष, सूची, छीणालय, प्रथम, अस्थि, प्रतिवासी आदि हिंदी में क्रमशः कौड़ी, भैंस, सुई, छिनाल, पहिला, हड्डी, तथा पड़ोसी और (सं०) भ्रातृ, धा तथा श्वन अंग्रेजी में क्रमशः Brother, bo तथा Hound हो गए। यद्यपि ये सब इतने विकृत हैं कि इनमें प्रत्यक्षतया कोई संबंध प्रतीत नहीं होता, तदपि ये सब विचार ध्वनिनियमों के अनुसार हैं। अतः रूपसाम्य देखने में ध्वनिनियमों का ध्यान रखना आवश्यक है।

(८) कभी कभी आधुनिक भाषाओं के शब्दों में कोई संबंध नहीं होता, परंतु उन्हीं के पर्यायवाची शब्दों में उनकी प्राचीन भाषाओं में संबंध होता है जैसे यद्यपि (अं०) Dog तथा (हिं०) कुत्ता में कोई संबंध नहीं है, परंतु इनके पर्यायवाची शब्द Hound तथा श्वान में संबंध है। Hound एँग्लो-सेक्सन Hund से और श्वान संस्कृत श्वन् से निकले हैं और ये दोनों परस्पर संबंधित हैं, इनमें श तथा ह का अंतर ग्रिमनियम के अनुसार है इसी प्रकार (इटै०) Cavallo अथवा (फ्रें०) Cheval का (हिं०) घोड़ा से कोई संबंध नहीं है, परंतु (लै०) Equus का (सं०) अश्व से हैं।

अतएव यदि हम ध्वनिनियमों का ध्यान रखते हुए और शब्दों के प्राचीन रूपों का अनुसंधान करके उनकी व्युत्पत्ति करते हुए शाब्दिक तुलना के आधार पर भाषाओं में पारिवारिक संबंध स्थापित करें, तो निकटतया ठीक निर्णय हो सकता है; परंतु

क्योंकि शब्द का अर्थ वाक्य में ही खुलता है तथा व्याकरणिक संबंधों का बोध वाक्यान्वय द्वारा ही होता है, अतः केवल शब्दों की तुलना अपर्याप्त है और अशुद्धि हो जाने की संभावना है अतएव शब्दसाम्य के साथ-साथ व्याकरणिक संबंधों में सादृश्य देखना भी अनिवार्य है।

[ख] व्याकरणिक तुलना

व्याकरणिक तुलना से हमारा आशय धातुओं के वर्णात्मक अथवा अक्षरात्मक सादृश्य, प्रकृतिप्रत्यय के भेद अभेद, व्याकरणिक संबंधों का प्रत्यय अथवा विभक्ति द्वारा बोध, कृदंत तथा तद्धितांत आदि बनाने की विधि, संहित अथवा व्यवहित वाक्य रचना, इत्यादि की तुलना से है। इसकी विस्तृत व्याख्या भाषाओं के रचनात्मक वर्गीकरण में की जा चुकी है, अतः यहाँ तुलनासंबंधी कुछ विशेष नियम दिए जाते हैं :—

(१) प्रत्येक भाषा के व्याकरण में कुछ अपनी निजी विशेषताएँ होती हैं, जिनका अन्य भाषाओं के व्याकरण से कोई संबंध नहीं होता। इनकी उपेक्षा करके केवल उस अंश की तुलना करनी चाहिए जिसका अन्य भाषाओं से संबंध हो। ऐसे मूल अंश का पता प्राचीन साहित्य अथवा लेखों से लग सकता है।

(२) भाषा परिवर्तनशील है, उसका कोई भी रूप स्थायी नहीं कहा जा सकता। अतः व्याकरणिक नियम भी शाश्वत नहीं कहे जा सकते, उनमें भी समयानुसार परिवर्तन होता रहता है। अतएव प्राचीन रूप की तुलना प्राचीन रूप से और नवीन की नवीन से करनी चाहिए, प्राचीन तथा नवीन की नहीं। उदाहरणार्थ, हम संस्कृत तथा लैटिन की अथवा इटैलिक तथा हिंदी की तुलना कर सकते हैं, परंतु लैटिन तथा हिंदी अथवा इटैलिक तथा संस्कृत की

नहीं। फलतः भाषाओं के व्याकरण का इतिहास जानना नितांत आवश्यक है।

(२) व्याकरणिक इतिहास की खोज प्राचीन साहित्य तथा लेखों द्वारा हो सकती है। परंतु किसी किसी भाषा में इसका अभाव होने के कारण उसका शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं मिलता। ऐसी दशा में जहाँ ऐतिहासिक शृंखला टूटती हो अथवा संदेह हो, वहाँ उससे मिलती जुलती भाषा के इतिहास से सहायता लेनी चाहिए। उदाहरणार्थ, संस्कृत तथा लैटिन का इतिहास पूर्णतः मिलता है, अतः जहाँ लिखित प्रमाण के अभाव के कारण देशी भाषाओं के इतिहास की शृंखला टूटती है, वहाँ हम इटैलियन के इतिहास से सहायता ले सकते हैं।

इस प्रकार उक्त विधि से शाब्दिक तथा व्याकरणिक तुलना के आधार पर हम किसी भाषा का वंशनिर्णय कर सकते हैं, परंतु इसके यह मानी नहीं है कि हम उसको समझ सकते हैं। प्रत्येक भाषा अथवा बोली में अपनी कुछ निजी स्थानीय, सांस्कृतिक, उच्चारणात्मक अथवा व्याकरणिक विशेषता होती है। जिसके कारण हम उसे उस समय तक नहीं समझ सकते जब तक कि पूर्णतः अभ्यस्त न हो जाएँ। उदाहरणार्थ 'हिंदीभाषाभाषी गँवार संस्कृतिभेद के कारण 'क्या' को 'का', 'मनुष्य' को 'मनई', 'वह' को 'ऊ' 'यह' को 'ई' 'उसको' को 'ओहका', 'जिसको' को 'वाको', 'गया' को 'गवा' 'तुम्हारा' को 'तुहार' आदि बोलता है। यद्यपि पंजाबी, प० हिं, बँगला, मराठी आदि एक ही आर्यपरिवार की उपभाषाएँ हैं, तदपि परंपरागत अथवा स्थानीय उच्चारणभेद के कारण प० हिं० के 'कहा' को ब्रजभाषी 'कह्यो' अवधी 'कहिन' अथवा 'कहिस', बिहारी 'कहल' तथा पंजाबी 'कहंदा' और प० हिं० के 'गया' को बलियावासी 'गइला', बिहारी 'गेल', मराठी 'गेला' तथा बंगाली 'ग्यालो' बोलते हैं। इसी प्रकार स्काच 't' (ट) को 'th' (ठ) की भाँति उच्चारण

करते हैं। चीनी, बर्मी, तिब्बती आदि में तो उच्चारण (स्वर) भेद से अर्थभेद तक हो जाता है। बंगला और हिंदी दोनों यद्यपि एक ही वंश की है और दोनों में संस्कृत शब्दों की भरमार है, परंतु दोनों की व्याकरणिक विशेषताओं में विभिन्नता होने के कारण रूपों में और स्थानीयभेद के कारण उच्चारण में बहुत भेद है। अतः किसी दो भाषाओं में पारिवारिक संबंध स्थापित हो जाने पर भी बिना कुछ समय तक एक दूसरे के क्षेत्र में रहे और अभ्यस्त हुए हम उन्हें समझ सकें यह आवश्यक नहीं है।

5. (ख-२) भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण

भाषापरिवार—जनपरिवार परस्पर संबंधित मनुष्यों का एक समूह है और भाषापरिवार परस्पर संबंधित भाषाओं का। जिस प्रकार एक बृहत् जनपरिवार में अनेक शाखाएँ उपशाखाएँ, वर्ग उपवर्ग, पविार उपपरिवार और प्रत्येक उपपरिवार में अनेक व्यक्ति होते हैं जिनमें वैयक्तिक विभिन्नता होते हुए भी पारिवारिकबंधन अथवा एकता होती है, उसी प्रकार एक बड़े भाषापरिवार में अनेक शाखाएँ, उपशाखाएँ वर्ग, उपवर्ग, परिवार, उपपरिवार और भाषाएँ तथा बोलियाँ होती हैं जो व्यक्तिगत रूप में भिन्न होने पर भी मूल रूप में एक होती हैं। आगे दिए हुए पारिवारिक वर्गीकरण से यह विषय स्पष्ट हो जायगा।

भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण—तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर भौगोलिक स्थिति के अनुसार हम संसार की भाषाओं को निम्नप्रकार से विभाजित कर सकते हैं। हमारा संबंध भारत और तत्पश्चात् यूरेशिया की भाषाओं से अधिक है, अतः हम यूरेशिया के अतिरिक्त संसार के अन्य भाषापरिवारों की केवल चर्चा और भारत के भाषापरिवारों का सविस्तर वर्णन करेंगे।

संसार के भाषापरिवार—उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के भाषापरिवार—उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के मूलनिवासियों की सी भाषाएँ यहाँ के अतिरिक्त अन्यत्र् कहीं नहीं पाई जाती। अतः इनका एक पृथक् भाषापरिवार है जिसे 'अमेरिकन भाषा-परिवार' कहते हैं। इसके अंतर्गत अनेक विभाषाएँ तथा बोलियाँ हैं जिनमें थोड़ी थोड़ी दूर पर भेद होता जाता है। उत्तरी अमेरिका तथा ग्रीनलैंड में एस्किमो, कनाडा में अथवास्कन, संयुक्तराज्य में अल्गोरियन तथा इरोक्वाइस और मेक्सिको में मेदिरु, नहुआतल्स तथा मय भाषाएँ व्यवहृत होती हैं। आजकल उत्तरीअमेरिका में अंग्रेजीमिश्रित एक योरोपीय भाषा का प्रचार अधिक है। दक्षिणी अमेरिका में उत्तर में कारिव तथा अरवाक' मध्य में गुआर्नीतूपी, पश्चिम में क्विचुआ तथा अमेरिकन दक्षिण में चाका और तेरा-डेल फुआगो द्वीप में तेराडेल फुआगो भाषाएँ बोली जाती हैं।

आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड के भाषापरिवार—यहाँ आग्नेय परिवार की आग्नेयद्वीपी भाषाएँ व्यवहृत होती हैं -

अफ्रीका के भापा परिवार—उत्तरी अफ्रीका में हैमेटिक परिवार की भाषाएँ व्यवहृत होती हैं। इसके अंतर्गत मिस्र की काप्टिक (मृत) उत्तरी समुद्रतट की लिवियन (मृत) तथा बर्बर, सहारा की हाउसा तथा पूर्वभाग की इथोपियन अथवा अबीसीनियन भाषाएँ हैं। उत्तरी अफ्रीका तथा मिस्र में आजकल सेमेटिक परिवार की अरबी का प्रचार है। भूमध्यरेखा के उत्तर सूडान में सूडानी, भूमध्यरेखा के दक्षिण कांगो वेसिन, टैंगानिका तथा जंजीबार में बांतू, दक्षिणी अफ्रीका में बुशमान और मैडगास्कर में आग्नेय द्वीपी भाषाएँ व्यवहृत होती हैं।

यूरेशिया के भाषापरिवार—(१) सेमेटिक :—इसका क्षेत्र उत्तरीपूर्वी अफ्रीका तथा दक्षिणीपश्चिमी एशिया है। इसकी एशिया में

बोली जानेवाली मुख्य भाषाएँ मेसोपोटामिया की असीरियन, फिलस्तीन की हिब्रू, यिडिश तथा अरैमेइक, सीरिया की सीरियक और अरब, मेसोपोटामिया तथा सीरिया में व्यवहृत होनेवाली अरबी हैं। कुरान अरबी में ही है।

(२) *काकेशियन*—इसका क्षेत्र काले सागर से कैस्पियन सागर तक काकेशस पर्वत के उत्तर तथा दक्षिण में है। काकेशस के उत्तरी भाग की मुख्य भाषाएँ किरकासियन, क्रिस्तियन, लेस्वियन आदि और दक्षिण की जार्जियन, सुआनियन, मिंग्रेलियन आदि है।

(३) *यूराल-अल्टाइक*—इसका क्षेत्र मंचूरिया, मंगोलिया तूरान, टर्की, साइबेरिया तथा रूस का कुछ भाग है। इसका केंद्र तुर्किस्तान और मुख्य भाषा तुर्की है जिसमें बाबर ने 'तुजके बाबरी' लिखी थी। योरप की फिनिश, एस्थोनियन, मैग्यर आदि भाषाएँ भी इसी परिवार की हैं।

(४) *चीनी*—इसका क्षेत्र एशिया का दक्षिणीपूर्वी भाग अर्थात् तिब्बत, चीन इंडोचीन तथा बर्मा और आसाम का कुछ भाग है। इसकी मुख्य शाखाएँ, चीनी, अनामी, स्यामी तथा तिब्बतबर्मी हैं जिनमें अनेक वर्ग उपवर्ग तथा भाषाएँ हैं। इनमें चीनी प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति का भंडार होने के कारण अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

(५) *आग्नेय*—इसका क्षेत्र मलाया प्रायद्वीप, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि पूर्वी द्वीपसमूह हैं। इसके आग्नेयद्वीपी तथा आग्नेयदेशी दो बड़े स्कंध हैं। टेनासिरम से मलाया स्टेट तक के प्रदेश की मलायु भाषा तथा मरगुई द्वीपसमूह की सलोन भाषा प्रथम स्कंध के और निकोबार तथा बर्मा-आसाम के कुछ भागों की मोनख्मेर तथा छोटा नागपुर, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, मध्यभारत आदि के कोलों की मुँडा भाषाएँ द्वितीय स्कंध के अंतर्गत हैं।

(६) *द्राविड़*—इसका क्षेत्र बिलोचिस्तान, दक्षिणी भारत तथा उड़ीसा है। इसकी मुख्य भाषाएँ तामिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, गोंडी आदि हैं।

(७) *भारोपीय*—यह परिवार सबसे अधिक विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। इसका क्षेत्र भारतवर्ष, अफ़गानिस्तान, ईरान तथा योरप है। अनेक विद्वानों का मत है कि बहुत प्राचीन काल से ही मूल भारोपीय भाषा का चवर्ग संस्कृत, ईरानी आदि कुछ भाषाओं में घर्षक ऊष्म में और ग्रीक, लैटिन आदि कुछ भाषाओं में कवर्ग में परिवर्तित हो गया अर्थात् संस्कृत आदि के घर्षक ऊष्म की जगह लैटिन आदि में कवर्ग पाया जाने लगा जैसे-संस्कृत शतम्, अष्टौ, दिष्टिः आदि लैटिन में क्रमशः कैंटुम, आक्टो, डिक्टिओ आदि हो गए। सौ के वाचक संस्कृत शतम् और लैटिन कैंटुम को भेदक मानकर आस्कोली तथा फ़ान ब्राडके ने भारोपीय परिवार को शतम् तथा कैंटुम दो वर्गों में विभाजित किया है। शतम वर्ग में आर्यन, आर्मीनियन, अलबेनियन तथा बाल्टोस्लाव्हिक शाखाएँ और कैंटुम में केल्टिक, ट्यूटानिक, इटैलिक, ग्रीक, हित्ताइट तथा तोखारी सम्मिलित हैं। यद्यपि शतम् वर्ग में अधिकतर पूर्व की और कैंटुम में पश्चिमी का भेद नहीं है, क्योंकि शतम् वर्ग में बाल्टो-स्लाव्हिक योरप की और कैंटुम वर्ग में हित्ताइट तथा तोखारी एशिया की भाषाएँ भी हैं। कैंटुम तथा शतम् में निम्नलिखित शाखाएँ तथा भाषाएँ हैं :—

(क) कैंटुम—(१) केल्टिक, जिसमें ब्रिटानिक, गैलिक, वेल्श तथा आयरिश भाषाएँ हैं। (२) ट्यूटानिक, जिसमें पूर्वी तथा पश्चिमी जर्मन की भाषाएँ हैं। (३) इटैलिक, जिसमें लैटिन प्राचीन तथा इटैलिक, स्पैनिश, फ्रेंच, पुर्तगाली, रोमानियन आदि आधुनिक भाषाएँ हैं। (४) ग्रीक, जिसमें आयोनियम, डोरिक आदि प्राचीन

भाषाएँ तथा आधुनिक ग्रीक हैं। (५) हित्ताइट का पता एशिया माइनर की खुदाई में आधुनिक काल में ही लगा है, यद्यपि इसका समय १४वीं, १५वीं शताब्दी पूर्व माना जाता है। (६) तोखारी मध्य एशिया की भाषा है।। इसकी भी सन् १९०३-५ में खोज हुई।

(ख) शतम् :—(१) वाल्टोस्लाव्हिक, जिसमें प्राचीन प्रूशियन, लिथुआनियन, वाल्टिक, रूसी, बलगेरियन, स्लाव्हिक आदि भाषाएँ हैं। इनका मुख्य क्षेत्र काले सागर के उत्तर संपूर्ण रूस है। (२) अलवेनियन का प्रचार बलकान प्रायद्वीप के पश्चिमोत्तर भाग में है। (३) आर्मीनियन एशिया माइनर की भाषाएँ है। इनके अंतर्गत फ्रिजियन, लिसियन आदि आती हैं। (४) आर्यन में इरानी, दर्द तथा भारतीय तीन उपवर्ग हैं। ईरानी में पश्तो, फारसी, बलूची आदि, दर्द (पैशाची) में काश्मीरी आदि और भारतीय में वैदिक संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश प्राचीन और हिंदी, मराठी, पंजाबी गुजराती, बंगला आदि आधुनिक भाषाएँ हैं।

(८) *विविध अथवा अनिश्चित*—परिवार के प्राचीन वर्ग में इटली की एट्रस्कन तथा बेबीलोन की सुमेरियन दो मृत भाषाएँ और आधुनिक वर्ग में फ्रांस स्पेन की सीमा के पश्चिमी भाग की बास्क, जापान की जापानी, कोरिया की कोरियाई तथा एशिया के उतरीपूर्वी किनारे की हाइपरबारी भाषाएँ हैं।

भारतवर्ष के भाषापरिवार—(१) आग्नेय—(क) आग्नेय द्वीपी परिवार की मलायु-भाषा ब्रह्मा के टेनासिरम प्रांत तथा मलक्का प्रायद्वीप में और सलोन बोली मरगुई द्वीपसमूह के मल्लाहों में व्यवहृत होती है।

(ख) आग्नेय देशी परिवार की दो शाखाएँ हैं—मोनख्मेर तथा मुंडा। मोनख्मेर शाखा की मोन भाषा मर्तबान की खाड़ी के किनारे तथा पीगू में, ख्मेर कंबोज, स्याम तथा बर्मा के सीमाप्रांतों में, पलौंग तथा बोलियाँ उत्तरी बर्मा के जंगलों में, खासी खसिया

की पहाड़ियों में तथा निकोबरी निकोबार द्वीप-समूह में बोली जाती हैं। मुंडा शाखा की मुख्य बोलियाँ खेरवारी, कूर्क आदि हैं। खेरवारी संथाल तथा छोटा नागपुर में और कूर्क मालवा, मध्यप्रांत तथा मेवाड़ में व्यवहृत होती है। प्राचीनकाल में ये भाषाएँ हिमालय की तराई से विंध्याचल तक फैली हुई थीं जैसा कि इससे प्रकट है कि इसकी एक बोली कनावरी अब भी हिमालय की तराई में शिमला तक प्रसरित है। आजकल ये भाषाएँ भारत के मध्य पश्चिमी बंगाल से मध्यप्रदेश तक और उड़ीसा से गंजम तक फैली हुई हैं। मुंडा भाषाओं का आर्यभाषाओं पर पर्याप्त रूप से प्रभाव पड़ा है। अतः भारतीय भाषाओं की दृष्टि से यह एक प्रधान भाषा परिवार है।

मुंडा भाषापरिवार की विशेषताएँ तथा उनका भारतीय आर्यन भाषाओं पर प्रभाव—(१) मुंडा क्रियाओं में पर तथा अंतः प्रत्यय दोनों होने के कारण उनकी कालरचना बड़ी जटिल होती है। बिहारी क्रियाओं के जटिल रूप संभवतः इसी के फल हैं। (२) मुँडा में उत्तम पुरुष सर्वनाम के बहुवचन में दो रूप होते हैं, 'अले' और 'अबोन'—श्रोतारहित और श्रोतासहित। इसी प्रकार हिंदी में 'हम' तथा 'अपन' और गुजराती में 'आपणे' तथा 'अमें' हैं। उदाहरणार्थ फरूखाबादी बोली में 'हम गये हते' और 'अपन गये हते' में अंतर है। 'अपन' से हम और तुम, वक्ता और श्रोता, दोनों का बोध होता है अर्थात् 'हम' में श्रोता अंतर्भुक्त नहीं है, परंतु 'अपन' में है। (३) अनेक मुंडा शब्द, विशेषकर संख्यावाचक, हिंदी में पाए जाते हैं जैसे कोड़ी अथवा कोरी मुंडा कुड़ी का और कुली मुंडा कोल का अपभ्रंश है। (४) मुंडा शब्दों के अंत में आनेवाले व्यंजन श्रुतिहीन होते हैं और अगले वर्ण में संश्लिष्ट हो जाते हैं। भारतीय आर्यन भाषाओं पर इसका भी प्रभाव पड़ा है। (५) विशेषण (संबंधवाचक) उपवाक्य की जगह

क्रियाद्योतक कृदंत लिखना जैसे 'उस लड़के को देखो जो पढ़ रहा है' की जगह 'उस पढ़ते हुए लड़के को देखो' लिखना मुंडा का ही प्रभाव है।

(२) *चीनी* परिवार की (अ) स्यामी शाखा की 'शान बोली' उत्तरी ब्रह्मा में, अहोम' आसाम में तथा 'खामती' आसाम के पूर्वी सीमांतर प्रदेश तथा ब्रह्मा के सीमांत पर बोली जाती हैं, और (आ) तिब्बत-बर्मी शाखा के तिब्बत हिमालयी वर्ग की तिब्बती भाषा के पूर्वी उपवर्ग की वाल्ती पुरिक तथा लद्दाख बोलियाँ बिलोचिस्तान तथा लद्दाख में और पश्चिमी उपवर्ग की ल्होखा भूटान में, दाओंका सिक्किम में शर्या और कागते नेपाल में तथा भोटिया कमाउँ-गढ़वाल में बोली जाती हैं और हिमालयी भाषा की किराँत, कनौरी, नेवारी आदि बोलियाँ हिमालय के उत्तरांचल तथा पूर्वी नेपाल, भूटान, सिक्किम आदि में व्यवहृत होती हैं; लौहित्य (आसाम-बर्मी) वर्ग के आसामी उपवर्ग की बोड़ो आसाम के अनार्यों में तथा नागा की पहाड़ियों के जंगलों में बोली जाती हैं और बर्मी उपवर्ग की सक तथा कुचिन बोलियाँ सर्वत्र बर्मा में और कुकीचन जिसमें कुछ प्राचीन साहित्य भी है, भारत-बर्मा के सीमांत पर व्यवहृत होती हैं और तिब्बत-हिमालयी तथा लौहित्य वर्गों के बीच आसामोत्तरी वर्ग की बोलियाँ प्रयुक्त होती हैं।

(३) *द्राविड़*—इस परिवार के चार वर्ग हैं, द्राविड़, आंध्र, मध्यवर्ती तथा बहिरंग। (अ) द्राविड़ वर्ग की सबसे उन्नत, साहित्यिक तथा महत्वपूर्ण भाषा 'तामिल' है। यह त्रिवेन्द्रम् तथा रासकुमारी से नीलगिरि तथा मैसूर तक पश्चिमी घाट के पूर्व में, और लंका के उत्तरी भाग में प्रसरित है। इसकी जेठी बेटी मलयालम त्रिवंद्रम् से मंगलोर तक पश्चिमी घाट तथा अरब सागर के मध्य भाग में बोली जाती है। इस वर्ग की दूसरी साहित्यिक भाषा मैसूर की कन्नड है। इसकी अन्य भाषाएँ तुलु (मंगलौर के निकट), कोडागु

(कुर्ग में) आदि हैं। नीलगिरि के जंगलों की होड तथा कोट आदि बोलियाँ भी इसी वर्ग के अंतर्गत हैं। (आ) आंध्र वर्ग के अंतर्गत सुंदर तथा मधुर भाषा तेलुगु तथा अन्य कई बोलियाँ हैं। तेलुगु का क्षेत्र गंजम से निजाम राज्य के पूर्वार्द्ध भाग तक और चाँद से कालीकट तक है। मध्यवर्ती वर्ग की मुख्य भाषा गोंडी है जिसका प्रसार बरार से बिहार उड़ीसा तथा राजमहल तक और बुंदेलखंड, छत्तीसगढ़ तथा मालवा के सीमांतर प्रदेश में है। इसके अतिरिक्त उड़ीसा के जंगलों में कुई, छत्तीसगढ़ तथा छोटा नागपुर में कुरुख़ (ओराँव), राजमहल की पहाड़ियों में मल्तो तथा पश्चिमी बरार में कोतामी बोली जाती है। (इ) बहिरंग वर्ग में केवल एक भाषा ब्राहुई है जो कलात के निकट बिलोचिस्तान में व्यवहृत होती है।

द्राविड़ का भारतीय आर्य भाषाओं पर प्रभाव :—प्राचीन काल में द्राविड़ उत्तरी भारत में बसे हुए थे। अतः आर्य इनके संपर्क में आए और दोनों एक दूसरे से प्रभावित हुए। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के एक बहुत बड़े भाग की रचना दक्षिणी द्राविड़ों द्वारा हुई। अतः भारतीय आर्यन भाषाओं के अध्ययन में द्राविड़ भाषाओं का एक विशेष स्थान है।

द्राविड़ प्रभाव—(१) मूर्धन्य वर्ण अथवा टवर्गी अक्षर द्राविड़ तथा वैदिक के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में नहीं पाए जाते। टवर्गी शब्दों का द्राविड़ में अधिक प्राधान्य है, अतः आर्यन भाषाओं में टवर्ग तथा अनेक टवर्गी शब्द संभवतः द्राविड़ से आए हैं। (२) भारोपीय भाषाओं की स्वरभक्ति अथवा युक्तविकर्ष भी द्राविड़ के समान है। (३) जिस प्रकार द्राविड़ में योगात्मक शब्द तथा बड़े बड़े समास बनाने की अधिक क्षमता है, उसी प्रकार भारोपीय भाषाओं में जटिल समासरचना की विशेष शक्ति है। (४) कर्म तथा संप्रदान कारक की हिंदी विभक्ति 'को' तथा द्राविड़ 'कु' में बहुत साम्य है। (५) संस्कृत के तारतम्यसूचक प्रत्यय 'तर', तम, ईयस तथा इष्ट' नष्ट हो गए हैं और आधुनिक

भाषाओं में उनकी जगह 'और' 'अधिक' 'बेशी' 'आदि' का प्रयोग होता है। ठीक ऐसा ही द्राविड़ भाषाओं में भी हुआ है। (६) आधुनिक आर्यन भाषाओं की प्रकारार्थ द्विरुक्ति जैसे हिंदी, घोड़ा-ओड़ा, बंगला, घोड़ा-तोड़ा गुजराती घोड़ो-वोड़ो आदि, तामिल कुदिरई-किदिरइ, कन्नड़ कुदिरे-गिदिरे, तेलुगु गुर्रमुगिर्रमु आदि के समान है। चूँकि प्रतिध्वनि शब्द केवल द्राविड़ तथा आधुनिक आर्यन भाषाओं में ही पाए जाते हैं, अतः आधुनिक भाषाओं की प्रकारार्थ द्विरुक्ति द्राविड़ के अनुसार है (७) संस्कृत तथा आधुनिक भाषाओं की कृदंत-क्रियाएँ अर्थात् भूत तथा वर्तमान कालिक कृदंत द्वारा बने हुए क्रिया रूप जैसे संस्कृत चलामि, चलिष्यामि, करिष्याति ब्रज० चलिहउँ, हिंदी करता है, किया है, चला था आदि द्राविड़ की भाँति है। (८) द्राविड़ तथा संस्कृत दोनों के 'कृ' में बहुत साम्य हैं। (५) संस्कृत के तारतम्यसूचक प्रत्य 'तर' वाक्यों में शब्दक्रम कर्ता, कर्ता का विस्तार, कर्म, कर्म का विस्तार क्रिया का विस्तार तथा क्रिया ही है। अतः वाक्यविन्यास में भी समानता है। (९) भारतीय भाषाओं के अनेक शब्द जैसे नीर पट्टन, पल्ली, ग्राम, आलि, अक्का, पिल्ला चुरुट आदि द्राविड़ की देन हैं।

(४) **आर्यन**—(अ) इरानीवर्ग की बलोची भाषा बिलोचिस्तान तथा पश्चिमी सिंध में और मुरी पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में तथा पंजाब के सीमांत पर बोली जाती हैं। इस वर्ग की मुख्य भाषा फ़ारसी है। यद्यपि आजकल यह भारतवर्ष में कहीं भी नहीं बोली जाती, तदपि मुगलराज्य में यह अदालती भाषा थी। स्कूलों, मकतबों तथा विश्वविद्यालयों में आज भी यह एक वैकल्पिक विषय है। अतः उत्तरी भारत की आधुनिक भाषाओं में इसके अनेक शब्द पाए जाते हैं। पश्चिमोत्तर भाषाएँ तो इससे बहुत ही प्रभावित हुई हैं। इसका सबसे बड़ा प्रभाव उर्दू की उत्पत्ति तथा विकास है।

(आ) दर्द अथवा पैशाची वर्ग की भाषाएँ दर्दिस्तान में बोली

जाती है। इसकी बशगली बोली चित्राल के पश्चिम में, चित्राली चित्राल में, कोहिस्तानी कोहिस्तान में, शीना गिलगिट में तथा कश्मीरी कश्मीर में बोली जाती है। दर्द भाषाओं का लहँदा, सिंधी पंजाबी तथा कोंकणी मराठी पर विशेष प्रभाव पड़ा है।

(इ) भारती आर्यवर्ग में वैदिक, संस्कृत, प्राकृत, पाली तथा अपभ्रंश प्राचीन भाषाएँ और लहँदा; सिंधी, गुजराती, मराठी; राजस्थानी, बँगला, आसामी, बिहारी, उड़िया, पू० हिंदी, प० हिंदी पहाड़ी तथा पंजाबी आधुनिक भाषाएँ संमिलित हैं। प्राचीन भाषाएँ भारतवर्ष में अब कहीं बोली तो नहीं जाती, परंतु संस्कृत तथा पाली विद्यालयों में वैकल्पिक विषय अवश्य हैं। आधुनिक भाषाओं में से अनेक में बहुत कुछ महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। अतः इनका सविस्तर वर्णन पृथक् रूप से किया जायगा।

(५) *विविध अथवा अनिश्चित समुदाय*—में ब्रह्मा की करेन, भारत के पश्चिमोत्तर सीमांत की खजूना तथा अंडमान की बोलियाँ हैं। इनको निश्चित रूप से किसी भी परिवार में नहीं रखा जा सकता।

(ख-३) भारतवर्ष की आधुनिक भाषाएँ

हार्नले का मत है कि आर्य भारतवर्ष में दो दलों में आए। इतिहासज्ञों का कहना है कि प्रथम बार वे काबुल की घाटी में होकर खैबर के दर्रे से आए और मध्यदेश अर्थात् सरस्वती (पंजाब) तथा गंगा के मध्य भाग में बस गए। जब इनको यहाँ रहते रहते अधिक काल व्यतीत हो गया, तो चितराल तथा गिलगिट की ओर से एक दल और आया, जिसने पूर्वागत आर्यों को, जो कि गर्म जलवायु में रहने के कारण निर्बल हो गए थे, मध्यदेश से निकाल दिया और स्वयं वहाँ अधिकार कर लिया। इस प्रकार परागत आर्य मध्यदेश

में और पूर्वागत उनके चारों ओर सीमांत पर बस गए।[1] प्रारंभिक संस्कृत ग्रंथों में 'मध्यदेश' से अभिप्राय कुरु, पांचाल तथा उत्तरी हिमालय प्रदेश से था, परंतु बाद के ग्रंथों में 'मध्यदेश' शब्द हिमालय तथा विन्ध्याचल और सरस्वती तथा प्रयाग के बीच के भूमिभाग के लिये प्रयुक्त हुआ है। अतः स्पष्ट है कि मध्यदेश के क्षेत्र की कालांतर में वृद्धि हो गई थी। संभवत इसका कारण यह है कि परागत आर्यों ने अपने को चारों ओर से पूर्वागत आर्यों से घिरा होने के कारण सुरक्षित न जानकर चारों ओर बढ़ने का प्रयत्न किया होगा जैसा कि इससे प्रकट है कि राठौर कन्नौज से तथा सोलंकी पूर्वी पंजाब से आकर राजपूताने में और यादव मथुरा से जाकर गुजरात में बस गए थे। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी आदि अंतरंग भाषाओं में बहिरंग भाषाओं के भी कुछ चिह्न मिलते हैं जिससे स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में इनके क्षेत्र में बहिरंग भाषाओं का प्रचार रहा होगा जिनको इन अंतरंग भाषाओं ने स्थानच्युत करके वहाँ अपना अधिकार जमा लिया होगा। इस प्रकार उत्तर में कश्मीर तथा नैपाल तक, दक्षिण में गुजरात तक, पश्चिम में सिंध के मैदान की पूर्वी सीमा तक और पूर्व में बनारस तक फैल गए होंगे। तदनुसार परागत आर्य गंगासिंधु के मैदान में हिमालय तथा विंध्याचल के बीच मध्यदेश में और पूर्वागत इनके चारों ओर पश्चिमी पंजाब, सिंध, महाराष्ट्र, विहारउड़ीसा, बंगाल तथा आसाम में बस गए। अतएव परागत आर्य अंतरंग, पूर्वागत बहिरंग और पूर्वी हिंदी भाषाक्षेत्र के निवासी मध्यवर्ती हो गए।

अंतरंग अथवा परागत आर्य मध्यदेशीय होने के कारण कोल-द्राविड़ों के संपर्क में आए और बहिरंग अथवा पूर्वागत दर्दिस्तान पास होने के कारण दर्द-भाषाभाषियों के द्राविड़ सभ्य और दर्द जंगली थे, अतः अंतरंग आर्यन में वैदिक सभ्यता का विकास हुआ और उनकी भाषा शुद्ध तथा संस्कृत रही, परंतु बहिरंग में न तो

वैदिक सभ्यता का ही विकास हो सका और न उनकी भाषा ही शुद्ध व संस्कृत रह सकी। अतएव अंतरंग तथा बहिरंग आर्यन की सभ्यता तथा भाषा में बहुत भेद हो गया। क्योंकि अंतरंग आर्य विजयी होने के कारण बहिरंग आर्यन तथा उनकी सभ्यता और भाषा को नीच समझते थे, अतः यह भाषाभेद बढ़ता ही गया और कालांतर में इन दोनों की भाषाएँ भिन्न हो गईं और उनके अंतरंग और बहिरंग दो पृथक् भेद हो गए। अंतरंग उच्च और बहिरंग निम्नश्रेणी की समझी जाने लगीं। यही कारण है कि राष्ट्रभाषा सदैव से अंतरंग की ही कोई विभाषा रही है, यथा संस्कृत, प्राकृत (पाली), अपभ्रंश (शौरसेनी), व्रजभाषा, खड़ीबोली आदि। अंतरंग तथा बहिरंग के बीच की भाषा पूर्वी हिंदी मध्यवर्ती हो गई। अतएव भारतीय आर्यशाखा की अंतरंग, बहिरंग और मध्यवर्ती तीन उपशाखाएँ हो गईं।

आधुनिक भाषाओं का वर्गीकरण—तदनंतर उक्त अंतरंग और बहिरंग भेदों की ग्रियर्सन ने भाषासंबंधी कारणों से भी पुष्टि की और निम्नप्रकार वर्गीकरण किया—

(क) बहिरंग उपशाखा—(१) पश्चिमोत्तर वर्ग—लहँदा तथा सिंधी
(२) दक्षिणी वर्ग—मराठी
(३) पूर्वी वर्ग—उड़िया, बिहारी बँगला तथा आसामी

(ख) मध्यवर्ती उपशाखा—(४) मध्यवर्ती वर्ग—पूर्वी हिंदी

(ग) अंतरंग उपशाखा—(५) केंद्र वर्ग—पश्चिमी हिंदी, पंजाबी गुजराती तथा राजस्थानी।
(६) पहाड़ी वर्ग—पूर्वी पहाड़ी (नेपाली), केंद्रवर्ती पहाड़ी तथा पश्चिमी पहाड़ी।

अंतरंग तथा बहिरंग में भेद—बहिरंग अथवा अंतरंग भाषाओं में उच्चारण, रचना, व्याकरण आदि के जिन नियमों में परस्पर साम्य है उन्हीं में बहिरंग तथा अंतरंग में वैषम्य है अर्थात् बहिरंग तथा अंतरंग भाषाओं की विशेषताओं में परस्पर विरोध है। ग्रियर्सन ने इस प्रकार के अनेक अंतर तथा विरोध बताए हैं और रमाप्रसादचंद ने तो उनको वंशात्मक प्रमाणों से भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

बहिरंग भाषाओं की विशेषताएँ (ग्रियर्सन)—(क) ध्वन्यात्मक अथवा उच्चारणात्मक :—(१) शब्दांत में आनेवाले इ, उ अथवा ए का लोप नहीं होता। (२) इ तथा उ द्रव स्वर हैं। प्रायः इ का ए और उ का ओ हो जाता है। (३) युक्तविकर्ष (एपेंथेसिस) भी एक विशेषता है। (४) इ तथा उ प्रायः परस्पर परिवर्तित हो जाते हैं। (५) स का उच्चारण शुद्ध नहीं होता। प्रायः उसका श, ष अथवा ह हो जाता है। (६) ए (अइ) का ऐ और ओ (अउ) का औ हो जाता है। (७) ड़ तथा ल की जगह र हो जाता है। (८) द तथा ड परस्पर परिवर्तित हो जाते हैं। (९) म्ब का म अथवा ब हो जाता है। (१०) प्रायः द का ज तथा ध का झ हो जाता है। (११) अंतस्थ (इंटरवोकल) र का लोप हो जाता है। (१२) महाप्राण तथा अल्पप्राण परस्पर परिवर्तित हो जाते हैं। (१३) संयुक्त व्यंजन में प्रायः मध्य अथवा अर्द्धव्यंजन का लोप हो जाता है और उसके पूर्व का अक्षर दीर्घ हो जाता है।

(ख) रचनात्मक अथवा व्याकरणिक—(१) स्त्रीलिंग 'ई' प्रत्यय द्वारा बनता है। (२) विशेषण 'ली' प्रत्यय द्वारा निर्मित होता है। (३) भूतकालिक क्रिया का रूप कर्ता के पुरुष के अनुसार परिवर्तित हो जाता है जैसे मराठी में 'मैं गया' के लिए 'गेलो' तथा 'वह गया' के लिए 'गेला' आता है, परंतु अंतरंग भाषाओं में भूतकालिक क्रिया तीनों पुरुषों में एक सी रहती है जैसे प० हि० में

मैं गया, वह गया तू गया आदि में 'गया'। अतएव बहिरंग भूतकालिक क्रियाओं में कर्त्ता के पुरुष तथा वचन का बोध क्रिया के रूप से ही हो जाता है, परंतु अंतरंग में नहीं; यथा बं० गेलाम, म० गेलो, आदि क्रियाएँ उत्तमपुरुष एक वचन कर्त्ता की द्योतक है, परन्तु प० हि० 'गया' किसी पुरुष के साथ आ सकता है। (४) भूतकालिक क्रिया के साथ आनेवाला सर्वनाम प्रायः क्रिया में अंतर्भूत रहता है। (५) शब्द सभी सप्रत्यय हैं अर्थात् प्रत्यय संज्ञा के साथ जुड़कर उसका एक भाग बन जाता है जैसे बं० घोडार तथा वि० घोराक में संबंध कारक प्रत्यय संज्ञा में संश्लिष्ट है, परंतु अंतरंग में प्रत्ययों का इतना ह्रास हो गया है कि उनका अस्तित्व ही नष्ट हो गया है और उनकी जगह का, की, के, को, ने, से, पर आदि विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं जैसे घोड़े का, घोड़े ने आदि। (६) शब्दों तथा धातुओं में भी साम्य है।

इस प्रकार बहिरंग भाषाएँ संहित और अंतरंग व्यवहित हैं।

(ग) *वंशात्मक*—चंद ने अंतरंग बहिरंग भाषाभेद की वंशात्मक कारणों से भी पुष्टि की हैं। उनका मत है कि अंतरंग आर्य डालिको सिफैलिक (Dolichocephalic) जाति के और बहिरंग ब्रैकी सिफैलिक (Brachy cephalic) जाति के थे, अतः उनकी भाषाओं में भेद होना स्वाभाविक ही है।

उक्त मतों की आलोचना—एस० के चटर्जी के अनुसार उक्त दोनों मतों में से एक भी ठीक नहीं है—

(क) *ध्वन्यात्मक*—(१) अंतिम स्वर का लोप सब बहिरंग भाषाओं में नहीं पाया जाता जैसे बं० आँख में। इसके अरिरिक्त अंतरंग भाषाओं में भी सदैव अंतिम स्वर का लोप नहीं होता जैसे ब्रज० बाँटु, मालु, सबु, पेटु, बबाबु, औरु, कंगालु, नौकरु, करि, धरि, दूरि, देखि इत्यादि में।

(२) 'इ का ए और उ का ओ हो जाना' केवल बहिरंग में ही नहीं अपितु अंतरंग में भी पाया जाता है, यथा प० हि० में दिखाना से देखना तथा बुलाना से बोलना और ब्रज० में मुही से मोही, तुही से तोही आदि में।

(३) युक्तविकर्ष केवल आसामी, बंगला, उड़िया आदि पूर्वी बहिरंग भाषाओं में ही पाया जाता है, मराठी, सिंधी आदि पश्चिमी बहिरंग में नहीं; इधर गुजराती तथा प० हि० अंतरंग भाषाओं में भी पाया जाता है जैसे सुंदर से सौंदर्य।

(४) 'इ तथा उ का परस्पर परिवर्तन' बहिरंग में ही नहीं अपितु अंतरंग में भी पाया जाता है जैसे प० हि० खिलना खुलना, छुगुली छिगली, फुसलाना फिसलाना, बिन्दु बुन्द, इत्यादि में। इसके अतिरिक्त अंतरंग बहिरंग में भी ऐसा होता है जैसे बं० बालि, प० हि० बालुका, बं० गुनना, प० हि० गिनना आदि में।

(५) 'स' संबंधी परिवर्तन सब बहिरंग भाषाओं में एक सा नहीं होता, सिंधी तथा लहँदा में स का ह और मराठी, बंगला आदि में 'श' हो जाता है। इसके अतिरिक्त 'स' का 'ह' अथवा 'श' होना अंतरंग में भी पाया जाता है जैसे प० कोस कोह, प० हि० केसरी केहरी, सूर शूर, ग्यारस ग्यारह, द्वादश बारह, इत्यादि में।

(६) 'ए का ऐ और ओ का औ हो जाना' केवल सिंधी तथा लहँदा की विशेषता है, पूर्वी बहिरंग भाषाओं की नहीं; उधर राजस्थानी, गुजराती तथा प० हि० में भी ऐसा होता है जैसे प० हि० में Head manager, hot-daughter इत्यादि क्रमशः हैट, हैड, मैनेजर, हौट, डौटर, इत्यादि की भाँति उच्चरित होते हैं।

(७) 'ड' ल तथा र के अभेद' का बंगला, उड़िया, मराठी तथा लहँदा में अभाव है, उधर यह अंतरंग में भी पाया जाता है जैसे ब्रज० बल बर, गल गर, जलइ जरइ, बिजली बिजुरी, काजल काजर

शृगाल स्यार, बेला बेर तथा पकड़े पकरे, घड़ी घरी, बिगड़इ बिगरइ, पीड़ा पीरा इत्यादि में।

(८) ड तथा द का अभेद' बहिरंग में ही नहीं, अंतरंग में भी पाया जाता है जैसे ब्रज० दृष्टि डीठी, दग्धा-डाढ़ा, ड्योढ़ी देहली प० हि० डाभ दर्भ, दंडडंड, दंसना डसना, दंडिका डंडी, दाडिम डारिम आदि में।

(९) 'म्ब का म अथवा ब हो जाना,' अंतरंग में भी पाया जाता है जैसे प० हि० जम्बु जामुन, निम्ब नीम, अम्बी अमियाँ निम्बु नीबू, इत्यादि में।

(१०) 'द ज तथा ध झ का अभेद' बँगला, उड़िया, मराठी तथा सिंधी के अतिरिक्त अन्य बहिरंग भाषाओं में नहीं पाया जाता, उधर प० हि० में भी पाया जाता है जैसे गिद्ध से गिज्झ।

(११) अंतस्थ 'र' का लोप अंतरंग में भी होता है जैसे प० हि० करि से कै ओ से औ, पर से पै इत्यादि।

(१२) 'महाप्राण तथा अल्पप्राण का अभेद' गुजराती, राजस्थानी, प० हि० अंतरंग भाषाओं में भी पाया जाता है जैसे भगिनी से बहिन, वेश से भेस, विभूति से भभूत, वाष्प से भाप इत्यादि।

(१३) संयुक्त व्यंजन में अर्द्ध अथवा मध्य व्यंजन का लोप और उसके पूर्व के अक्षर का दीर्घ होना केवल आसामी, बँगला बिहारी उड़िया तथा मराठी में पाया जाता है, सिंधी तथा लहँदा में नहीं, उधर गुजराती पंजाबी तथा प० हिं० में भी पाया जाता है जैसे भिक्षा से भीख; सप्त से सात, सच्च से साँच, लक्ष से लाख आदि में।

मुख्य त्रुटि—पूर्वी तथा पश्चिमी बहिरंग अथवा अंतरंग भाषाओं के उच्चारण में बहुत अंतर तथा विषमता है।

(ग) रचनात्मक—(१) 'ई' प्रत्यय द्वारा स्त्रीलिंग बनना अंतरंग की भी विशेषता है।

(२) 'ली' प्रत्यय द्वारा विशेषण अंतरंग में भी बनते हैं जैसे प० हि० लजीली, हठीली, कटीली, शर्मीली, रंगीली, छबीली, झगड़ालू इत्यादि।

(३) कर्त्ता के पुरुष तथा वचन का बोध सब भूतकालिक क्रियाओं के रूपों से नहीं होता, केवल अकर्मक क्रियाओं के भूतकाल से होता है। सकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक रूपों में तो पूर्वी तथा पश्चिमी बहिरंग अथवा अंतरंग भाषाओं में बहुत अंतर है, पूर्वी कर्त्तरिप्रधान और पश्चिमी कर्मणिप्रधान हैं। अतः सकर्मक भूतकालिक क्रियाओं से कर्त्ता के पुरुष तथा वचन का बोध केवल पूर्वी बहिरंग भाषा में हो सकता है, पश्चिमी में नहीं, उधर पू० हिं० में भी ऐसा ही होता है।

(४) 'भूतकालिक क्रियाओं में सर्वनाम का अंतर्भुक्त होना' सब बहिरंग भाषाओं तथा क्रियाओं में नहीं पाया जाता।

(५) सप्रत्यय अथवा विभक्तिप्रधान शब्द बहिरंग में ही नहीं, अंतरंग में भी पाए जाते हैं जैसे व्रज० मैं (मैंने,) तैं (तू ने) घोड़हि (घोड़े को), प० हिं० माथे (माथे पर), भूखों (भूख से) इत्यादि।

(६) न तो सब धातु तथा शब्द बहिरंग में ही समान हैं और न अंतरंग में ही, उदाहरणार्थ बँगला तथा बिहारी के शब्द मराठी से नितांत भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त जो शब्द बहिरंग में पाए जाते हैं वे अंतरंग में भी मिलते हैं जैसे बँगला, बिहारी, मराठी, सिंधी तथा लहँदा में पाए जानेवाले शब्द गुजराती तथा प० हिं० में भी पाए जाते हैं। उदाहरणार्थ 'आछ या अछ' पू० हिं०, बिहारी तथा बँगला में तो मिलता है, परंतु सिंधी तथा लहँदा में नहीं मिलता, उधर राजस्थानी, गुजराती तथा पहाड़ी में भी पाया जाता है।

मुख्य त्रुटि—सकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक रूप पूर्वी भाषाओं में कर्त्ता के अनुसार और पश्चिमी भाषाओं में कर्म के

अनुसार होते हैं, अतः व्याकरणिक दृष्टि से पूर्वी तथा पश्चिमी अंतरंग अथवा बहिरंग में बहुत अंतर तथा विषमता है।

(ग) *वंशात्मक*—(१) चंद के अनुसार अंतरंग आर्य एक जाति के और बहिरंग दूसरी जाति के थे, अतः गंगा जमुना के मैदान के प० हिं० भाषी कनौजिया ब्राह्मण तथा लहँदा (प० पंजाबी) भाषी आर्यन भिन्न भिन्न जातियों के हुए, परंतु इतिहासानुसार वे एक ही वंश के हैं।

(२) बंगाली अपने को मध्यदेशीय अंतरंग आर्यन का वंशज मानते हैं, न कि पश्चिमी भारत तथा महाराष्ट्र से आकर बंगाल-बिहार में बसनेवाले बहिरंग आर्यन का।

अतः वंश अथवा जाति की विभिन्नता अंतरंग-बहिरंग की भेदक नहीं है।

निष्कर्ष—सारांश यह है कि न तो सब बहिरंग भाषाओं में ही परस्पर साम्य है और न अंतरंग में ही; जिस प्रकार पूर्वी तथा पश्चिमी बहिरंग भाषाओं में, उच्चारण, रचना, व्याकरण आदि में वैषम्य है, उसी प्रकार पूर्वी तथा पश्चिमी बहिरंग में भी। अतः न तो पूर्वी और पश्चिमी अंतरंग ही एक वर्ग में रखी जा सकती है और न पूर्वी तथा पश्चिमी अंतरंग ही। हाँ, पश्चिमी अंतरंग तथा बहिरंग में अथवा पूर्वी अंतरंग तथा बहिरंग में उच्चारण क्रियारूप (Conjugation), रचना, व्याकरण संबंधी जिन बातों में परस्पर साम्य है, उन्हीं में पूर्वी तथा पश्चिमी अंतरंग अथवा बहिरंग में वैषम्य है। उदाहरणार्थ प० हिं०, राजस्थानी, पंजाबी, लहँदा, सिंधी आदि प० भाषाओं में स का ह हो जाता है, परंतु पू० हि० बिहारी, उड़िया, बँगला, आसामी आदि पू० भाषाओं में स का श हो जाता है; प० हि०, पहाड़ी, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, लहँदा, सिंधी तथा मराठी पश्चिमी भाषाएँ कर्मणि-प्रधान और पू० हि०, उड़िया, बिहारी, बंगला तथा आसामी पूर्वी

भाषाएँ कर्तरि प्रधान हैं जैसा कि निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट है—

कर्मणिप्रधान पश्चिमी भाषाएँ

(अ) बहिरंग

(१) सिंधी—मूँ किताब पढ़ी मे।
(२) लहँदा—किताब पढ़ीम्।
(३) मराठी—मी पोथी वाचिली।

(आ) अंतरंग

(४) पहाड़ी—मैंल किताब पढ़ी।
(५) गुजराती—मे पोथी वाँची।
(६) राजस्थानी—मुँ (अथवा म्हे) पोथी पढ़ी छे।

कर्तरिप्रधान पूर्वी भाषाएँ

(अ) बहिरंग

(१) बिहारी (भोजपुरी)—हम पोथी पढ़लीं।
(२) उड़िया—आम्मे पोथि पोढ़लुँ।
(३) बंगला—आमि बोइ पोड़िलाम्।

(आ) अंतरंग

(४) पू० हि०—मैं पोथी पढ़ेउँ

तदनुसार क्रियारूप भी पश्चिमी बहिरंग तथा अंतरंग में एक प्रकार से और पूर्वी बहिरंग तथा अंतरंग में दूसरी प्रकार से बनते हैं। इसके अतिरिक्त आर्यों का सप्तसिंधु में रहना पहिले से ही पाया जाता है, अतः पश्चिमी अंतरंग तथा बहिरंग आर्यन एक वंश के और पूर्वी अंतरंग तथा बहिरंग दूसरे वंश के हुए। अतएव अंतरंग बहिरंग भाषाभेद निराधार है। इसकी अपेक्षा पूर्वी तथा पश्चिमी भेद करना अधिक उपयुक्त होगा।

उक्त वर्गीकरण में इन त्रुटियों के अतिरिक्त एक और भी दोष है। पश्चिमी हिंदी के उत्तरी क्षेत्र की भाषा सदैव से राष्ट्रभाषा अथवा सर्वप्रमुख रही है। संस्कृत, पाली, शौरसेनी, ब्रज आदि राष्ट्रभाषाएँ मध्यदेश के इसी भाग की थीं। खड़ीबोली अथवा उच्च हिंदी भी दिल्ली-मेरठ के पास की भाषा है। यही भारतीय संघ की संवैधानिक राष्ट्रभाषा है। अतएव इस क्षेत्र की भाषा सदैव से सम्राज्ञी और अन्य भाषाएँ उसके आधिपत्य में रहनेवाली रानियाँ रही हैं। सम्राज्ञी तथा रानियों को एक पंक्ति में बैठाना

सम्राज्ञी का अपमान करना है अर्थात् सर्वप्रधान भाषा प० हिं० को अन्य गौण भाषाओं के साथ रखना अनुचित है। अतः प० हिं० को केंद्रभाषा मानकर वर्गीकरण करना चाहिए।

उक्त *त्रुटियों के निराकरण का प्रयत्न*—संभवतः इन्हीं त्रुटियों तथा दोषों के कारण वेवर, एस० के० चटर्जी, आदि विद्वानों ने अंतरंग-वहिरंग-वर्गीकरण की उपेक्षा करके अन्य प्रकार से वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है। वेवर ने उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी, मध्यदेशीय आदि अनेक वर्गों में तथा चटर्जी* ने प० हिं० को केंद्र-भाषा मानकर उसके चारों ओर की भाषाओं को उत्तरी, पश्चिमी, दक्षिणी तथा पूर्वी वर्गों में विभाजित किया है। तदुपरांत स्वयं ग्रियर्सन × ने चटर्जी के वर्गीकरण को सुविधाजनक जानकर मध्य-

* चटर्जी का वर्गीकरण :—

(अ) उत्तरीवर्ग—सिंधी, लहँदा, पंजाबी

(आ) पश्चिमी वर्ग—गुजराती, राजस्थानी

मध्यवर्ग—प० हिं०

(इ) पूर्वीवर्ग—पू० हिं०, बिहारी, उड़िया, बँगला, आसामी

(ई) दक्षिणी वर्ग—मराठी

× ग्रियर्सन का द्वितीय वर्गीकरण—

(क) मध्य देशीय भाषा—प० हिं०

(ख) अंतवर्ती अथवा मध्यम भाषाएँ—

(अ) मध्यदेशीय भाषा से विशेष घनिष्टता रखनेवाली—पंजाबी राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी।

(आ) बहिरंग भाषाओं से अधिक संबद्ध—पू० हिं०

(ग) बहिरंग भाषाएँ—

(अ) पश्चिमोत्तर वर्ग—लहँदा, सिंधी

(आ) दक्षिणी वर्ग—मराठी

(इ) पूर्वी वर्ग—बिहारी, उड़िया, बंगाली, आसामी

देशीय प० हि० को केंद्रभाषा मानकर उसकी निकटवर्ती भाषाओं को अंतर्वर्ती अथवा मध्यम वर्ग में और दूरवर्ती भाषाओं को बहिरंग वर्ग में रखा है। उक्त दोनों वर्गीकरणों में प० हि० को महत्त्व अवश्य बढ़ गया, परंतु पूर्वी पश्चिमी का प्रश्न चटर्जी के वर्गीकरण में तो आवश्यकता से अधिक हल हो गया और ग्रियर्सन के वर्गीकरण में अक्षुण्ण रहा, अर्थात् चटर्जी के वर्गीकरण में प० हि० के पश्चिम की भाषाओं के उत्तरी तथा पश्चिमी और पूर्व की भाषाओं के पूर्वी तथा दक्षिणी अनावश्यक उपभेद हो गए और मराठी पश्चिमी भाषाओं के समान होने पर भी पूर्वी भाषाओं में संमिलित हो गई, और ग्रियर्सन के वर्गीकरण में अंतवर्ती तथा बहिरंग दोनों वर्गों में पूर्वी तथा पश्चिमी भाषाएँ यथापूर्व संमिलित रहीं; अतः दोनों वर्गीकरण अपूर्ण हैं।

आदर्श वर्गीकरण—वह होगा जिसमें प० हि० को केंद्रस्थ कर भाषाओं को पूर्वी तथा पश्चिमी दो वर्गों में विभाजित किया जाय और प० हि० को पश्चिमी वर्ग में जिससे उसकी समानता है, रखा जाय अर्थात् यदि नैनीताल से नागपुर तक एक सीधी रेखा खींची जाय, तो उसके पूर्व की भाषाएँ पूर्वी और उसके पश्चिम की भाषाएँ पश्चिमी कहलाएँगी और पश्चिमी वर्ग की सर्वप्रधान अथवा राष्ट्रभाषा प० हि० केंद्रस्थ होगी। तदनुसार आदर्श वर्गीकरण निम्नलिखित होगा—

पश्चिमी भाषाएँ	केंद्र भाषा	पूर्वी भाषा
(१) पहाड़ी (२) पंजाबी (३) लहँदा (४) सिंधी (५) राजस्थानी (६) गुजराती (७) मराठी	पश्चिमी हिंदी	(१) पूर्वी हिंदी (२) बिहारी (३) उड़िया (४) बँगला (५) आसामी

(क) *पश्चिमी भाषाएँ* (२) *केंद्रभाषा—पश्चिमी हिंदी—* इसका क्षेत्र शिमला तथा नैनीताल के दक्षिण हिमालय की तराई से नर्मदा की घाटी के दक्षिण तक और अंबाला से कानपुर तक है अर्थात् इसका प्रसार पंजाब के द० पू० भाग, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत तथा मध्य प्रदेश में है। इसमें खड़ीबोली, ब्रजभाषा, बांगरू, कन्नौजी तथा बुंदेलखंडी संमिलित हैं।

(अ) *खड़ीबोली*—इसका मुख्य केंद्र दिल्ली, मेरठ तथा बिजनौर का निकटवर्ती प्रदेश और विस्तार बरेली से अंबाला तक है अर्थात् यह बरेली, रामपुर (रियासत), मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून आदि जिलों में व्यवहृत होती है। इसके खड़ीबोली—उच्च अथवा साहित्यिक हिंदी, उर्दू तथा हिंदुस्तानी तीन रूप हैं। खड़ीबोली तत्सम् बहुला है अर्थात् इसमें संस्कृत के तत्सम् तथा अर्द्ध-तत्सम् शब्दों का बाहुल्य है। शिक्षित हिंदू समाज के नित्य व्यवहार तथा साहित्य में इसका प्रयोग होता है। यही राष्ट्रभाषा भी है। उर्दू में अरबी, फारसी, तत्सम् और अर्द्धतत्सम शब्दों का आधिक्य है। फारसी व्याकरण से प्रभावित होने के कारण वाक्यरचना मसनवी ढंग की है। इसके दो रूप हैं—दिल्ली-लखनऊ की तत्समबहुला रेख्ता और हैदराबाद की सरल दक्खिनी। उत्तरी भारत के मुसलमानों तथा कायस्थों की भाषा उर्दू ही है, परंतु कायस्थों में उत्तरोत्तर हिंदी का प्रचार बढ़ रहा है। हिंदुस्तानी में संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि देशी तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों का बाहुल्य है। इसका झुकाव उर्दू की ओर है। उत्तरी भारत के सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा यही है। आजकल इसे राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर बैठाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

(आ) *बांगरू*—इसका क्षेत्र पंजाब का दक्षिणी-पूर्वी भाग है। यह हिसार, झींद, रोहतक, करनाल आदि में बोली जाती है।

इसका निर्माण पंजाबी, राजस्थानी तथा खड़ीबोली के संमिश्रण से हुआ है।

(इ) *व्रजभाषा*—यद्यपि यह बदायूँ, बुलंदशहर, अलीगढ़-आगरा, मथुरा, इटावा तथा धौलपुर में बोली जाती है, तथापि इसका मुख्य केंद्र ब्रजमंडल (मथुरा) है। इसका साहित्य बहुत सुंदर और विस्तृत है। इसमें संज्ञा, विशेषण, कृदंत आदि के वाचक शब्द प्रायः ओकारांत होते हैं।

(ई) *कन्नौजी*—यद्यपि इसका व्यवहार, इटावा, कन्नौज, फर्रुखाबाद, हरदोई, शाहजहाँपुर, पीलीभीत तथा कानपुर के पश्चिमी भाग में होता है, तदपि इसका मुख्य केंद्र कन्नौज-फर्रुखाबाद है। इसका साहित्य ब्रजभाषा के साहित्य के ही अंतर्गत आ जाता है। उत्तरोत्तर हिंदुस्तानी में परिवर्तित होती जाने के कारण इसका अस्तित्व नष्टप्राय होता जा रहा है।

(उ) *बुंदेलखंडी*—यह जमुना से नर्मदा की घाटी तक व्यवहृत होती है। इसका मुख्य केंद्र बुंदेलखंड अर्थात् झाँसी, जालौन, हमीरपुर आदि हैं। आल्हाखंड इसके साहित्य का सुंदर उदाहरण है। केशवदास सर्वप्रमुख बुंदेली कवि थे।

(२) *पंजाबी*—इसका क्षेत्र पूर्वी पंजाब और केंद्र अमृतसर तथा लाहौर हैं। पंजाब में प्रत्येक जिले की अपनी एक पृथक् बोली है, प्रत्युत किसी किसी जिले में तो एक से अधिक बोलियाँ व्यवहृत होती हैं। अतः पंजाबी के अंतर्गत अनेकों बोलियाँ हैं। इनमें मध्य भाग अर्थात् दोआब की माझी और जम्मू के पार्श्ववर्ती भाग की डोग्री मुख्य हैं। पंजाबी में साहित्य नाममात्र को ही है। 'जन्म-साखी' जैसे कुछ ग्राम्यगीत ही इसका साहित्य है। यह लहँदा से अधिक संबद्ध हैं। इसकी लिपि गुरुमुखी लहँदा लंडा की लिपि का ही एक परिवर्तित रूप है और बहीखातों की लिपि तो लंडा है

ही। डोग्री की लिपि टक्करी है पंजाब में उर्दू का भी अधिक प्रचार है।

(३) *लहँदा*—इसका क्षेत्र पंजाब का पश्चिमी भाग है, तदनुसार इसे पंजाबी भी कहते हैं। इसकी चार बोलियाँ हैं—नमक की पहाड़ी के दक्षिणी भाग की केंद्रीय लहँदा, मुल्तान डेरागाजीखाँ के पार्श्व की मुल्तानी, उत्तरी पश्चिमी पंजाब की पोठवारी तथा दक्षिणी पूर्वी सीमाप्रांत की धन्नी। इसका साहित्य केवल कुछ ग्राम्यगीतों तक ही सीमित है। इसकी लिपि लंडा है।

(४) *सिंधी*—इसका क्षेत्र सिंध है। इसमें थरेली, सिरैकी, विचोली, लारी तथा कच्छी पाँच बोलियाँ संमिलित हैं। थरेली तथा सिरैकी उत्तरी सिंध में, विचोली मध्य में, लारी दक्षिणी सिंध में, तथा कच्छी कच्छ में बोली जाती है। इसमें विचोली साहित्यिक अथवा टकसाली भाषा है। लिपि इसकी भी लंडा है, परंतु गुरुमुखी तथा नागरी भी व्यवहृत होती है।

(५) *गुजराती*—इसका क्षेत्र गुजरात तथा बड़ौदा का निकटवर्ती प्रदेश है। राजस्थानी (विशेषतया प्राचीन मारवाड़ी, भीली तथा खानदेशी) तथा गुजराती में इतना सादृश्य है कि दोनों परस्पर संबद्ध प्रतीत होती हैं। उत्तरी तथा दक्षिणी गुजराती में कुछ भेद है। इसकी तीन बोलियाँ हैं। एक सूरत तथा भड़ौच में दूसरी अहमदाबाद में और तीसरी कठियावाड़ में व्यवहृत होती है। पहिले इसकी लिपि देवनागरी थी; परंतु आजकल गुजराती है।

(६) *मराठी*—इसका क्षेत्र पूना का पार्श्व, बरार, नागपुर का पार्श्ववर्ती भाग, मध्य प्रदेश का दक्षिणी भाग तथा बस्तर है। इसकी बोलियाँ कोंकणी, बरारी, हल्बी तथा देशी मराठी हैं। इनमें पूना की देशी मराठी टकसाली तथा साहित्यिक है। इसमें सुंदर साहित्य है। मराठी की लिपि देवनागरी है, परंतु नित्य व्यवहार की लिपि 'मोड़ी' है।

(७) *राजस्थानी*—इसका क्षेत्र राजस्थान (राजपूताना) है। इसमें मेवाती, जयपुरी, मालवी तथा मारवाड़ी (मेवाड़ी) चार बोलियाँ संमिलित हैं। मेवाती गुड़गाँव के पास, जयपुरी जयपुर तथा कोटाबूँदी में, मालवी इंदौर के पार्श्व में और मेवाड़ी मेवाड़ अर्थात् उदयपुर, जोधपुर, जैसलमेर तथा बीकानेर में व्यहृत होती है। मारवाड़ी तथा जयपुरी गुजराती से, मेवाती ब्रजभाषा से और मालवी बुंदेलखंडी से संबद्ध हैं। मारवाड़ी में कुछ प्राचीन साहित्य भी पाया जाता है जो डिंगल कहलाता है। मीराबाई राजस्थानी की सर्वप्रसिद्ध कवयित्री है। इसकी लिपि देवनागरी है, परंतु मारवाड़ियों के निज व्यवहार की लिपि महाजनी है। उत्तरी भारत में महाजनी का प्रचार मारवाड़ियों द्वारा ही हुआ है।

(८) *पहाड़ी अथवा खस*—इसका क्षेत्र हिमालय के दक्षिण दार्जिलिंग से शिमला तक है अर्थात् यह नेपाल, उत्तरप्रदेश, उत्तरी पहाड़ी भूभाग तथा सरहिंद के उत्तरी भाग में व्यवहृत होती हैं। यद्यपि ये भाषाएँ अपने मूलरूप में दर्द भाषाओं से संबद्ध हैं, तदपि इनका राजस्थानी से अधिक सादृश्य है। उसका कारण यह है कि इन पहाड़ी प्रदेशों के खस आर्यन दर्दिस्तान से आकर यहाँ बसे थे, अतः दर्द भाषाओं का यहाँ की भाषाओं पर बहुत प्रभाव पड़ा; परंतु बाद में पूर्वकाल में गूजर और मुसलमानकाल में अनेक राजपूत भी यहाँ आकर बस गए, अतः खस भाषाएँ राजस्थानी से भी प्रभावित हो गईं। जब खस लोगों ने नेपाल को जीता तो ये गूजर तथा राजपूत भी इनके साथ थे, अतः नेपाल की भाषाएँ भी राजस्थानी से प्रभावित हो गईं। इस प्रकार शिमला से नेपाल तक की पहाड़ी भाषाएँ राजस्थानी से संबद्ध हो गईं। पहाड़ी भाषाओं की पूर्वी, माध्यमिक तथा पश्चिमी तीन बोलियाँ है। पूर्वी पहाड़ी, जिसे नेपाली पर्वतिया, खसकुरा अथवा गोरखली भी कहते हैं, नेपाल में बोली जाती है। इसका केंद्र काठमांडू है। भाषाविज्ञान

की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है, अनेकों जर्मन तथा रूसी विद्वानों ने इसका अध्ययन किया है। इसमें कुछ अर्वाचीन साहित्य भी पाया जाता है। नेपाल के पूर्वी भाग में नेवारी आदि तिब्बत-बर्मी परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं, परंतु अब वहाँ भी धीरे-धीरे खसकुरा का प्रचार हो रहा है। इसकी लिपि देवनागरी है। राज्यदरबार में हिंदी का अधिक मान है। माध्यमिक पहाड़ी कमाऊँ तथा गढ़वाल में व्यवहृत होती है। यह जयपुरी से बहुत मिलती जुलती है। इसकी कमायुँनी तथा गढ़वाली दो बोलियाँ हैं। कमायुँनी का मुख्य केंद्र अलमोड़ा में नैनीताल का निकटवर्ती प्रदेश और गढ़वाली का मंसूरी का पार्श्व है। इसकी साहित्यिक भाषा हिंदी और लिपि देवनागरी है। इसका साहित्य केवल कुछ नवीन पुस्तकों तक ही सीमित है। पश्चिमी पहाड़ी जौनसार-बावर (उत्तर प्रदेश) से शिमला तक व्यवहृत होती है। इसका मारवाड़ी से अधिक सादृश्य है। इसकी लगभग तीस बोलियाँ है, जिनमें जौनसार-बावर की जौनसारी, शिमला की क्योंथली, कुल्लू की कुल्लूी, चंबा की चंबाली आदि मुख्य हैं। चंबाली के अतिरिक्त शेष सबकी लिपि टक्करी है। इसमें कोई विशेष साहित्य नहीं है, केवल कुछ ग्राम्यगीत हैं।

(ख) *पूर्वी भाषाएँ*—(१) पूर्वी हिंदी—इसका क्षेत्र हिमालय की तराई से रायपुर तक और कानपुर से भागलपुर तक है यद्यपि कुछ बातों में यह प० हि० से मिलती जुलती है, तदपि व्याकरण के अधिकांश रूपों में इसका संबंध बिहारी भाषा से है। अतः यह पूर्वी वर्ग की होते हुए भी मध्यवर्ती भाषा कही जा सकती है। इसकी अवधी, बघेली, तथा छत्तीसगढ़ी तीन बोलियाँ हैं। यद्यपि अवधी तथा बघेली में अधिक अंतर नहीं है, तदपि उड़िया तथा मराठी से प्रभावित होने के कारण छत्तीसगढ़ी इनसे बहुत भिन्न है। अवधी हिमालय की तराई से जमुना तक बोली जाती

है, परंतु इसका मुख्य केंद्र अवध है। रामायण तथा पद्मावत इसके साहित्य के सुंदर उदाहरण हैं। तुलसी इसके सर्वप्रमुख कवि थे। इसके दक्षिण जबलपुर मांडला तक बघेली व्यवहृत होती है। इसका मुख्य केंद्र रीवाँ है। इसकी साहित्यिक भाषा अवधी है। बघेली क्षेत्र के दक्षिण छत्तीसगढ़ आदि में छत्तीसगढ़ी बोली जाती है। इसमें प्राचीन साहित्य का तो अभाव है, परंतु कुछ नई बाजारू पुस्तकें हैं। पूर्वी हिंदी की लिपि नागरी है, परंतु कैथी का भी प्रयोग होता है।

(२) *बिहारी*—इसका व्यवहार गोरखपुर, बनारस, बिहार, छोटा नागपुर तथा मालदा में होता है। इसकी मैथिली, मगही तथा भोजपुरी तीन बोलियाँ हैं। इनमें मैथिली तथा मगही में तो सादृश्य है, परंतु भोजपुरी इन दोनों से भिन्न है। मैथिली दरभंगा के निकटवर्ती प्रदेश में; मगही गया, पटना, मुंगेर, हजारीबाग तथा मालदा में; और भोजपुरी गोरखपुर तथा बनारस कमिश्नरियों और शाहाबाद, आरा, चंपारन, सारन तथा छोटा नागपुर के जिलों में बोली जाती है। मैथिली की लिपि मैथिली है जिसके अक्षर बंगला अक्षरों के समान है। मैथिलकोकिल विद्यापति इसके सर्वप्रधान कवि थे। मगही तथा भोजपुरी की लिपि कैथी है। बिहारी की छपाई की लिपि नागरी है। इस प्रकार यद्यपि इसमें मैथिली कैथी तथा नागरी तीन लिपियाँ प्रयुक्त होती हैं, तदपि साहित्यिक भाषा केवल एक हिंदी ही है।

(३) *उड़िया*—इसका क्षेत्र उड़ीसा, छोटे नागपुर का दक्षिणी भाग, मध्यप्रदेश का पूर्वी भाग तथा तथा मद्रास का उत्तरी भाग है। उड़िया तथा बँगला के व्याकरण में अधिक साम्य है, परंतु उड़िया की लिपि बँगला से कहीं अधिक कठिन है। इसमें तेलुगु तथा मराठी शब्दों की अधिकता है। इसका साहित्य कृष्णसंबंधी है।

(४) *बँगला*—इसका क्षेत्र बंगाल है। बँगला तत्समबहुल भाषा है। इसकी उत्तरी, पूर्वी तथा पश्चिमी तीन बोलियाँ हैं। हुगली की पश्चिमी बँगला साहित्यिक भाषा है। इसका साहित्य बहुत उच्च कोटि का है। बँगला लिपि देवनागरी का ही एक परिवर्तित रूप है। बँगला में अ का ओ की भाँति और स का श की भाँति उच्चारण होता है।

(५) *आसामी*—यह ब्रह्मपुत्र की घाटी में ग्वालपारा से सदिया तक बोली जाती है। व्याकरण, उच्चारण तथा लिपि में यह बँगला से बहुत मिलती जुलती है। इसमें प्राचीन साहित्य स्वरूप कुछ सुंदर ऐतिहासिक ग्रंथ भी पाए जाते हैं। इसकी लिपि बँगला का एक परिवर्तित रूप है।

अध्याय ४

भाषा की परिवर्तनशीलता

प्राचीन स्मारक रक्षाविभाग की प्रागैतिहासिक खोज के फल-स्वरूप जो भोजपत्र, शिलालेख आदि पाए जाते हैं, उनमें अधिकांश आज दुर्बोध्य हैं। किसी भाषा के विभिन्न कालीन साहित्यिक रूपों में बहुत भेद हो जाता है। उदाहरणार्थ, ऋग्वेद, वाल्मीकि-रामायण, तुलसीकृत रामचरितमानस तथा गुप्तजी के साकेत की भाषा में बहुत अंतर है। भिन्न भिन्न देशों में ही नहीं, अपितु एक ही देश, प्रांत, ज़िले अथवा नगर तक में अनेक भाषाएँ तथा बोलियाँ व्यवहृत होती हैं। उदाहरणार्थ, पंजाब के किसी किसी ज़िले में तो कई बोलियाँ बोली जाती हैं। एक ही भाषा के साहित्यिक तथा लौकिक अथवा नागरिक तथा ग्राम्य रूपों में तथा शिक्षित अशिक्षित मनुष्यों अथवा ऊँच नीच जातियों के उच्चारण में बहुत भेद होता है। इन सबका कारण है भाषा की निरंतर परिवर्तनशीलता। इस परिवर्तन की तीव्रगति का अनुमान इस बात से हो सकता है कि जब प्राचीनकाल में ईसाई पादरी अफ्रीका में अपने मत का प्रचार करने गए, तो उन्होंने अनुभव किया कि वहाँ प्रत्येक ग्राम की अपनी एक पृथक् बोली होने के कारण प्रचार करना कठिन है। उन्होंने कई मास तक अनवरत परिश्रम करके वहाँ की भाषाओं का ज्ञानोपार्जन किया और बाइबिल आदि धर्म-ग्रंथों का उनमें अनुवाद किया; परंतु कुछ समय पश्चात् जब दूसरे

प्रचारक वहाँ गए, तो उन्होंने देखा कि वहाँ की भाषाएँ इतनी परिवर्तित हो गई हैं कि प्रथम प्रचारकों द्वारा अनूदित धर्मग्रंथ वहाँ के निवासियों के लिये दुर्बोध्य हो गए हैं। भाषा के दो रूप हैं—साहित्यिक तथा लौकिक, लिखित तथा वदित, कृत्रिम तथा प्राकृतिक अथवा स्थायी तथा क्षणिक। यदि एक सुंदर घाटों से बद्ध स्थिर रहनेवाला सरोवर है, तो दूसरा सदैव मार्गपरिवर्तन करनेवाली प्राकृतिक, तथा अविच्छिन्न धारा; अथवा यदि एक केंद्रस्थ धुरी है, तो दूसरा उसके चारों ओर चक्र की परिधि पर शीघ्रता से परिक्रमा करनेवाला बिंदु। सारांश यह है कि साहित्यिक भाषा व्याकरणिक नियमों से नियंत्रित रहने के कारण शनैः शनैः और लौकिक भाषा स्वच्छंद रहने के कारण तीव्रता से परिवर्तित होती है। जो भाषा जितनी ही अधिक व्याकरणिक शृंखलाओं में जकड़ी रहती है, वह उतनी ही कम परिवर्तित होती है।

भाषा के मुख्य अंग तीन हैं ध्वनि, रूप और अर्थ। ध्वनि से हमारा आशय भाषा के वदित स्वरूप अर्थात् ध्वनियों के उच्चारण आदि से हैं, रूप से उसके अक्षरविन्यास तथा वाक्यविन्यास अर्थात्, प्रकृति, प्रत्यय, विभक्ति आदि शब्दों तथा साधकांशों और सार्थक शब्द समूहों अथवा वाक्यों से और अर्थ से शब्दार्थ से है। ध्वनिसंबंधी परिवर्तन ध्वनिविकार, रूपसंबंधी रूपविकार तथा अर्थसंबंधी, अर्थविकार कहलाते हैं। ध्वनिविकार के कारण नित्यप्रति अनेक शब्दों के उच्चरित स्वरूप परिवर्तित होते रहते हैं। रूपविकार के कारण अनेक शब्द बनते बिगड़ते रहते हैं तथा वाक्यविन्यास परिवर्तित होता रहता है। अर्थविकार के कारण अनेक शब्दों के अर्थ घटते बढ़ते रहते हैं और उनमें भेद होता रहता है। इन व्यष्टिरूप से होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप भाषा में समष्टि रूप से भी परिवर्तन होता रहता है।

भाषा परिवर्तन के कारण

(१) *वैयक्तिक विभिन्नता*—भाषा अर्जित संपत्ति होने के कारण अनुकरण द्वारा सीखी जाती है; परंतु किसी भी दो मनुष्यों की न तो मानसिक गठन तथा श्रवणेंद्रिय ही एक सी है और न वाग्यंत्र ही। प्रत्येक व्यक्ति के स्वर अथवा लहजे में एक वैयक्तिक विशेषता होती है। यही कारण है कि कभी कभी हम बिना मुख देखे हुए भी किसी ज्ञात व्यक्ति की केवल आवाज सुनकर ही उसे पहचान लेते हैं और कह बैठते हैं, 'अहा! अमुक व्यक्ति (उसका नाम) है।' अतः सब मनुष्य न तो एक प्रकार समझते तथा सुनते ही हैं और न बोलते ही हैं—विशेषतया शिक्षित तथा अशिक्षित के उच्चारण में बहुत विभिन्नता होती है, अतएव अनुकरण तथा उच्चारण सदैव अपूर्ण रहता है और भाषा से वैयक्तिक विभिन्नता उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि इन वैयक्तिक विभिन्नताओं का भाषा के सामाजिक संस्था होने के कारण उसकी गति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, तथापि कालयापन होने पर जब कुछ विभिन्नताएँ अस्पष्ट रूप से समाज द्वारा गृहीत हो जाती हैं, तो भाषा में परिवर्तन हो ही जाता है।

(२) *मुखसुख अथवा सुविधा*—भाषा के व्यवहार में प्रत्येक व्यक्ति सुविधा अथवा आराम चाहता है और अल्प से अल्प समय तथा प्रयत्न में अपने मनोभावों तथा विचारों को दूसरों पर प्रकट करने की चेष्टा करता है। अतः वह अपने शब्दों तथा वाक्यों को सरल तथा संक्षिप्त बनाने और संक्रामक ध्वनियों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है। जब किसी क्लिष्टता विशेष को सामूहिक रूप से सरल करने का प्रयत्न किया जाता है, तो भाषा प्रवाहित हो जाती है। सावर्ण्य-असावर्ण्य, मात्राभेद, आगम, लोप आदि ध्वनिविकार इसी प्रकार होते हैं। अतएव अनेक शब्दों में उनकी

उपयोगिता के अनुसार निरंतर काटछाँट अथवा घटावबढ़ाव होता रहता है।

(३) कालभेद—यद्यपि भाषा की धारा परंपरागत तथा अविच्छिन्न है, तथापि उसमें अस्पष्ट रूप से सदैव काटछाँट तथा गतिपरिवर्तन होता रहता है। यदि हम किसी स्थान विशेष की भाषा का कुछ समय तक सूक्ष्म निरीक्षण करें, तो कालांतर में उसके उच्चरित स्वरूप में परिवर्तन होता हुआ प्रतीत होगा। किसी भाषा में व्याकरणिक नियम निर्धारित हो जाने पर भी सर्वसाधारण, बालकों तथा अशिक्षितों द्वारा उनका पालन होना असंभव है। अतः कुछ-न-कुछ भाषाविकार होना अनिवार्य है, जो बढ़ते बढ़ते कुछ समय पश्चात् भाषा के रूप में एक परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। साहित्यिक भाषा से पृथक् लौकिक भाषा की उत्पत्ति इसी प्रकार होती है। यदि हम किसी भाषा के प्राचीन, अर्वाचीन तथा नवीन रूपों की तुलना करें, तो कालानुगत परिवर्तनशीलता का स्पष्ट अनुभव हो जायगा। उदाहरणार्थ, प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ वैदिक संस्कृत तथा प्राकृत संहित थीं, अर्थात् उनमें प्रत्यय तथा विभक्ति शब्दों के साथ संश्लिष्ट रहते थे; मध्यकालीन भाषा अपभ्रंश संहित अवस्था में रहने पर भी उच्चारण में बहुत भिन्न हो गई थी, यथा—व्यंजनों के क्लिष्ट संयोग सरल संयोगों में परिवर्तित हो गए थे, जैसे धर्म से धम्म, मृत्यु से मिच्चु, जिह्वा से जिब्भा आदि—और हिंदी आदि आधुनिक देशी भाषाएँ व्यवहित हैं। इसी प्रकार लैटिन, ऐंग्लो-सेक्सन, अवेस्ता आदि प्राचीन भाषाओं से इटैलियन, अंग्रेजी, फारसी आदि आधुनिक भाषाएँ कहीं सरल तथा व्यवहित हैं, और हिंदी, बंगला गुजराती आदि में जितना भेद अब है, उतना पहले न था। सतत प्रयोग से कालांतर में अनेक शब्दों के अर्थ में भी भेद हो जाता है। उदाहरणार्थ, सत असत के अर्थ विद्यमान

अविद्यमान से सच झूठ, कर्पट (कपड़े) के जीर्ण वस्त्र से प्रत्येक प्रकार का वस्त्र, मृग के पशु से केवल हिरन तथा फिरंगी के पुर्तगाली डाकू से यूरोपियन मात्र हो गए। अतएव अर्थोपकर्ष अर्थोत्कर्ष, अर्थसंकोच, अर्थविस्तार आदि अर्थविकारों द्वारा होनेवाले भाषापरिवर्तन का कारण भी कालभेद ही है। इसकी विस्तृत व्याख्या अर्थविकार के अंतर्गत की जायगी।

(४) *स्थानभेद*—कभी कभी हम किसी मनुष्य विशेष की बोली सुनकर कह देते हैं, क्या आप अमुक नगर अथवा जिले के निवासी हैं? हम पहाड़ी, पंजाबी, बंगाली, मराठी आदि अथवा मुरादाबादी लखनवी, सीतापुरी, बनारसी, बलियाटिक, आदि मनुष्य की बोली सुनते ही पहचान लेते हैं कि वे कहाँ के निवासी हैं। यद्यपि भिन्न भिन्न स्थानों के शिक्षित मनुष्यों की भाषा में विशेष अंतर नहीं होता, तदपि उनके स्वर में कुछ भेद अवश्य हो जाता है। यह स्थानीय भाषाभेद असभ्य तथा अशिक्षितों की बोली में अधिक और स्पष्ट होता है। यदि हम अपने निकटवर्ती दो-चार जिलों की सार्वजनिक भाषाओं की परस्पर तुलना करें, तो यह भेद स्पष्ट हो जायगा। इस स्थानानुगत परिवर्तनशीलता का कारण यह है कि प्रत्येक स्थान अथवा देश की प्राकृतिक दशा तथा जलवायु का वहाँ के निवासियों के शरीरगठन और तदनुसार वाग्यंत्र पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है, जो उनके उच्चारण में स्पष्ट प्रदर्शित होता है, अर्थात् प्रत्येक देश के निवासियों के उच्चारण तथा बोली में उनके देश की छाप लग जाती है। अतएव विभिन्न स्थानों की बोलियों में भेद हो जाता है—उदाहरणार्थ, पंजाबी, न को ण, स्काच ट को ठ तथा अंग्रेज त को ट उच्चारण करते हैं; संस्कृत में शब्दांत में र्क्, र्ट् तथा र्त् के अतिरिक्त अन्य संयुक्त व्यंजन, ग्रीक, में एन, आर तथा यस् के अतिरिक्त अन्य व्यंजन तथा इटैलिक में व्यंजन नहीं

आते, हिंदी में ४८ व्यंजन हैं परंतु पौलिनेशिया की भाषा में केवल १० ही हैं; द्राविड़ भाषाओं में मूर्धन्य वर्ण अधिक हैं, इंगलैंड भर की भाषा एक होने पर भी डेवनशायर तथा नार्थम्बरलैंड की अंग्रेजी में और पश्चिमी उत्तरप्रदेश की भाषा पश्चिमी हिंदी होने पर भी बरेली तथा फर्रुखाबाद अथवा हरदोई की बोली में बहुत अंतर हैं; दुर्लंघ्य पर्वतों के बीच में आ जाने के कारण तिब्बत तथा भारत की भाषाएँ और इसी प्रकार भारत तथा ब्रह्मा की भाषाएँ एक दूसरे से पृथक् हो गई हैं। गंगाजमुना के मैदान के सबसे अधिक उपजाऊ तथा शिक्षोपयोगी होने के कारण वहाँ विद्या की सबसे अधिक उन्नति हुई और देहली-मेरठ की पार्श्ववर्ती भाषा सदैव राष्ट्रभाषा रही। भारतवर्ष के पश्चिमी किनारे पर नर्मदा, ताप्ती के अतिरिक्त अन्य कोई घाटी न होने कारण वहाँ की भाषा गुजराती में अन्य देशी भाषाओं की अपेक्षा विदेशी प्रभाव अधिक पाया जाता है।

कभी-कभी किसी-किसी स्थान की भाषा में भौगोलिक प्रभाव के अतिरिक्त किसी कारणविशेष से एक विशेष प्रकार की अभ्यास जनित पटुता उत्पन्न हो जाती है अर्थात् किसी एक बात को सैकड़ों हजारों वर्षों तक एक ही भाँति प्रयोग करते करते वैसा ही अभ्यास हो जाता है और फिर उसको त्यागना, अथवा परिवर्तित करना कष्ट-साध्य हो जाता है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी बंगाल के निवासियों ने अपने को पूर्वी बंगाल के निवासियों से सदैव उच्च समझा है और उनसे पृथक् रहने का प्रयत्न किया है। पूर्वी बंगाली 'स' बोलते हैं, अतः संभवतया पश्चिमी बँगाली उनसे भेद करने के लिए 'श' बोलने लगे होंगे। इस प्रकार पश्चिमी बँगला शकारबहुला हो गई, अन्यथा यह बात नहीं है कि बँगाली 'स' न बोल सकते हों। इसी प्रकार संस्कृत में एकार तथा ह्रस्व ओकार के अभाव का कारण इन स्वरों के उच्चारण की कठिनाई न होकर अभ्यासजनित अपटुता

है, क्योंकि भारतवासियों की जिह्वा में तो सबसे अधिक लोच है। ध्वनि-नियमों के निर्धारित करने में इन भौगोलिक तथा अभ्यासगत स्थानीय भेदों का विशेष ध्यान रखा जाता है।

देशानुगत परिवर्तन के विषय में दो एक बातें ध्यान में रखनी चाहिए। प्रथम, स्थानभेद से कोई भाषा एकदम परिवर्तित नहीं हो जाती; अपितु ज्यों ज्यों स्थानभेद बढ़ता जाता है त्यों-त्यों भाषा भेद भी अधिक होता जाता है। यही कारण है कि दो भाषाओं की सीमांतर भाषा में दोनों की विशेषताएँ पाई जाती हैं, और यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उसको किसके अंतर्गत लिया जाय। हिंदी, पहाड़ी, पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी, प० हि०, पंजाबी आदि किसी दो भाषाओं की सीमा पर बोली जानेवाली भाषा के उदाहरण से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। द्वितीय, भाषाओं का, वर्गीकरण राजनैतिक विभागों के अनुसार नहीं किया जाता अतः न तो राजनैतिक विभाग भाषाविभाग के ही बोधक हैं और न भाषाविभाग राजनैतिक के ही। उदाहरणार्थ, पंजाब के पश्चिमी भाग में लहँदा तथा दक्षिणी पूर्वी भाग में पश्चिमी हिंदी, उत्तर-प्रदेश के पूर्वी भाग गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, आजमगढ़, शाहाबाद आदि में बिहारी (भोजपुरी) तथा आसाम में तिब्बत-बर्मी-चीनी परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। हाँ, भाषाओं का नामकरण प्रायः राजनैतिक विभागों के अनुसार होता है—जैसे पंजाबी, बिहारी, बंगाली, आसामी आदि तथा चीनी, तुर्की, मिस्री सूडानी, अरबी, फारसी, ग्रीक, इटैलियन जर्मन आदि। तृतीय, सब स्थानों की स्थिति तथा अन्य कारण एक से नहीं होते, अतः सब भाषाएँ भी एक गति अथवा क्रम से परिवर्तित नहीं होतीं। उदाहरणार्थ, यद्यपि हिंदी तथा बँगला दोनों का एक ही भाषा से एक ही समय निष्क्रमण हुआ है, तदपि बँगला हिंदी की अपेक्षा अधिक प्राचीन प्रतीत होती है।

(५) *विजातीय संपर्क*—जब विभिन्न देशों की जातियों का परस्पर संसर्ग होता है, तो वे एक दूसरे के नवीन पदार्थ तथा विचार उनकी उद्योतक भाषासहित ग्रहण करती हैं। चूँकि स्थानभेद के कारण उन दोनों के वाग्यंत्र की गठन में भेद होता है, अतः वे एक दूसरे की भाषा का पूर्णतया शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकतीं और मूल तथा अनुकरणिक भाषा में भेद हो जाता है। कभी कभी एक जाति दूसरी जाति की नवीन वस्तुओं का मिथ्या सादृश्य के अनुसार अपनी भाषा में नामकरण करती है, जिससे उसके उच्चारण, रूप तथा अर्थ में भेद हो जाता है—जैसे फारसी انتقال (इंतक़ाल) से हिंदी 'अंतकाल', अरबी اسفنج (स्फंज) से अंग्रेजी Sponge अरबी ابنيس (अबनीस) से उर्दू آبنوس (आबनूस) अंग्रेजी ebony आदि भ्रामक व्युत्पत्ति आदि ध्वनिविकार तथा उपचार और लक्षण से होनेवाले अर्थविकार इसी प्रकार होते हैं। अतएव जिस जाति के वक्ता विदेशियों अथवा विजातियों के अधिक संपर्क में आते हैं, उसमें भाषाविकार अधिक होता है। वास्तव में बात यह है कि जब व्यापारिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि कारणों से विजातीय संसर्ग अधिक होता है, तो एक दूसरे की भाषा की जानकारी प्राप्त किए बिना काम नहीं चलता। भाषा का नवीन वक्ता प्रारंभ में केवल प्रकृत्यांश का प्रयोग करता है और प्रत्यय तथा विभक्ति की उपेक्षा कर देता है। प्रभावशाली जाति के विकृत तथा अशुद्ध प्रयोग भी चालू हो जाते है और भाषा के रूप में उनका परिवर्तन हो जाता है। दो एक उदाहरणों से इसका स्पष्टीकरण हो जायगा। प्राचीन काल में भारतवर्ष के पश्चिमी किनारे के द्राविड़ों तथा अरबियों में अधिक व्यापार होता था, अतः अरबी तथा उसके द्वारा पाश्चात्य भाषाओं में अनेक द्राविड़ शब्द विशेषतया भारत से बाहर जानेवाले पदार्थों के वाचक शब्द पाए जाते

है—जैसे तामिल 'अरिसा' अरबी में ارز (उर्ज) तथा अंग्रेजी में (rice) हो गया। व्यापार में मारवाड़ी सर्वोन्नत जाति है, अतः सर्वत्र उत्तरी भारत की व्यापारिक लिपि महाजनी (मुंडी) अथवा (मुड़िया) हो गई। संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत तथा अपभ्रंश में ध्वनि-विकारों की अधिकता आभीर, गुर्जर आदि विदेशी आक्रमण-कारियों के कारण है। द्राविड़ संसर्ग के कारण आर्यभाषा संस्कृत में अनेक द्राविड़ शब्द पाए जाते हैं। भारतीय भाषाओं में अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों का पाया जाना और उर्दू की उत्पत्ति तथा विकास मुसलमानों के आगमन के कारण और अंग्रेजी, फ्रेंच, पुर्तगाली आदि शब्दों का होना यूरोपीय व्यापारियों के संसर्ग के कारण है। पश्चिमी भारत की भाषाएँ विदेशी आक्रमणकारियों से अधिक संपर्क में आने के कारण पूर्वी भारत की भाषाओं से अधिक व्यवहित हैं। इस्लाम धर्म के प्रचार के समय से सेमेटिक भाषाभाषी अरबियों के फारस में आने के कारण वहाँ फारसी व्यवहित हो गई। अमेरिका की भाषा में वहाँ अंग्रेजों का उपनिवेश तथा राज्य होने के कारण अंग्रेजी का अन्य आधुनिक भाषाओं की अपेक्षा अधिक प्रभाव पाया जाता है।

(६) *राजनैतिक परिस्थिति*—भाषा की गति अर्थात् उसकी परिवर्तनशीलता, विकास, उन्नति, अवनति आदि पर राजनैतिक परिस्थिति का बहुत प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, अपभ्रंश की उन्नति आभीर राजाओं के कारण, पाली की अशोक आदि तत्कालीन राजाओं के बुद्धधर्म ग्रहण कर लेने के कारण, फारसी की मुस्लिम काल में राज्यदरबार की भाषा होने के कारण, उर्दू की अंग्रेजी राज्य में अदालती भाषा होने के कारण, पंजाबी की रणजीतसिंह द्वारा दृढ़ सिक्खराज्य स्थापित होने के कारण तथा हिंदुस्तानी की

उत्पत्ति अंग्रेजों के आगमन से और उन्नति कांग्रेस के कारण हुई। किसी भाषा की उन्नति का प्रभाव केवल उसकी गति पर ही नहीं, अपितु अन्य भाषाओं की गति पर भी पड़ता है।

(७) *धार्मिक अवस्था*—प्राचीन काल में साहित्य अथवा काव्य-रचना धार्मिक कारणों से होती थी। यदि कोई भाषा किसी धर्म में अपना ली जाती थी, तो उसमें उन्नति के साथ-साथ तीव्रता से परिवर्तन भी होने लगता था। धर्मग्रंथों की भाषा पवित्र समझी जाती थी और उसका बहुत आदर होता था। फलतः उसे राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती थी और अनेक विभाषाओं के शब्द उसमें आने और उसके समस्त विभाषाओं में जाने लगते थे। भाषोन्नति प्रत्येक देश में इसी प्रकार हुई है। उदाहरणार्थ, वैदिक धर्म के वेदों के कारण संस्कृत की, बुद्ध धर्म के त्रिपिटक के कारण पाली की, तुलसी की रामायण के कारण हिंदी की, सिक्ख धर्म के 'गुरु ग्रंथ साहब' के कारण गुरुमुखी की, इस्लाम धर्म के कुरान के कारण अरबी की, होमर की ईलियड तथा ओडिसी के कारण ग्रीक की, पोप के रोम में रहने तथा ईसाई धर्मग्रंथ बाइबिल के लैटिन में होने के कारण लैटिन की तथा लूथर की बाइबिल के कारण आधुनिक जर्मन की उन्नति हुई और उनका अन्य भाषाओं पर प्रभाव पड़ा।

(८) *सामाजिक अवस्था*—किसी देश की सामाजिक अवस्था का उस देश की भाषा पर बहुत प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, आर्य-समाज के उत्थान काल से हिंदी में तर्कवितर्कपूर्ण व्यंग्यात्मक शैली ही चल पड़ी है। आजकल तो सामाजिक स्थिति के कारण ही भारत में बड़ा भारी भाषाविषयक आंदोलन चल रहा है। इधर कांग्रेस (महात्मा गांधी) हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न कर रही है, उधर अधिकांश मुसलमान कांग्रेस को हिंदू-संस्था और हिंदुस्तानी को हिंदुओं

की भाषा कहकर उर्दू का पक्ष दृढ़ कर रहे हैं तथा साहित्यिक हिंदू-हिंदुस्तानी का झुकाव उर्दू की ओर होने के कारण हिंदी को आदर दे रहे हैं। फलतः हिंदी, उर्दू तथा हिंदुस्तानी तीनों के रूप बहुत कुछ परिवर्तित होते जा रहे हैं।

(९) *शिक्षा तथा संस्कृति*—समाज में स्त्री पुरुष, बालक बड़े; नौकर चाकर आदि सभी शिक्षित नहीं होते। शिक्षित अशिक्षित की संस्कृति में बहुत भेद होता है। न तो अशिक्षित शिक्षितों की भाँति ही उच्चारण कर पाते हैं और न बच्चे बड़ों की भाँति ही। अतः भाषा में अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। भ्रामक व्युत्पत्ति, वर्णविपर्यय आदि ध्वनिविकार तथा मिथ्याप्रतीति द्वारा होनेवाले अर्थविकार इसी प्रकार होते हैं। शनैः शनैः ये विचार चल निकलते हैं। लखनऊ नखलऊ, नुक्सान का नुस्कान, बताशा का बसाता, एरंड का रेंड, अंगुली का उंगली आदि हो जाना; दर-अस्ल को दरअस्ल में, गुलरोगन को गुलरोगन का तेल, नीलगिरि को नीलगिर पर्वत, विंध्याचल को विंध्याचल पहाड़, विविध को विविध प्रकार, अभी को अभी भी, मैं को मैंने तुम्ही को तुम्ही ही आदि कहना; तथा एम्स, रिजेज, पाज़, आक्सेन, आदि का एकवचन से बहुवचन में बदल जाना इसी प्रकार के उदाहरण हैं।

(१०) *मिथ्या सादृश्य अथवा उपमान*—विजातीय संसर्ग विकार आदि के अतिरिक्त नियमित परिवर्तन भी सादृश्य नियम के आधार पर होता है, अर्थात् जब किसी कारणवश एक नूतन रूप उत्पादित तथा गृहीत हो जाता है, तो उसके सादृश्य पर अनेक शब्द विकृत तथा परिवर्तित होते रहते हैं। ध्वनिनियम इसी प्रकार के शब्दों की तुलना का फल है। उदाहरणार्थ—मान लो, किसी प्रकार संस्कृत मेघ का हिंदी में मेह हो गया और वह चालू भी हो गया, तो इसी के सादृश्य पर शोभन, बधिर, मुख, सौभाग्य आदि

परिवर्तित होकर क्रमशः सोहना, बहिरा, मुँह, सोहाग आदि हो गए तत्पश्चात् इनके आधार पर यह ध्वनिनियम बन गया कि संस्कृत शब्दों का ख, घ, थ, ध अथवा भ हिंदी में 'ह' हो जाता है। इसी प्रकार जब से हिंदी के विद्वानों ने अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों को हिंदी रूप देकर अपनाना आरंभ कर दिया है—जैसे 'काग़ज़' से कागज, 'क़लम' से कलम आदि—तब से इनकी देखादेखी अनेक साहित्यिकों ने हक़, फसाद, बिलकुल, खाक़, गरीब, हाजिर आदि शब्द प्रयोग करने आरंभ कर दिए हैं और हिंदीशैली के भाषातत्त्व का रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है।

अध्याय ५

ध्वनिविचार

(क) ध्वनियों का वर्गीकरण

ध्वनि—का अर्थ है 'आवाज'। किसी भी जीवजंतु के मुख से निकलनेवाली आवाज को ध्वनि कह सकते हैं। यह दो प्रकार की होती है—व्यक्त तथा अव्यक्त अथवा सार्थक तथा निरर्थक। मनुष्यों के मुख मे निर्गत आवाज व्यक्त ध्वनि और पशुपक्षियों के मुख से निर्गत अथवा जड़ पदार्थों के किसी अन्य वस्तु अथवा प्राणी के संपर्क द्वारा उत्पादित आवाज अव्यक्त ध्वनि कहलाती है। भाषा का मुख्य उद्देश्य विचारविनिमय कराना है, जो केवल व्यक्त ध्वनियों द्वारा ही हो सकता है। अतः भाषा का संबंध व्यक्त ध्वनियों से ही है अव्यक्त मे नहीं। व्यक्त ध्वनियाँ दो प्रकार की होती हैं—ध्वनिमात्र तथा भाषण ध्वनि। उच्चारणस्थान की दृष्टि से प्रायः एक ही वर्ण के अनेक शब्दों में अनेक सूक्ष्म भेद होते है, परंतु क्योंकि ये भेद उच्चारणात्मक होते हैं, अतः श्रोता को प्रतीत नहीं होते और वह इन सबको एकसा समझता है। अतएव व्यावहारिक दृष्टि से उस वर्ण के सब भेदों के लिये प्रायः एक संकेत अथवा चिह्न (ध्वनिसंकेत अथवा लिपिसंकेत) प्रयुक्त होने लगता है। उदाहरणार्थ, 'हल्दी' तथा 'बाल्टी' दोनों में प्रत्यक्षतया तो एक ही ध्वनि संकेत 'ल' है परंतु वास्तव में पहला 'ल' दंत्य और दूसरा ईषत् मूर्धन्य है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ण के भाषित स्वरूप के दो

रूप होते हैं, अवित तथा उच्चरित, प्रत्यक्ष तथा परोक्ष, स्थायी (निश्चित) तथा परिवर्तनशील, व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक। प्रथम को ध्वनिमात्र और द्वितीय को भाषणध्वनि कह सकते हैं। किसी वर्ण की ध्वनिमात्र तो केवल एक ही होती है जिसका निश्चित लिपिसंकेत भी होता है, परंतु उसकी भाषणध्वनियाँ अनेक होती हैं जिनमें से प्रत्येक का लिपिसंकेत होना आवश्यक नहीं है। इन भाषणध्वनियों में इतना सूक्ष्म भेद होता है कि लिपिसंकेतों द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता; परंतु उच्चारण के सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा इसका स्पष्टीकरण किया जा सकता है। दो एक उदाहरणों से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। 'कल' तथा 'काल्हि' में ध्वनिमात्र तो केवल एक 'ल' ही है परंतु उनकी भाषणध्वनियाँ पृथक् पृथक् हैं। 'कल' में 'ल' अल्पप्राण है, परंतु 'काल्हि में' महाप्राण है। catch. call college, keep king, queen में ध्वनिमात्र तो केवल 'क' ही है, परंतु भाषणध्वनियाँ अनेक हैं; तथा बंगला 'न' ध्वनिमात्र की वर्त्स्य, ईषत् मूर्धन्य, दंत्य तथा तालव्य चार भाषणध्वनियाँ होती हैं। हिंदी में किसी वर्ण के ध्वनिसंकेत तथा लिपिसंकेत प्रायः एक से होते हैं, ध्वनिमात्र तथा वर्ण को निकट तथा पर्यायवाची कह सकते हैं परंतु अंग्रेजी में ध्वनिसंकेत तथा लिपिसंकेत नितांत भिन्न हैं, उदाहरणार्थ go तथा goal में लिपि संकेत (g) तो एक ही है, परंतु ध्वनिमात्र (ग तथा ज) भिन्न हैं तथा came, king तथा queen में ध्वनिमात्र तो केवल एक 'क' ही है, परंतु लिपिसंकेत c, k तथा q हैं। अतः ध्वनिमात्र तथा वर्ण सदैव पर्यायवाची नहीं कहे जा सकते।

ध्वनियों का वर्गीकरण—ध्वनियों के भेदोपभेद उच्चारणानुसार होते हैं, अतः उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों का ज्ञानार्जन करना नितांत आवश्यक है। मुख्य भाषणावयव निम्नलिखित हैं—

उच्चारणोपयोगी शरीरावयव—(१) फेफड़े (२) श्वासनलिका (३) कंठपिटक अथवा स्वरयंत्र (४) जिह्वा, तालु, दाँत तथा ओष्ठ सहित मुख (५) नासिका तथा मुख को मिलानेवाले गलबिल सहित नासिका।

(१) *फेफड़े*—बोलते समय एक प्रकार की वायु मुख से निर्गत होती है जो फेफड़ों से आती है। इसका अनुभव भाषण के समय मुख के सामने हाथ रखकर किया जा सकता है। अतएव प्रत्येक ध्वनि की उत्पत्ति फेफड़ों से निर्गत वायु द्वारा होता है।

(२) *श्वासनलिका*—यह फेफड़ों से मुख तथा नासिका को मिलानेवाले गलबिल तक आती है। बोलने में निर्गत वायु इसी के द्वारा फेफड़ों से मुख तथा नासिकाविवर में आती है।

कंठपिटक—कंठ का वह भाग है जिसे टेंटुआ कहते हैं। यह पुरुषों में कुछ उठा हुआ होता है और प्रत्यक्ष दिखाई देता है। इसको हम स्वरयंत्र कह सकते हैं। इसके भीतर खिंचने तथा सिकुड़नेवाली (Elastic) दो स्वरतंत्रियाँ होती हैं। ये श्वास-नलिका में ऊपर की तरफ दोनों ओर मांस के दो पतले परदे से होते हैं जो श्वासनलिका को घेरे रहते हैं। ध्वनियों का कठोर अथवा कोमल होना इनके संवृत अथवा विवृत रहने पर निर्भर है। इन दोनों स्वरतंत्रियों के बीच में कुछ अवकाश होता है जिसे काकल कहते हैं। इससे 'ह' प्राणध्वनि निकलती है जिसके अनुसार कुछ वर्णों के अल्पप्राण तथा महाप्राण भेद किए जाते हैं।

(४) **मुख** (क) *जिह्वा*—इसके जिह्वामूल, अग्र, मध्य तथा पश्च चार भाग हैं। इसके जिह्वा तथा तालु के बीच के अवकाश के आकार को ऊपर नीचे उठाकर कम अथवा अधिक करना, मुख के आभ्यंतर भाग से बहिर्निस्सरण होनेवाली वायु का दंत तालु आदि अन्य भाषणावयवों के स्पर्श द्वारा अवरोध करना आदि

अनेक कार्य अथवा प्रयत्न हैं जिनके अनुसार वर्णों के अनेक भेद हो जाते हैं। यह सर्वप्रमुख भाषणावयव है।

(ख) *तालु*—मुख के भीतर की छत को तालु कहते हैं। इसके दो भाग हैं, कठोर तालु (अगला भाग) तथा कोमल तालु (पिछला भाग)। कठोर तालु के तीन भाग हैं, (१) वर्त्स, ऊपर के दाँतों के पीछे मसूड़े अथवा उभरा हुआ खुरखुरा भाग, (२) तालु, वर्त्स के पीछे का भाग तथा (३) मूर्धा, पीछे का चिकना भाग। इन तीनों भागों से जिह्वा का स्पर्श होने पर भिन्न वर्णों का उच्चारण होता है, जैसे वर्त्स से स, J आदि का तालू से चवर्ग का तथा मूर्धा से टवर्ग का। कोमल तालु मूर्धा के पीछे का भाग कहलाता है। इसे कंठ भी कहते हैं। कवर्गीय वर्णों का उच्चारण जिह्वा का स्पर्श होने पर इसी से होता है। इसका अंतिम भाग काग अथवा कौआ कहलाता है जो अनुस्वार आदि अनुनासिक वर्णों के उच्चारण में ऊपर उठकर वायु को नासिका में जाने से निरोध करता है।

(ग) *दाँत*—दाँतों के तीन भाग हैं; दाँत, जड़ तथा मसूड़े, जिनसे जिह्वा का स्पर्श होने पर अनेक वर्णों का, उच्चारण होता है जैसे दाँतों से तवर्गीय वर्णों का जड़ों से व आदि का और मसूड़ों से वर्त्स्य वर्णों का। कभी कभी ओष्ठ तथा दाँतों द्वारा भी उच्चारण होता है जैसे फ़ तथा व का।

(घ) *ओष्ट*—नीचे और ऊपर दो होते हैं। इनसे आकार-परिवर्तन द्वारा भिन्न भिन्न स्वरों का और वायुनिरोध द्वारा पवर्गीय वर्णों का उच्चारण होता है।

(५) *नासिका*—मुख तथा नासिका गलबिल द्वारा मिले हुए हैं। ओष्ट बंद रहने से, स्वरतंत्रियों के श्वासनलिका को ढक लेने से अथवा काग के ऊपर उठ जाने से वायु का निरोध होने पर अनुनासिक वर्णों का उच्चारण नासिका से होता है।

वर्गीकरण—किसी ध्वनि के उच्चारण में तीन बातें होती हैं—(१) वह मुख से किस प्रकार निकलती है अथवा वह श्रोता को दूर से सुनाई देती है या पास से अर्थात् उसमें श्रवणीयता कितनी है; (२) वह किस भाषणावयव द्वारा अथवा किस स्थान से उच्चरित होती है; (३) उसके उच्चारण के समय भाषणावयवों को क्या प्रयत्न करना पड़ता है अर्थात् वायु का निरोध तथा निस्सरण किस प्रकार होता है। तदनुसार ध्वनियों का वर्गीकरण भी तीन प्रकार से किया जाता है—(१) श्रवणीयता के अनुसार; (२) उच्चारण स्थान की दृष्टि से; (३) प्रयत्नानुसार।

श्रवणीयता के अनुसार—वर्णों को स्वर तथा व्यंजन दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

स्वर—वे वर्ण हैं जो स्वतंत्र रूप से बिना किसी वर्ण की सहायता के बोले जा सकते हैं, अधिक दूर से सुनाई देते हैं तथा जिनके उच्चारण में मुखद्वार थोड़ा बहुत सदैव खुला रहता है और वायु का बहिर्निस्सरण बिना किसी प्रकार की रुकावट के केवल जिह्वा की स्थिति के परिवर्तन द्वारा होता है। ये स्वर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ हैं। इनमें अ इ उ ऋ मूल स्वर हैं और शेष इनके संमिश्रण द्वारा निर्मित हैं जैसे अ + इ = ए, अ + ए = ऐ, अ + उ = ओ, अ + ओ = औ आदि। मात्रानुसार पहिले स्वर ह्रस्व और दूसरे दीर्घ कहलाते हैं।

व्यंजन—वे वर्ण हैं जिनमें श्रावणगुण अधिक नहीं होता अर्थात् जो स्वर की अपेक्षा अल्प दूरी से सुनाई देते हैं, उदाहरणार्थ च की अपेक्षा ई अधिक दूर से सुनाई देती है; जो स्वतंत्र रूप से स्वर की सहायता के बिना नहीं बोले जा सकते; जिनके उच्चारण में जिह्वा के स्पर्श द्वारा वायु का थोड़ा बहुत अवरोध अवश्य होता है और मुखद्वार एक बार पूर्णतया बंद सा हो जाता है और खुलने पर वायुस्फोट अथवा घर्षण के साथ निस्सरित होती है।

ये क ख ग घ ङ (कवर्ग), च छ ज झ ञ (चवर्ग), ट ठ ड ढ ण (टवर्ग), त थ द ध न (तवर्ग), प फ ब भ म (पवर्ग), र ल (अंतस्थ), श ष स ह (ऊष्म) तथा क़ ख़ ग़ ज़ ड़ ढ़ फ़ अविशिष्ट वर्ण जो विदेशी शब्दों में प्रयुक्त होते हैं। इनके अतिरिक्त अनुस्वार (ं), चंद्रबिंदु (ँ) तथा विसर्ग (ः) भी व्यंजनों के ही अंतर्गत हैं, कारण कि इनका उच्चारण स्वतंत्र रूप से स्वरों की सहायता के बिना नहीं हो सकता। हाँ इतना अंतर अवश्य है कि अन्य व्यंजनों में स्वर पीछे आता है जैसे ग + अ = ग, परंतु इनमें पहिले आता है जैसे अ + ं = अं, ह + ँ = हँ, द + उ + ः = दुः। अतएव अं अः भी व्यंजन हैं। इसके अतिरिक्त य तथा व दो व्यंजन ऐसे हैं जो व्यंजन तथा स्वर दोनों के मध्य में हैं कारण कि व, उ की जगह और य, ई की जगह प्रयुक्त होता है जैसे गया में य, ई का काम कर रहा है, क्योंकि अधिकतर 'गई' ही लिखा जाता है। अतः ये अर्द्धस्वर हैं; परंतु क्योंकि इनका झुकाव अधिकतर व्यंजनों की ओर है, ये अधिकतर व्यंजन की भाँति ही प्रयुक्त होते हैं, अतः इनकी गणना व्यंजनों के अंतर्गत ही की जाती है।

(२) *उच्चारणस्थान के अनुसार*—वर्णों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

वर्ग	*स्थान (भाषणावयव)*	*वर्ण*
(क) काकल्य	काकल	ह तथा विसर्ग (ः)
(ख) जिह्वामूलीय	जिह्वामूल तथा कंठ का पिछला भाग	क़ ख़ ग़
(ग) कंठ	(अ) कंठ	अ आ
	(आ) कंठ, काग तथा नासिका	ङ, ं, ँ
	(इ) कंठ तथा जिह्वा का पिछला भाग	क ख ग घ

वर्ग	स्थान (भाषणावयव)	वर्ण
(घ) कंठतालव्य	कंठ तथा तालु	ए ऐ
(ङ) कंठोष्ठ्य		ओ औ
(च) मूर्धन्य	(अ) मूर्धा तथा जिह्वा की उल्टी हुई नोक	ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़
	(आ) मूर्धा तथा जिह्वानीक	ऋ, ष
(छ) तालव्य	कठोर तालु तथा जिह्वोपाग्र	इ ई च छ ज झ ञ, य, श
(ज) वर्त्स्य	वर्त्स तथा जिह्वानीक	न ल र स ज
(झ) दंत्य	ऊपर नीचे के दाँतों की पंक्ति का भीतरी भाग तथा जिह्वानीक	त थ द ध
(ञ) दंतोष्ठ्य	ऊपर के दाँत तथा नीचे के ओष्ठ	व फ़
(ट) ओष्ठ्य	दोनों ओष्ठ	उ ऊ प फ ब भ म

नोट—स्वरों के उच्चारण में सर्वप्रमुख भाषणावयव जिह्वा है, अतः उच्चारण के समय जीभ की अवस्था के अनुसार स्वरों के अग्र, मध्य तथा पश्च तीन भाग किए गए हैं; जो अधिक मान्य हैं। जिन स्वरों के उच्चारण में जीभ का अग्र भाग सबसे ऊँचा होता है, उन्हें अग्र कहते हैं। इ, ई, ए, ऐ तथा ऋ अग्र स्वर हैं। जिन स्वरों के उच्चारण में जीभ का मध्य भाग सबसे ऊँचा होता है, उन्हें मध्य स्वर कहते हैं। 'अ' मध्य स्वर है। जिन स्वरों के उच्चारण में जीभ का पिछला भाग सबसे ऊँचा रहता है, उन्हें पश्च स्वर कहते हैं। उ, ऊ, आ, ओ, औ, पश्च स्वर हैं।

(२) *प्रयत्नानुसार*—प्रयत्न दो प्रकार का होता है,

आभ्यंतर तथा बाह्य। मुख के भीतर के भाषणावयव जैसे जीभ आभ्यंतर अवयव और मुख के प्रारंभ होने से पूर्व के जैसे स्वरयंत्री बाह्य अवयव कहलाते हैं। भाषणावयवों द्वारा वायु का अवरोध-निरवरोध ही प्रयत्न कहलाता है। वह प्रयत्न जो आभ्यंतर अवयवों द्वारा होता है, आभ्यंतर प्रयत्न और जो बाह्य अवयवों द्वारा होता है, वह बाह्य प्रयत्न कहलाता है। अतएव वर्गीकरण दो प्रकार से हो सकता है, आभ्यंतर प्रयत्नानुसार तथा बाह्य प्रयत्नानुसार।

(क) आभ्यंतर प्रयत्नानुसार (मुखद्वार खुला या बंद रहने की दृष्टि से)—

स्वर—स्वरों के उच्चारण में वायु का बहिर्निस्सरण निरवरोध बिना किसी प्रकार के स्पर्श अथवा घर्षण के होता है और मुखद्वार सदैव खुला रहता है, किंतु उसके अवकाश का आकार जिह्वा की स्थिति में परिर्तन होने के अनुसार कम अधिक होता रहता है। इस परिवर्तन अर्थात् मुखद्वार के कम अधिक खुलने के अनुसार स्वरों के संवृत, विवृत, ईषद्विवृत तथा ईषत्संवृत चार भेद किए गए हैं—

(१) संवृत—जब मुखद्वार बहुत सकरा हो जाता है और जिह्वा बिना किसी प्रकार के स्पर्श अथवा घर्षण के यथासंभव ऊँची उठ जाती है—जैसे इ ई उ ऊ के उच्चारण में।

(२) विवृत—जब मुखद्वार पूर्णतया खुला रहता है और जिह्वा यथासंभव नीची रहती है—जैसे आ के उच्चारण में।

(३) इषत् संवृत—जब मुखद्वार अधसकरा होता है और जिह्वा उच्च मध्य अवस्था में रहती है जैसे 'ए' तथा शब्दांश के मध्य में आने-वाले 'अ' के उच्चारण में।

(४) ईषद्विवृत—जब मुखद्वार अधखुला होता है और

जिह्वा निम्नमध्य अवस्था में रहती है जैसे अ, ऐ, ओ, औ के उच्चारण में।

नोट—प्राचीन काल में 'अ' ईषत्-संवृत माना जाता था, परंतु अब ईषद्विवृत माना जाता है।

व्यंजन—व्यंजनों के उच्चारण में मुखद्वार जिह्वा आदि भाषणावयवों के पूर्ण अपूर्ण स्पर्श द्वारा एक बार पूर्णतया बंद होकर वायु का निरोध होता है और स्पर्श दूर होने पर वायु स्फोट, घर्षण आदि के साथ बाहर निकलती है। इस वायुनिरोध तथा बहिर्निस्सरण की रीति के अनुसार व्यंजनों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है—

(५) स्पर्शी—भाषणावयवों के पूर्ण स्पर्श द्वारा मुखद्वार पूर्णतः बंद हो जाता है और वायु बिल्कुल रुक जाती है और फिर स्पर्श दूर होने पर स्फोट के साथ बाहर निकलती है जैसे प फ ब भ, त थ द ध, ट ठ ड ढ, क ख ग घ, तथा क़ के उच्चारण में।

(६) संघर्षी—मुखद्वार इतना सकरा हो जाता है कि वायु को घर्षण के साथ निकलना पड़ता है जैसे फ़, व, स, ज़, श, ख़, ग़, ह तथा ह अर्थात् विसर्ग (:) के उच्चारण में।

(७) स्पर्श संघर्षी—मुखद्वार स्पर्श द्वारा बंद तो होता है, परंतु खुलते समय वायु घर्षण के साथ बाहर निकलती है जैसे च छ ज झ के उच्चारण में।

(८) अनुनासिक—स्वरतंत्री द्वारा श्वासनलिका के बंद होने, ओष्ठ बंद होने अथवा काग के ऊपर उठ जाने से मुखद्वार बिल्कुल बंद हो जाता है और खुलने पर वायु नासिका से अथवा कुछ अंश नासिका से और कुछ मुख से निर्गत होती है जैसे ङ, ञ, ण न, म, ँ के उच्चारण में।

(९) पार्श्विक—मुखद्वार बीच में बंद हो जाने से वायु जिह्वा के इधर उधर से निकल जाती है जैसे 'ल' के उच्चारण में।

(१०) लुंठित—जीभ लुढ़क कर तालु को छूती है जैसे 'र' के उच्चारण में।

(११) उत्क्षिप्त—जिह्वानीक उलटकर झटके के साथ तालु को छूकर हट जाती है जैसे ड़ ढ़ के उच्चारण में।

(१२) अर्द्ध स्वर—मुखद्वार सकरा तो बहुत कुछ हो जाता है और थोड़ा सा स्पर्श भी होता है, किंतु वायु के निकलने में किसी प्रकार का घर्षण नहीं होता जैसे व तथा य के उच्चारण में।

(ख) *बाह्य प्रयत्नानुसार*—बाह्य अवयव दो हैं—स्वरतंत्री तथा काकल और दोनों ही स्वरयंत्र के मुख्य अवयव हैं, अतः दोनों के प्रयत्नानुसार वर्गीकरण होता है।

(अ) *स्वरतंत्री के प्रयत्नानुसार*—श्वासप्रश्वास के समय स्वरतंत्रियाँ एक दूसरे से पृथक् रहती हैं और वायु निरवरोध बाहर आती है और वह एक झटके के साथ जिससे एक प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है, जो स्वरतंत्रियों की स्थिति के अनुसार श्वास तथा नाद दो प्रकार की होती हैं, जब स्वरतंत्रियाँ संवृत अवस्था में होती हैं तो वायु को इन्हें धक्का देकर बाहर आना पड़ता है और एक विशेष प्रकार का मधुर कंपन, नाद अथवा घोष होता है, तदनुसार वह ध्वनि कोमल, नाद अथवा सघोष कहलाती है; परंतु जब स्वरतंत्रियाँ विवृत अवस्था में रहती हैं, तो वायु को निकलने में कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता और किसी प्रकार का कंपन आदि नहीं होता, तदनुसार वह ध्वनि कठोर, श्वास अथवा अघोष कहलाती है। सघोष अघोष की सहज पहचान

यह है कि यदि बोलते समय कंठपिटक पर अँगुली लगाने से एक प्रकार का कंपन अथवा कानों में उँगली लगाने से एक प्रकार की गूँज सुनाई दे, तो वह ध्वनि अथवा वर्ण सघोष है अन्यथा अघोष। उदहारणार्थ, ग अथवा ज के उच्चारण में कंठपिटक पर कंपन और कानों पर गूँज प्रतीत होती है, अतः ये सघोष हैं, परंतु क अथवा स के उच्चारण में ऐसा नहीं होता अतः ये अघोष हैं। संपूर्ण वर्णमाला में कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग के प्रथम तथा द्वितीय वर्ण (अर्थात् क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ) तथा श ष स तो अघोष और शेष सब व्यंजन तथा स्वर सघोष हैं।

(अ) *काकल के प्रयत्नानुसार*—काकल से ह तथा विसर्ग (:) प्राणध्वनियों का उच्चारण होता है। इनमें ह प्राणध्वनि का हिंदी, उर्दू तथा अंग्रेजी में अधिक महत्व है। यह पृथक् रूप से प्रयुक्त होने के अतिरिक्त कुछ व्यंजनों के साथ मिलकर भी आता है जैसे ट्+ह = ठ तथा th इत्यादि में। जिन व्यंजनों में हकार अथवा 'ह' प्राण ध्वनि पाई जाती है, वे महाप्राण, और जिनमें नहीं पाई जाती, वे अल्पप्राण कहलाते हैं। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि स्वरों में अल्पप्राण-महाप्राण भेद नहीं होता। इसके अतिरिक्त संघर्षी तथा अर्द्धस्वर व्यंजनों में भी ये भेद नहीं पाए जाते। कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग के प्रथम तथा तृतीय वर्ण (अर्थात् क ग, च ज, ट ड, त द, प ब), र ल व (अंतःस्थ), ङ ञ ण न म (अनुनासिक) तथा ड़ वर्ण अल्पप्राण हैं और कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग के द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ण (अर्थात् ख घ, छ झ, ट ठ, थ ध, फ भ) तथा ढ़ वर्ण महाप्राण है। उक्त वर्गीकरणों को निम्नांकित चित्र द्वारा एक साथ दिखाया जा सकता है—

ध्वनियों का वर्गीकरण

अवयवीयत्नानुसार — स्थानानुसार

प्रयत्नानुसार		काकल्य	जिह्वामूलीय	कंठ्य	कंठतालव्य	कंठोष्ठ्य	मूर्धन्य	तालव्य	वर्त्स्य	दंत्य	दंतोष्ठ्य	ओष्ठ्य
स्वर	संवृत							इ	ई		उ	ऊ
	विवृत			आ								
	ईषत् संवृत		अ	ए	(कभी-कभी)							
	ईषद्विवृत				अ ऐ	ओ औ						
स्पर्शी	अल्पप्राण		क़	क ग			ट ड			त द		प ब
	महाप्राण			ख घ			ठ ढ			थ ध		फ भ
संघर्षी		ह ह (:)		ख़ ग़				श	स ज़			फ़ ब
स्पर्श-संघर्षी	अल्पप्राण							च ज				
	महाप्राण							छ झ				
अनुनासिक	अल्पप्राण			ङ			ण	ञ		न		म
	महाप्राण											
पार्श्विक	अल्पप्राण								ल			
	महाप्राण											
लुंठित	अल्पप्राण								र			
	महाप्राण											
उत्क्षिप्त	अल्पप्राण						ड़					
	महाप्राण						ढ़					
अर्द्ध स्वर								य				व

नोट—रेखांकित वर्ण अघोष और शेष सघोष हैं।

(ख) हिंदी ध्वनियों का इतिहास

खोज की विधि—एक एक वर्ण की कई कई भाषणध्वनियाँ होती हैं जिनमें उच्चारणात्मक भेद होता है, जिसको श्रोताओं के कान ग्रहण नहीं कर पाते और सबके लिये एक ही ध्वनिमात्र तथा चिह्न का प्रयोग होने लगता है। अतः प्रत्येक भाषा में भाषणध्वनियाँ तो अगणित होती हैं, परंतु ध्वनिमात्र तथा लिपिसंकेत अपेक्षाकृत बहुत कम होते हैं। लिपिचिह्नों का कम अधिक होना प्रत्येक भाषा की परिस्थिति तथा आवश्यकता पर निर्भर है। यही कारण है कि किसी भाषा में वर्ण-संख्या अधिक है और किसी में कम, उदाहरणार्थ हिंदी में ४३ व्यंजन हैं, परंतु पॉलिनेशियन में १० और आस्ट्रेलियन में ८ ही हैं। इसके अतिरिक्त कभी कभी भिन्न भिन्न भाषाओं में लिपिचिह्न एक होने पर भी उनका उच्चारण भिन्न प्रकार से होता है जैसे हिंदी तथा मराठी, अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी, इत्यादि में। अतएव किसी भाषा की ध्वनियों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये, उसके विशेषज्ञ वक्ताओं के उच्चारण का श्रवण और शास्त्रीय विवेचन करने के लिये उसके भाषावैज्ञानिक ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए, परंतु भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिये उनका इतिहास जानना नितांत आवश्यक है। उदाहरणार्थ यदि हिंदी के ध्वनिसमूह का वैज्ञानिक अध्ययन करना है तो पुरानी हिंदी, अपभ्रंश, प्राकृत आदि भाषाओं की ध्वनियों के उच्चारण का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए; यदि इटैलिक का अध्ययन करना है, तो लैटिन आदि भाषाओं के उच्चारण का ज्ञानोपार्जन करना चाहिए। इतिहास जानने की दो विधियाँ है, ज्ञात से अज्ञात की ओर अग्रसर होना अथवा अज्ञात से ज्ञात की ओर, अर्थात् जिस भाषा की ध्वनियों का इतिहास जानना है, उसकी एक-एक ध्वनि को लेकर पीछे चलना और उसकी पूर्वज भाषाओं में

उनके उच्चारण की खोज करना अथवा आदि पूर्वज भाषा की ध्वनियों का उसके अनंतर होनेवाली भाषाओं में क्रमानुसार विकास देखना। उदाहरणार्थ, यदि हिंदी ध्वनिसमूह का इतिहास देखना है, तो प्रथम विधि से हिंदी, पुरानी हिंदी, अपभ्रंश, प्राकृत, पाली, संस्कृत, वैदिक तथा योरोपीय भाषाओं के उच्चारण का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे जैसे हिंदी में 'ऐ' 'औ', अपभ्रंश प्राकृत तथा पाली में 'ए' 'ओ', संस्कृत में 'ऐ', 'औ', वैदिक में 'अइ' 'अउ' और मूल योरोपीय भाषा में 'आइ' 'आउ' थे; और दूसरी विधि से मूल योरोपीय, वैदिक, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, पुरानी हिंदी तथा हिंदी का उच्चारणात्मक विकासक्रम ज्ञात करेंगे जैसे भारोपीय 'l̥' का उच्चारण, वैदिक में 'ऋ', संस्कृत में संदिग्ध, पाली में 'अ', 'इ' 'उ' की भाँति और हिंदी में 'रि' की भाँति हो गया है। प्रायः विद्वानों ने द्वितीय विधि का अनुसरण किया है, परंतु यदि दोनों विधियों द्वारा किसी भाषा के उच्चारण का इतिहास निश्चित किया जाय, तो अधिक अच्छा है। किसी प्राचीन भाषा के उच्चारण के ज्ञानोपार्जन करने के साधन निम्नलिखित हैं—

(१) अविच्छिन्न उच्चारणपरंपरा—उदाहरणार्थ, वैदिकध्वनियों के उच्चारण का ज्ञानोपार्जन करने के लिये वैदिकों तथा संस्कृतज्ञों की सहस्रों वर्षों से चली आनेवाली अविच्छिन्न उच्चारणपरंपरा का अध्ययन करना चाहिए।

(२) प्राचीन व्याकरणिक ग्रंथों द्वारा किया हुआ ध्वनिविवेचन—उदाहरणार्थ, वैदिक के उच्चारण के लिये ब्राह्मण, प्रातिशाख्य, अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि का और लैटिन के लिये डायोनिसियस थ्रेक्स, व्हारो, अलसगेलियस आदि के ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए।

(३) व्यक्तिवाचक नामों का प्रत्यक्षीकरण—जैसे मध्यकालीन वैदिक का उच्चारण निश्चित करने के लिये स्यामी, तिब्बती, बर्मी आदि भाषा के लेखकों द्वारा प्रयुक्त 'चंद्रगुप्त' आदि संस्कृत शब्दों का प्रत्यक्षीकरण करना चाहिए।

(४) प्राचीन साहित्य में दिए हुए पशुपक्षियों के अव्यक्तानुकरण-मूलक शब्द तथा श्लेषादि।

(५) शिलालेखों का तुलनात्मक अध्ययन।

(६) उस भाषा के होनेवाले काल तथा ध्वनिपरिवर्तन में निजी तथा उनके आधार पर निश्चित किए हुए ध्वनिनियम।

(७) आधुनिक भाषाओं का प्रत्यक्ष उच्चारण—जैसे ग्रीक, इटैलिक, स्पेनिश आदि भाषाओं के उच्चारण के आधार पर लैटिन का उच्चारण जान सकते हैं।

(८) सजातीय भाषाओं के उच्चारण का तुलनात्मक अध्ययन-उदाहरणार्थ वैदिक ध्वनियों के विकासक्रम में अवेस्ता, ग्रीक, लैटिन आदि संस्कृत की सजातीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से विशेष सहायता मिलती है।

इतिहास—कई एक विद्वानों ने उक्त विधि से हिंदी वर्णमाला का इतिहास निश्चत किया है जिसकी संक्षिप्त रूपरेखा निम्नलिखित है।

भारोपीय ध्वनिसमूह

स्वर—ă (अ), ə̄ (अ), ā (आ) ĭ (इ), ī (ई), ŭ (उ), ū (ऊ) ĕ (ए)*, ē (ए), ŏ (ओ), ō (औ)।

* ĕ तथा ē दोनों समानाक्षर थे, जिनमें ĕ ह्रस्व और ē दीर्घ था। ĕ को हम नागरी लिपि में ए (अर्थात् ह्रस्व ऐ) की भाँति अंकित कर सकते हैं।

संयुक्त स्वर—ai (अइ), āi (आइ), ei (एइ), ēi (एइ), oi (ओइ), ōi (ओइ), au (अउ), āu (आउ), eu (एउ); ēu (एउ), ou (ओउ), ōu (ओउ)।

व्यंजन—कण्ठ्य*—q, qh, g, gh,

मध्यकंठ्य*—k, kh, g, gh, n (ङ)।

†तालव्य—k (च), kh (छ), g (ज), gh (झ), n̄ (ञ)।

दंत्य—t (त), th (थ), d (द), dh (ध), n (न)

ओष्ठ्य—p (प), ph (फ), b (ब), bh (भ), m (म)।

द्रव वर्ण—r (र), l (ल)

अर्द्ध स्वर—i (इ अथवा य),

u (उ अथवा व)

‡ऊष्म ध्वनि—s (स), z (ज); j (य), v (व्ह) γ(ग), ρ (थ) ᵗₐ (द)

m (म), n (न),

स्वतंत्र वर्ण—ṛ (ऱ) l̥ (ऌ)

---

*कंठ्य तथा मध्य-कंठ्य दोनों एक नहीं थे। इनमें परस्पर कुछ भेद था।

† Maxmuller, Science of Language'. Vol II P. 170.

ये संस्कृत के तालव्य घर्ष वर्णों से भिन्न थे।

‡श्यामसुंदरदास, 'भाषाविज्ञान' पृष्ठ ११७।

नोट—m (म), n (न), n (ङ), n (ञ) अनुनासिक वर्ण थे; परंतु चूँकि इनमें शुद्ध अनुनासिक एक भी नहीं है, अतः यह पृथक् नहीं दिखाए गए हैं।

वैदिक ध्वनिसमूह

स्वर—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ए ओ तथा दो संयुक्त स्वर, ऐ (अइ), औ (अउ)

व्यंजन—कंठ्य—क ख ग घ ङ

तालव्य—च छ ज झ ञ

मूर्धन्य—ट ठ ड ढ ळ ळ्ह ण

दंत्य—त थ द ध न

ओष्ठ्य—प फ ब भ म

अंतस्थ—र ल

ऊष्म—श ष स ह

अर्द्ध स्वर—इ् (य्) उ् (व्)

अनुनासिक—अनुस्वार (ं)

अघोष ऊष्म—विसर्ग (:), जिह्वामूलीय (◡◡)*, उपध्मानीय (⌒⌒)

भेद—(अ) लोप—मूल योरोपीय भाषा के ĕ, ŏ, ə, ĕ, ŏ स्वर, ei, oi, eu, ou संयुक्त स्वर, m n आदि स्वनंत वर्ण, तथा 'z' सघोष ऊष्म का वैदिक भाषा में लोप हो गया।

---

* ये दोनों संस्कृत में ⌒ चिह्न द्वारा प्रकट किए जाते हैं। ये दोनों ही विसर्जनीय (विसर्ग) के भेद हैं। इनमें अंतर केवल इतना है कि 'म' के पूर्व आनेवाला विसर्ग उपध्मानीय और 'क' के पूर्व आनेवाला जिह्वामूलीय कहलाता है।

(आ) वृद्धि—ट ठ ड ढ ळ ळ्ह ण ष मूर्धन्य व्यंजनों का वैदिक भाषा में अर्जन हुआ।

(इ) परिवर्तन—ह्रस्व ĕ ŏ की जगह ă (अ); दीर्घ ē ō की जगह ā (आ); ə (अ) की जगह इ; संयुक्त स्वर ēi, oi, ऋ की जगह ē (ए); ĕu, ŏu की जगह o (ओ); āi, ėi, ōi की जगह (अइ—ऐ); āu, ēu ou की जगह au (अउ—औ); r̥ की जगह (इर, उर;) l̥ की जगह r̥ (ऋ) आने लगे। जब ऋ के पश्चात् अनुनासिक आता है, तो ऋ का ॠ हो जाता है इसके अतिरिक्त अनेक कंठ्य वर्ण तालव्य हो गए और तालव्य स्पर्श ऊष्म 'श' हो गया।

संस्कृत ध्वनिसमूह

स्वर—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ए ऐ ओ औ

व्यंजन—कंठ्य—क ख ग घ ङ

तालव्य—च छ ज झ ञ

मूर्धन्य—ट ठ ड ढ ण

दंत्य—त थ द ध न

ओष्ठ्य—प फ ब भ म

अंतस्थ—य र ल व

ऊष्म—श ष स ह

अर्द्ध स्वर—य, व

अनुनासिक—अनुस्वार (ं)

अघोष ऊष्म—विसर्ग (:) जिह्वामूलीय (ᳵ)

तथा उपध्मानीय (ᳶ)

भेद—(अ) लोप—संस्कृतकाल में वैदिक ळ, ळ्ह, का लोप हो गया और ॠ, ॠ तथा ॡ का प्रयोग हो गया।

(आ) *परिवर्तन*—अ का उच्चारण विवृत से संवृत होने लगा, ऋ, ॠ, लृ का उच्चारण, इनके व्यवहार में कम आने के कारण मूल स्वर समान न रहकर संदिग्ध हो गया; आइ तथा आउ निश्चित रूप से अइ तथा अउ और अइ तथा अउ ऐ तथा औ हो गए; इ उ क्रमशः .य तथा य और .व तथा व हो गए; और अनुस्वार पिछले स्वर में मिलकर, वर्धक होकर अनुनासिक स्वर की भाँति प्रयुक्त होने लगा।

पाली ध्वनिसमूह

स्वर—अ आ इ ई उ ऊ ए ऍ ऐ ऑ ओ

व्यंजन—संस्कृतः श, ष जिह्वामूलीय (⌢) उपध्मानीय (⌢) तथा विसर्ग (:) का पाली में अभाव है, परंतु ड़ ढ़ संस्कृत से अधिक पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त शेष सब व्यंजन संस्कृत की भाँति हैं।

भेद—(अ) लोप—संस्कृत के ऋ ॠ लृ ऐ औ स्वर तथा श ष विसर्ग (:) व्यंजन पाली में लुप्त हो गए। ऋ की जगह अ इ उ का प्रयोग होने लगा जैसे कि ऋक्ष से अच्छ, ऋण से इण, ऋषभ से उसभ आदि उदाहरणों से प्रकट है। इसके अतिरिक्त ऐ औ की जगह ए ओ का जैसे मैत्री से मेत्री, यौवन से जोव्वण आदि में श ष की जगह स का और विसर्ग की जगह ओ का प्रयोग होने लगा। पदांत में आनेवाला। विसर्ग या तो लुप्त हो जाता था या पूर्ववर्ती अ से मिलकर ओ में परिवर्तित हो जाता था।

(आ) *वृद्धि*—वैदिक काल की किसी किसी विभाषा में पाए जानेवाले ह्रस्व ऍ तथा ऑ पाली में फिर प्रयुक्त होने लगे अर्थात् ए ओ का उच्चारण ह्रस्व हो गया जैसे एवम् से व्वम्, स्रोतस से सॉत्त। ड़ ढ़ का अर्जन भी इसी काल में हुआ।

(इ) परिवर्तन—वर्त्स्य वर्ण अंतर्दंत्य और तालव्य स्पर्श वर्ण तथा वर्त्स्य-तालव्य स्पर्श संघर्षी हो गए।

प्राकृत ध्वनिसमूह

प्राकृत ध्वनिसमूह पाली के सदृश है, परंतु क्योंकि प्राकृत की शौरसेनी, मागधी आदि कई उपभाषाएँ हैं अतः उनके कुछ भेद हैं, उदाहरणार्थ मागधी के अतिरिक्त अन्य किसी प्राकृत में 'य' नहीं पाया जाता, य की जगह ज का प्रयोग होता है; तथा शौरसेनी में न का भी अभाव है, न का काम ण से लिया जाता है। इसके अतिरिक्त मागधी में स की जगह श पाया जाता है।

अपभ्रंश ध्वनिसमूह

अपभ्रंश ध्वनिसमूह प्राकृत के सदृश है। केवल उसमें महाप्राण न्ह तथा म्ह की वृद्धि हो गई है।

पुरानी हिंदी का ध्वनिसमूह

पुरानी हिन्दी की वर्णमाला अपभ्रंश के सदृश है, केवल उसमें संस्कृत काल के ऐ औ का पुनः अर्जन हो गया तथा विदेशी भाषाओं से आनेवाले व्यंजन तद्भव हो गए।

आधुनिक हिंदी का ध्वनिसमूह

स्वर—अ आ ऑ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ।

व्यंजन—कंठ्य—क ख ग घ ङ

तालव्य—च छ ज झ ञ

मूर्धन्य—ट ठ ड ढ ण

दंत्य—त थ द ध न न्ह

ओष्ठ्य—प फ ब भ म म्ह

अंतस्थ—य र ल व

ऊष्म—श स ह

अविशिष्ट—क़ ख़ ग़ ज़ फ़ ढ़ ड़

अनुनासिक—चन्द्रबिंदु (ँ), अनुस्वार (ं)

उरस्य—विसर्ग (:) अथवा (ह)।

भेद—(अ) लोप तथा परिवर्तन—ऋ ष ञ लुप्तप्राय हो गए। इनका प्रयोग केवल संस्कृत तत्सम् शब्दों में ही रह गया और वह भी परिवर्तित उच्चारण के साथ। ऋ का उच्चारण रि की भाँति जैसे ऋषी (रिशी), ऋतु (रितु) आदि में; ष का श की भाँति जैसे कृष्ण (किशन), कष्ट (कश्ट) आदि में और ञ का न् अथवा अनुस्वार (ं) की भाँति जैसे पातञ्जलि (पातंजलि), चञ्चल (चंचल अथवा चन्चल) आदि में होने लगा। अतः इनका हिंदी में अभाव ही है। इनके अतिरिक्त हलंत् ण् भी न् अथवा अनुस्वार की भाँति प्रयुक्त होने लगा, जैसे पण्डित (पन्डित अथवा पंडित), दण्ड (दन्ड, दंड) आदि में।

(आ) वृद्धि—ऑ अँग्रेजी तत्सम् शब्दों में तथा क़ ख़ ग़ ज़ फ़ अरबी, फारसी, तत्सम् शब्दों में व्यवहृत होने लगे। अतएव योरोपीय ज़ पुनः व्यवहृत होने लगा। इसके अतिरिक्त संस्कृत विसर्ग (:) भी तत्सम् शब्दों में प्रयुक्त होता है। ॲ ऍ ऑ भी लिखने में तो नहीं, परंतु भाषण तथा कुछ बोलियों में प्रयुक्त होते हैं।

ध्वनिविकार और उनके कारण

ध्वनिविकार बाह्य तथा आंतरिक दो प्रकार के कारणों से होते हैं : वैयक्तिक विभिन्नता, कालभेद, स्थानभेद, विजातीय संपर्क, राजनैतिक परिस्थिति, धार्मिक अवस्था, सामाजिक संस्कृति आदि

बाह्य और श्रुति, छंदमात्रा, स्वरबल उच्चारणात्मक शीघ्रता अथवा असावधानी, प्रमाद, अशक्ति, अज्ञान, उपमान अथवा मिथ्या सादृश्य, मुखसुख अथवा सुविधा आदि आंतरिक कारण हैं। अधिकतर ध्वनिविकार आंतरिक कारणों से होते हैं। यहाँ इन आंतरिक कारणों का ही वर्णन किया जायगा।

ध्वनिविकार तथा कारण—(१) *आगम*—किसी शब्द के आदि, मध्य अथवा अंत में किसी वर्ण अथवा अक्षर के बढ़ जाने को आगम कहते हैं। प्रत्येक प्रकार के आगम में स्वर, व्यंजन अथवा अक्षर का आगम होता है।

(अ) आदि आगम—(क) स्वरागम—जैसे लोप से अलोप; शंका से अशंका; बारना से अबारना; फ़ा० گر (गर) से उ० اگر (अगर); फ़ा० بتر (बतर) से ابتر (अबतर); लै० schola से फ़्रें० ecole; ज० scheuen से अं० eschew; अं० specially से especially; अं० squire से esquire इत्यादि तथा उच्चारण में स्थान से अस्थान; स्टांप से इस्टांप; इत्यादि।

(ख) व्यंजनागम—जैसे ओठ (सं० ओष्ठ) से होंठ; सं० अस्थि से हड्डी; फ़ा० ارنج (आरंज) से نارنج (नारंज); अं० Amazon से फ़ा० همازن (हमाज़न); इत्यादि।

(ग) अक्षरागम—जैसे स्फोट से विस्फोट; फ़ा० هنوز (हनोज) से تاهنوز (ता हनोज); फ़ा० محروم (महरूम, से نامحروم) (नामहरूम); इत्यादि।

(आ) मध्यागम—(क) स्वरागम; जैसे पूर्व से पूरब, पर्व से परब; स्वाद से सवाद; उर्द से उरद; दूज से दूइज; आपस से आपुस; समझ से समुझ; दुबधा से दुबिधा; ठिठरना से ठिठुरना; मटका से मटुका, टिकली से टिकुली; अ० عمر (उम्र) से हि० उमर, अ० حکم (हुक्म) से हि० हुकुम, ए० से० blod से अं० blood आइस० bon से अं० boon; अं० marsh से marish फ़ा०

الچی (इलाची) से الیچی (इलायची); फ़ा० دم (दोम) से دویم (दोयम), फ़ा० منار (मनार) से مینار (मीनार); फ़ा० جاگیر (जागीर) से جائگیر (जायगीर); अ० درم (दिरम) से درہم (दिरहम); इत्यादि ।

(ख) *व्यंजनागम*—जैसे छूना से छूवना, टोना से टोवना, आलसी से आलकसी, तक से तलक, जेल से जेहल, टालटूल से टालमटूल, डेढ़ा से डेवढ़ा, सिख से सिक्ख, खुखा से खुक्खा, रख से रक्ख: अ० تعداد (तादाद) से हि० बो० (तायदाद) सं० वानर से म० वाँदर: समुद्र से फ़ा० سمندر (समुन्दर): अं० guinea (गिनी) से हिं०; गिन्नी: अं० summon (समन) से हि० सम्मन अं० dozen से हिं० दर्जन; फ़ा० نم (नम) से نرم (नर्म) अथवा हिं० नरम; फ़ा० حد (हद) से हि० हद्द; अ० لاش (लाश) से बो० ल्हाश; फ्रें० bagage से अं० baggage; फ्रें० avantage से अं० advantage; ए० से० cild से अं० child; प्रा० फ्रें० cisel से अं० chisel; फ्रें० batard से अं० basterd; अं० herdman से herdsman; अं० landman से landsman; म० अं ile से अं० isle अं० panel से pannel; फ़ा० مہتم (मुहतम) से مہتمم (मुहतमिम); फ़ा० چاپہ (चापा) से چھاپہ (छापा) अ० ردی (रदी) से उ० رَدّی (रद्दी); मलय० एमक से अ० احمق (अहमक); इत्यादि ।

(ग) अक्षरागम—फ़ा० شب‌قدر (शबेकद्र) से شب‌القدر (शबुलकद्र); फा० غریب‌نواز (ग़रीबनिवाज़) से غریب‌النواز (ग़रीबुलनिवाज़); इत्यादि ।

(ङ) *अंत्यागम*—(क) स्वरागम—जैसे स्वप्न से सुपना, सुध से सुधि, पिय (सं० प्रिय) से पिया, आप से आपु, काह से काहे अथवा कहि, सोच से सोचु, कुल्ला से कुल्ली, करतूत से करतूति, कित से किते, गरु से गरुआ: जो से जोई अथवा जोऊ, वाँह से

बाहु, सूस से सूसि, दुधार से दुधारु, बिन से बिनु अथवा बिनि, दूह से दूहा, तेता से तेतो, तेरा से तेरो, मेरा से मेरो, खंभ (सं० स्तंभ) से खंभा, इतन से इतनो, हिं० मूंग से मूंगी; फ़ा० مرغ (मुर्ग) से मुर्गा; फ़ा० گونگ पं (गूंग) से गूंगा; तु० लफंग से लफंगा; ज० agon से अं० agony, फ्रें० bas से अं० base; फ्रें० certificat से अं० certificate; फ्रें० brut से अं० brute; फ्रें० degre से अं० degree; अं० marl से marle; फ़ा سلامت (सलामत) से سلامتی (सलामती), फ़ा० خراد (खराद) से خرادی (खराटी), फ़ा० زیادت (ज्यादत) से زیادتی (ज्यादती): अं० غرق (ग़र्क़) से० غرقا (ग़र्क़ा), फ़ा० دوا (दवा) से उ० तथा हिं० دوائی (दवाई), इत्यादि।

(ख) व्यंजनागम—जैसे चील से चील्ह, कल से कल्ह अथवा काल्ह, भौं से भौंह, कंप से कंपन, जिन सों जिन्ह, तनि से तनिक, कछु से कछुक अमोल से अमोलक, अ० امرا (उमरा) से हिं० उमराव, ए० से० bil से अं० bill, ए० से० dros से अं० dross, ए० से० coc से अं० cock, फ्रें० cautio से अ० coution, स्वी० hurra से अं hurrah, अं० ha से hat, अं० magi से magic, फ़ा० بوس (बोस) से उ० بوسہ (बोसा), फ़ा० بم (बम) से अं० bomb; फ़ा० دهلی (देहली) से دهلیز (देहलीज)। अं० طلسم (तिलस्म) से अं० tajisman फ़ा० سوز (सोज) से سوزش (सोज़िश), फ़ा० رنگ (रंग) से फ़ा० तथा हिं० رنگت (रंगत), फ़ा० کنیز (कनीज) से کنیزک (कनीज़क), फ़ा० پروا (परवा से پرواہ परवाह) अ० عمو (अमू) से عموں (अमू), फ़ा० دیہہ (देहा) से دیہات (देहात), इत्यादि।

अक्षरागम—जैसे वधू से वधूटी, डफ से डफली, आँक से आकड़ा, सिंदे (शिंदे) से सिंधिया, आँख से आँखड़ी, फ़ा० البت

(अलवत) से البتہ (अलबत्तः) फ़ा० تابع (ताबे) से تابعدار (ताबेदार), फ़ा० رنگرر (रंगरर) से رنگریز (रंगरेज़) इत्यादि।

कारण—(१) मुखसुख अथवा सुविधा—उच्चारण में प्रत्येक व्यक्ति सुविधा चाहता है। उसकी यही इच्छा होती है कि उच्चारण में कम से कम प्रयत्न करना पड़े साथ ही श्रोता को भी सुविधा हो। इस सुविधा के कारण कभी कभी श्रुति[1] इतनी प्रबल हो जाती है कि वह एक स्वतंत्र ध्वनि अथवा वर्ण ही बन जाती है, जैसे धर्म से धरम, कर्ण से करन इत्यादि में। कभी कभी इन श्रुतियों के प्रभाव से दूसरी ध्वनियाँ भी प्रभावित हो जाती हैं जैसे प्रसाद से پرشاد (परशाद), वर्ष से बरस, यत्न से जतन, इत्यादि में।

किसी किसी शब्द में कुछ ऐसे संयुक्त व्यंजन आते हैं कि उनके उच्चारण में असुविधा प्रतीत होती है, जिसके निवारणार्थ प्रथम वर्ण के पूर्व अथवा पश्चात् 'इ' 'अ' आदि स्वर अथवा 'ह' आदि व्यंजन अर्थात् पूर्व अथवा परश्रुति जोड़ दी जाती है, जैसे अं० plato से फ़ा० افلاطون (अफ़लातून), अ० ستون (स्तून) से फ़ा० استون (उस्तून), सं० स्त्री से इस्त्री (उच्चरित रूप), ओष्ठ से होठ, st, से प्रारंभ होनेवाले अंग्रेजी शब्द जैसे stool, station आदि जो कि क्रमशः इस्टूल, इस्टेशन आदि की भाँति, उच्चरित होते हैं। इनमें पूर्वश्रुति बढ़ गई है। पं० सटूल, स्टेशन आदि पर श्रुति है।

१ श्रुति—प्रत्येक ध्वनि का उच्चारण स्थानविशेष से होता है और भाषणावयवविशेष को एक विशेष प्रकार का प्रयत्न करना पड़ता है। भाषण में ध्वनियाँ स्वतंत्ररूप से उच्चरित नहीं होतीं, अपितु वे परस्पर मिलकर उच्चरित होती हैं। अतः जब एक के पश्चात् दूसरी ध्वनि का उच्चारण किया जाता है, तो उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना पड़ता है और उनके बीच एक परिवर्तनध्वनि निकला करती है जिसे श्रुति कहते हैं। इसका स्पष्ट अनुभव करना कठिन है, अतः इसे संक्रामक-ध्वनि भी कहते हैं।

(२) उपमान—प्रायः एक परिवर्तन के सादृश्य पर अन्य अनेक परिवर्तन होते हैं, जैसे दुःख से दुक्ख के सादृश्य पर रुख से रुक्ख, भूख से भुक्खा, सूख से सुक्खा, सुख से सुक्ख, लिख से लिक्ख (लिक्खाड़), इत्यादि में विसर्ग न होने पर 'क्' का आगम हो गया है। बेला को बेली, केला को केली आदि कहना भी चमेली के सादृश्य पर है।

(३) छंद तथा मात्रा—मात्रिक छंदों में मात्रा की पूर्ति के निमित्त प्रायः वर्णागम होता है। रसानुसार छंद और छंदानुसार शब्द तथा मात्राएँ होती हैं। ग्रीक, संस्कृत, प्राकृत इत्यादि में तथा कभी कभी हिंदी में भी छंद-भेदानुसार मात्रापूर्ति की जाती है उदाहरणार्थ, 'भये प्रकट कृपाला, दीनदयाला, कौशल्या हितकारी' (रामायण) में कृपाला तथा दयाला में 'आ' का आगम और 'कुट्टिल केस सुदेस पोह परिचियत पिक्क सद' (पृथ्वीराज रासो) में कुट्टिल में 'ट' का आगम इसी प्रकार हुआ है।

(४) अभ्यास—कभी कभी अभ्यासगत पटुता के कारण भी आगम होता है। किसी शब्द में कठिन ध्वनि का आगम किसी प्रकार की सुविधा के कारण नहीं हो सकता, इसका एकमात्र कारण अभ्यासजनित पटुता है। यथा प्राकृत में सेव्वा, एक्कं, निहित्तो आदि में समीकरण का कारण अभ्यासगत है। घूमी से घुम्मा हो जाना भी इसी प्रकार का उदाहरण है।

(२) लोप—आगम का बिलकुल उल्टा है। आगम शब्द में किसी वर्ण अथवा अक्षर का आगम होता है। लोप में किसी वर्ण अथवा अक्षर का लोप होता है। जिस प्रकार स्वर, व्यंजन अथवा अक्षर का आगम आदि, अंत तथा मध्य में होता है उसी प्रकार स्वर, व्यंजन, अक्षर तीनों का लोप भी आदि, अंत, मध्य तीनों स्थानों में होता है।

(अ) आदिलोप—(क) स्वरलोप—जैसे अपूप से पूप, अ०

احاطہ (अहाता) से फ़ा० तथा हिं० حاطہ (हाता), असवार से सवार, अनोखा से नोखा, अनाज से नाज, अभ्यर्ण से भिड़ना, लै० anigma से अं० enigma अं० amuck से muck, ए० से० eart से० अं० art फ़ा० افسانہ (अफ़साना) से فسانہ (फ़साना) अं० امیر (अमीर) से میر (मीर) फा० افزا (अफ़ज़ा से) فزا (फ़ज़ा), अ० اطاعت (इताअत) से طاعت (ताअत), इत्यादि।

(ख) व्यंजनलोप—जैसे खिंचना से इँचना, खेंचना से ऐंचना, स्थान से थान, स्थल से थल, स्कंध से कंध, स्थूल से थूल स्फूर्ति से फुर्ती, स्थाली से थाली, श्मसान से मसान, सं० शुष्क से प्रा० फा० उस्क, अवे० हुंजुमन से फ़ा० अंजुमन, अं० hospital से हि० अस्पताल, ए० से० gif से अं० if. अं० whoop से hoop, अं० lingot. से ingot. अं० llama से lama फ़ा० پنہاں (पिनहां) से نہاں (निहां), फा० ستارا (सितारा) से تارا (तारा), इत्यादि।

(ग) अक्षरलोप—जैसे अम्मां से माँ, शहतूत से तूत, त्रिशूल से शूल, बुलबुला से बुल्ला, अं० Refiner से finer, अं० defence से fence, फ़ा० درمیاں (दरम्यां) से میاں (म्यां), फा० ابریشم (अबरेशम) से ریشم (रेशम), फ़ा० اندروں (अंदरूँ) से دروں (दरूँ) इत्यादि।

(आ) मध्यलोप—(क) स्वर-लोप—जैसे और से अरु, तुरुप से तुरप, तुरुक से तुरक, (तुर्क) तेरूस से तेरस, अरथी से अर्थी, जलना गर्दन आदि में ल तथा र के उच्चारण में 'अ' लुप्त है, अं० do off से doff, अं० do on से don, अं० do up से dup. पुर्त० doubo से अं० dodo. ए० से० fearn, से अं० fern. अं० heron से hern, अं० hinderance से hindrance, अं० storey से story, अं० hoemorrage से hemorrhage,

फ्रें० drapier से अं० draper, फा० شاباش (शाबाश) से شابش (शाबश), फ़ा० خشخاش (खशख्वाश) से خشخش (खशखश), फ़ा० بیروں (बेरूँ) से بروں (बरूँ), फ़ा० پائمرد (पायमर्द) से پامرد (पामर्द) इत्यादि।

(ख) *व्यंजनलोप*—जैसे श्राप से शाप, बुद्धि से बुधि, कोकिल से कोइल, सर्व से सब, खर्जूर से खजूर, निष्ठुर से निठूर, उद्भारण से उभारना, उपवास से उपास, गुष्ठ से गुठली, तल्ला से तल, भूमिहार से भुइँहार, यह ही से यही, फाल्गुन से फागुन, प्रिय से पिय, कार्तिक से कातिक, द्वीप, से दीप मजदूरी से मजूरी, तदनंतर से तदंतर, शर्करा से शकर, प्रह्लाद से पहलाद, डाकिन से डाइन, हरिश्चंद्र से हरिचंद, अलहदी से अहदी, ननंद से नंद, कायस्थ से कायथ, द्युति से दुति, क्रोश से कोस, अं० cark से हि० काग अं० orderly से हि० अर्दली, अं० puncture से हि० पंचर, अं० guard से हि० गाड, अं० haulm से hulm, तु० Agha से अं० Aga, अं० partboil से parboil, प्रा० फ्रें० capdet से अं० caact, स्पे० guerrilla से अं० guarilla, अं० race oon से racoon, अं० دکان (दुकान) से फा० دکان (दुकान), फ़ा० شادباش (शादबाश) से شاباش (शाबाश), आ० سرتاپا (सरतापा) से سراپا (सरापा), फ़ा० چہار (चहार) से چار (चार), फ़ा० چبوترہ (चबूतरा) से چوترہ (चौतरा) अं० بدتر (बदतर) से بتر (बतर) इत्यादि।

(ग) *अक्षरलोप*—जैसे प्रातव्य से प्राप्य, शष्पपिंजर से शष्पिंजर, सं० वितस्ति से हि० बिता, सं० उपाध्याय से हि० पाधा इत्यादि।

(ङ) *अंत्यलोप*—(क) स्वरलोप जैसे दूर्वा से दूब, तले से तल, कहाँ से कहँ गंगा से फ़ा० گنگ (गंग), नीचे से नीच, समीपे से समीप, पति से पत, टंकशाला से टकशाल, परीक्षा से

परन्तु, ह्रस्व आ से ह्रस्व अ फ्रें० affaire, से affair फ्रें० cabale से अं० cabal फ्रें० balle से अं० ball, फ्रें bombe से अं० bomb, प्रा० अं० ladye, से अं० lady, प्रा० फ्रें० benigne से अं० benign, लै० attende से अं० attend लै० odiffero से अं० differ, लै० barba से अं० barb, लै० assisto से अं० assist, स्पे० bilboa, से अं० bilbo, अं० withe से with अं० دردی (दुरदी) से फा० درد (दुरद), फा० دفع الوقتی (दफअउलवक्ती) से دفع الوقت (दफअउलवक्त), फा० زیبان (जेबा) से زیب (जे.ब); फा० جوے (जूए) से جو (जू) इत्यादि।

(ख) व्यंजनलोप—सत्य से सत्त, धान्य से धान, मूल्य से मूल, आम्र से आम, व्याघ्र से बाघ, असह्य से असह, निम्बकु से निम्बु, कामरूप से कामरू, हीरक से हीर, खान से खाँ, जीव से जी फ्रें० advancer से अं० advance, फ्रें० agreer से अं० agree, फ्रें० drable से अं० drab, म० फ्रें० bigg से अं० big ए० से० cobd से अं० cod, ए० से० denn से अं० den, ए० से० clawn से अं० claw ए० से० don से अं० do, ए० से० nebb से० अं० neb, ए० से० hamn से अं० ham ए० से० nebb से० अं० neb, ए० से० hamn से अं० ham अं० open से ope, फा० جوشش (जोशश) से خوش (जोश), अं० شرارہ (शरारह) से شرار (शरार) फा० دختر (दुख्तर) से دخت (दुख्त), अं० دفتیں (दफ्ती) से دفتی (दफ्ती), इत्यादि।

(ग) *अक्षरलोप*—जैसे माता से माँ आदि।

कारण—(१) बल—प्रत्येक शब्द में बल केवल एक ही वर्ण पर होता है, शेष निर्बल होते हैं। निर्बल वर्ण प्रायः लुप्त हो जाते हैं जैसे 'अस्ति' में 'अ' पर बल है, इसका द्विवचन अस्तः और बहुवचन असन्ति होने चाहिए, परंतु इनमें 'अ' निर्बल होकर लुप्त हो जाता है, अतः वे स्तः तथा सन्ति ही रह जाते हैं। इसी प्रकार 'पफाल' से फेलतुः तथा फेलुः हो जाते हैं। प्राकृत में अनेक ध्वनि-

लोप बल के आघात के कारण ही होते हैं। अं० direct (डाइ-रेक्ट), finance (फाइनेंस) आदि के क्रमशः डिरेक्ट, फिनेंस उच्चरित होने का कारण भी बल ही है।

(२) *उच्चारणात्मक शीघ्रता अथवा असावधानी*—कभी कभी दो सजातीय ध्वनियाँ अति निकट होती हैं, तो शीघ्रता अथवा असावधानी से उच्चारण करने में उनमें से एक लुप्त हो जाती है, जैसे camel + leopard = camelopard, cinema + matinee = cinematinee, गुज० मैं + कुछ + जे = मकुजे इत्यादि। उपर्युक्त don, doft dup, आदि मध्य-स्वर-लोप के उदाहरण भी इसी प्रकार के हैं।

(३) *मुखसुख*—कभी कभी प्यार में मुख सुख के लिए नामों को संक्षिप्त कर लिया जाता है, जिसमें कुछ अंश लुप्त हो जाता है जैसे नारायन से नरायन कन्हैया से कनही लक्ष्मण से लक्खन रामेश्वरी से रमेसरी, इत्यादि। संध्या से साँझ अथवा संझा (उच्चरित), वंध्या से बाँझ आदि भी इसी प्रकार के उदाहरण हैं।

(४) *अज्ञान*—कभी अभी अज्ञानवस भी लोप होता है जैसे अं० ticket से टिकट, अं० boom से बम, अं० hotel से होटल इत्यादि।

(३) *विपर्यय*—किसी शब्द में किसी वर्ण अथवा अक्षर के उलटफेर अर्थात् इधर-उधर हो जाने को विपर्यय कहते हैं। विपर्यय स्वर, व्यंजन तथा अक्षर तीन प्रकार का होता है।

स्वरविपर्यय—जैसे अमिरती से इमरती, अम्लिका से इमली, रूमाल से उरमाल जानवर से बो० जनावर, खुजली से खजुली, अनुमान से उनमान, अस्तुरा से उस्तरा, ससुर से सुसर, अंगुली से उंगली, उल्का से लूका, सगुन, से सुगन, उंदिर से वं० इंदुर, बाबू से बबुआ, फाटक से फटका, कुछ से कछु, एरंड से रेंड, फा० ظهٔ (तबाह) से हिं० तवा, ए० से० oex से अं०

axe ए० सं० bera से अं० bear, ए० सं० bridel से अं० bride, ए० सं० candel से अं० eandle, अं० ceil से ciel अं० Eastre से Easter अं० flrth से frith, अं० goiter से goitre, अं० homoepathy स homeopathy इत्यादि।

(आ) *व्यंजनविपर्यय*—जैसे, चिह्न चिन्ह ब्रह्म से ब्रह्मा, हिंस्र से सिंह, लखनऊ से नखलऊ, तमगा से तगमा, यहाँ से ह्यां बताशा से बसाता, कुफल के कुलफ, नुकसान से नुस्कान, जिह्वा से जिव्हा, नम्र से नर्म, न्हान से ह्वान, नारिकेल से नालिकेर, नग्न से नंग, वाराणसी से बनारस, उकसाना से उसकाना, मतलब से मतबल सं० मह्य से प्रा० मज्झं, सं० यः से प्राम ईरानी ह्य, फा० نالش (नालिश) से बो० लानस, गुज० डुबबु बूडबु, सं० निष्क से पा० निक्ख, सं० शुष्क से फा० خشک (खुश्क), गुज० टपकबुं से पटकबु, उ० دهلی (देहली) से अ० Delhi, उ० مرهٹه (मरहटा) से अं० Mahratta, जमुना से अं० Jumna, मथुरा से अं० Muttra, अं० signal से हिं० सिगल, अं० desk से डैक्स, अं० general से जरनैल अथवा जनरल, अं० crull से curl, इत्यादि। wasted a whole term को tasted a whole worm, two bags of rug से two rags of bug, plural को प्लूलर, लड़की को लकड़ी, इत्यादि कह जाने में भी विपर्यय ही है।

(इ) *अक्षरविपर्यय*—जैसे चौका-चूला को चूका-चौला कह जाना इत्यादि।

कारण—(१) *असावधानी तथा अज्ञान*—यद्यपि कभी कभी उच्चारण की शीघ्रता अथवा असावधानी के कारण भी 'चूका-चौला' जैसे वर्णविपर्यय हो जाते हैं, परंतु इनका मुख्य कारण प्रमाद अथवा अज्ञान ही है। यही कारण है कि अबोध शिशु अनेक शब्दों में वर्णविपर्यय कर दिया करते हैं। इसी प्रकार अशिक्षित

तथा विदेशी मनुष्य नए शब्दों के हिज्जे आदि से परिचित न होने के कारण उनके उच्चारण में कुछ असुविधा अनुभव करते हैं और उनको कुछ ध्वनियाँ कठिन प्रतीत होती हैं। इस असुविधा को दूर करने के लिये वे प्रायः बच्चों की भाँति वर्ण अथवा अक्षरों में इधर उधर उलट पुलट कर दिया करते हैं। जब कोई विपर्यय विशेष समाज द्वारा गृहीत हो जाता है, तो वह भाषा का अंग हो जाता है।

(४) *मात्राभेद*—किसी वर्ण का प्रायः शब्द के प्रथम वर्ण का, ह्रस्व मात्रिक से दीर्घ मात्रिक और दीर्घ मात्रिक से ह्रस्व मात्रिक हो जाना, मात्रा भेद कहलाता है।

(अ) ह्रस्व से दीर्घ होना—जैसे पिय से पीय, गगरी से गागर, अक्षत से आखत, अचरज से आचरज, चिन्ह से चीन्ह, अधीन से आधीन, अंकुश से आँकुस, नहीं से पं० नाहीं, कल से ब्रो० काल, कश्मीर से काश्मीर, गंधार से गांधार, कंपन से काँपना, कंटक से काँटा, कंध से काँधा, पुर से पूर, पुत्र से पूत, चंद्र से चाँद, सर्प से साँप, लज्जा से लाज, तलाब से फ़ा० तथा हिं० تالاب (तालाब) मुसल से मूसल, तागा से तागा, पिप्पल से पीपल; दिवाना से दीवाना, अद्य से आज, सं० सिंह से पा० सींह, सं० सम्राग से पा० साराग, सं० विंशति से पा० बीसति; अं० mill से ब्रो० मील, अ० ارضی (अराजी) से फा* آرضی (अराज़ी), तु० تلاش (तलाश) से फा० تالاش (तालाश), फ़ा० دوات (दवात) से داوات (दावात), अ० دکان (दुकान) से دوکان (दूकान) इत्यादि।

(आ) दीर्घ से ह्रस्व होना—जैसे आमरस से अमरस, नारंगी से नरंगी. अलाप से अलाप, आवाँ से अवाँ, आवास से अवास आषाढ़ से अषाढ़, बाहांग से बहंगी, सूखा से सुक्खा, भूखा से भुक्खा, सूनरी से सुंदरी, आभीर से अहीर; तौल से तोल, चूक से चुक, जूही से जुही, दूल्हा से दुल्हा, नैपाल से नेपाल, पाताल से पताल, पांचाल से पंचाल, फा० بادام (बादाम) से ब्रो० बदाम,

वानर से वंदर, सं० शांत से पा० संत, सं० शाक्य से पा० सक्य, सं० वाह्य से पा० वह्य, सं० सनातन से पा० सनंतन; अं० Agust से हि० अगस्त, अं० officer से अफ़सर, अं० foot फ़ा० مالیدہ (मालीदा) से उ० तथा हि० ملیدہ (मलीदा), फ़ा० شاہ (शाह) में شہ (शह), फ़ा० خاموش (खामोश) से خموش (खमोश), फ़ा० چاہ (चाह) से چہ (चह) फ़ा० راہبر (राहबर) से वो० رہبر (रहबर), अ० آچار (आचार) اچار (अचार), फ़ा० آرام (आराम) से बो० अराम, अ० اداب (आदाब) से ادب (अदब), अ० آخر (आखिर) से बो० अखीर, अ० آحاد (आहाद) से احاد (अहाद), फ़ा० داروغہ (दारोगा) से बो० दरोगा, फ़ा० से باورچی (बवर्ची) बो० बवर्ची इत्यादि।

कारण—मात्राभेद का संबंध स्वर अथवा बल से है। किसी शब्द का दीर्घ अथवा ह्रस्व मात्रिक होना प्रथम वर्ण के स्वर, बल अथवा आघात पर निर्भर है। जो स्वर सबल होते हैं, वे दीर्घ और जो निर्बल होते हैं, वे ह्रस्व हो जाते हैं, अर्थात् जब बल प्रथम वर्ण से हट जाता है, तो वह वर्ण निर्बल होकर ह्रस्व मात्रिक हो जाता है, जैसे राम, शीतल, पीतल, मीठा, खाट आदि में प्रथम वर्ण पर बल है, पर जब वही बल आगे के किसी वर्ण पर हो जाता है, तो दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है, जैसे रमय्या, सितलाई, पितलाहट, मिठाई, खटिया आदि। इसी प्रकार जब बल अन्य वर्ण से हट कर प्रथम पर चला जाता है, तो वह सबल होकर दीर्घ हो जाता है जैसे शिक्षा से सीख, जिह्वा से जीभ आदि।

(५) *समीकरण सावर्ण्य अथवा एकरूपता*—जब किसी शब्द में कोई वर्ण अपने आगे या पीछेवाले वर्ण के अनुसार परिवर्तित होकर समान अथवा सजातीय रूप धारण कर लेता है, तो वह समीकरण कहलाता है। जिस वर्ण के अनुसार अन्य वर्ण का रूप परिवर्तन होता है उसकी स्थिति के अनुसार समीकरण

दो प्रकार का होता है—(१) पूर्व समीकरण—जिसमें पूर्व वर्ण के अनुसार पर वर्ण परिवर्तित होता है। (२) पर समीकरण—जिसमें पर वर्ण के अनुसार पूर्व वर्ण परिवर्तित होता है।

(अ) पूर्व समीकरण—जैसे सं० उज्ज्वल से हि० उज्जल, बग्घी से बग्गी; सं० चक्र से पा० चक्क, सं० तत्व से पा० तत्त, सं० तक्र से पा० तक्क, सं० सपत्नी पा० सपत्ती, सं० पक्व से हि० पक्का, सं० वैराग्य से पा० वैराग्ग, सं० कुड्य से पा० कुड्ड सं० अभव्य से पा० अभव्व, सं० सीव्यति से पा० सिव्वति, सं० वक्र से पा० वक्क सं० हरिद्री से पा० हलिद्दी, सं० खल्वाट से पा० खल्लाट, सं० चत्वार; से पा० चत्तारो, सं० अश्व से पा० अस्स, सं० सम्यक् से पा० सम्मा, सं० योग्य से पा० योग्ग अं० lantern से लालटेन, गोपाल से गुप्पो, इत्यादि।

(अ) पर समीकरण—जैसे हल्दी से हद्दी, नीली से लीली, देहली से दिल्ली बम्बई से मुम्बई, मिर्च से मिच्चा, दंड से डंड, उर्द से उद्द, नीलाम से लीलाम, यजमान से जिजमान, अर्ध से अद्धा, तप्त से तत्ता, शर्कर से शक्कर, भुण्ट से भुट्टा, सं० शक्तु से पा० शत्तु, सं० मुक्त से पा० मुत्त, सं० दुर्ग से पा० दुग्ग, सं० धर्म से पा० धम्म, सं० कर्म से पा० कम्म, सं० रक्त से पा० रत्तो, सं० भक्त से पा० भत्तो, सं० शक्ति से पा० सत्ति, सं० गोष्ठी से पा० गोट्ठी, सं० धूर्त से पा० धुत्ता, सं० दुग्ध से पा० दुद्ध, सं० खड्ग से पा० खग्ग, सं० पुद्गल से पा० पुग्गल, सं० शब्द से पा० सद्द, सं० वर्ग से पा० वग्ग, सं० कर्पूर से पा० कप्पूर, सं० अर्बुद से पा० अब्बुद, सं० गर्भ से पा० गब्भ, सं० दर्शन से पा० दस्सन, सं० कुर्वाण से पा० कुब्बान, सं० उत्कार से पा० उक्कार, सं० उत्पतति से पा० उप्पतति, सं० बुद्बुद से पा० बुब्बुल, सं० व्यग्र से पा० बग्ग, सं० सर्वदा से पा० सब्बदा, सं० सर्वत्र से पा० सब्बत्र, सं० बृष्टि से पा० बुट्ठि, सं० भ्रष्ट से पा० भट्ट, सं० प्रजावती

से पा० प्रजापती अथवा हि० प्रजापती, सं० दुर्लभ से पा० दुल्लभ, सं० आत्मा से पा० अत्ता, अं० master से बो० मास्टर, अं० collector से बो० कलट्टर इत्यादि तथा डाकघर तथा आध सेर के उच्चारित रूप क्रमशः डाग्घर तथा आस्सेर।

कारण—मुखसुख अथवा सुविधा—कभी कभी विभिन्न स्थानों से उच्चारित होनेवाले दो संयुक्त व्यंजनों के मध्य इतनी अल्प विवृति रहती है कि उनके उच्चारण में असुविधा होती है। अतः सबल ध्वनि आने से पूर्व अथवा पर ध्वनि को अपने अनुसार परिवर्तित कर लेती है और दोनों ध्वनियाँ एक ही अथवा अति निकटवर्ती स्थान से उच्चरित होने के कारण सुविधा पूर्वक उच्चरित हो जाती हैं।

(६) *विषमीकरण* असावर्ण्य अथवा विरूपता—जब किसी शब्द में दो वर्ण समान अथवा सजातीय होते हैं, तो प्रायः उनमें से एक लुप्त अथवा परिवर्त्तित हो जाता है। जब पूर्व वर्ण के अनुसार पर में विकार होता है, तो पूर्व विषमीकरण और जब पर वर्ण के अनुसार पूर्व में विकार होता है, तो पर विषमीकरण कहलाता है। इस प्रकार विषमीकरण समीकरण का ठीक उल्टा है।

(अ) पूर्व विषमीकरण—जैसे टिक्की से टिकिया, सूर्य्य से सूरज, तूर्य्य से तुरही, पिपासा से प्यासा, कक्कन से कंगन, कार्य से कारज, काक से काग, नेमि से नेव, विमान से बेवान, पुरुष से पुरिस, सं० पिपीलिका से प्रा० पिपिल्लिका, सं० तत्र से पा० तद्द, सं० तन् से प्रा० तं, सं० स्था से तिष्ठ, लै० turtur से० अं turtle, लै० marmor से अं० marble इत्यादि।

(आ) पर विषमीकरण—जैसे नूपुर से नेउर, नवनीत से लौनी, सं० लांगूल से पा० नंगुल, सं० मुकुट से प्रा० मउड, सं० गुरुक से प्रा० गरुअ, दरिद्र से दलिद्र, पुर्त lelloo से नीलाम, सं० मृषा से पा० मुसा, सं० ललाट से पा० नलाट, सं० रुद्र से

पा० तुद्द, सं० वसिष्ठ से जि० वहिट्ठ, अं० numder से बो० लम्बर, इत्यादि ।

कारण—मुखसुख—कभी कभी जब दो समान अथवा सजातीय ध्वनियाँ एक साथ आती हैं, तो उनके उच्चारण में भाषणावयवों को, एक सा होने के कारण, एक प्रकार की उलझन अथवा थकन सी प्रतीत होती है। अतः निर्बल वर्ण लुप्त अथवा परिवर्तित हो जाता है। यही कारण है कि जब शब्दों में एक सी ध्वनियाँ कई एक होती हैं, तो उनके उच्चारण में अशुद्धि हो जाती है, उदाहरणार्थ 'छः माशे शकर छः माशे सौंफ' तथा She was selling seashells on the sea-shore में स, श, s, sh आदि समान ध्वनियों की पुनरावृत्ति होने के कारण उच्चारण में उलझन होती है।

संधि तथा एकीभाव—प्रायः शब्दों में दो निकटवर्ती स्वरों के बीच विवृति रहती है, जिसके कारण संधि होने पर अनेक विकार हुआ करते हैं। कभी संधि होने पर विवृति लुप्त हो जाती है, कभी मध्य व्यंजन लुप्त होने पर स्वरों के बीच विवृति रहती है कभी 'य' अथवा 'व' का आगम हो जाता है और कभी दोनों स्वरों का एकीभाव हो जाता है। निम्नलिखित उदाहरणों से उक्त विषय का स्पष्टीकरण हो जायगा—

चामर से चौंरी, स्वपनं से सोना, स्वर्णकार से सुनार, मूल्य से मोल, नयन से नैन, समय से समै, रजनी से रैन, थइर से थैर, गतः से गवा अथवा गया, त्वरंत से तुरा, चलइ से चलै, लवँग से लौंग, अपरः से अउर और, अंधकार से अंधेरा, मँइ से मैं, वपनं से बोना, अवतार से औतार, अवसर से औसर, गमनं से गौना, सपत्नी से सौत, नवनीत से नौनी, अवगुण से औगुन, कखवारी से कखौरी, नवमी से नौमी, वामन से बौना, पुस्कर से

पोखर, उद्धव से ऊधो, अवधि से औधि, चर्मकार से चमार, शतं से सौ, फ़ा० خواجه (ख्वाजा) से उ० خوجه (खोजा), फ़ा० خوانچه (ख्वाञ्चा) से उ० خونچه (खोञ्चा) बो० खौमचा, इत्यादि ।

कारण—मुखसुख—कभी कभी किसी किसी शब्द के उच्चारण में दो स्वरों के बीच की विवृति को अथवा मध्य व्यंजन को लुप्त कर देने से सुविधा होती है जैसे वइन से वैन, अवतार से औतार, इत्यादि । कभी कभी उच्चारणात्मक सुविधा के लिये दो निकटवर्ती ध्वनियों में से एक के प्रभाव से दूसरी परिवर्तित अथवा लुप्त हो जाती है, तत्पश्चात् दोनों परस्पर मिलकर एक हो जाती हैं, जैसे जगत्+ईश= जगदीश, नाक+कटा=नकटा, इत्यादि ।

(८) *भ्रामक व्युत्पत्ति अथवा विदेशी शब्दसंबंधी ध्वनि-विकार*—प्रायः विदेशी शब्दों का, उनकी व्युत्पत्ति तथा हिज्जे का ज्ञान न होने के कारण, साधारण जनता सादृश्य नियम अथवा 'ज्ञात से अज्ञात' नियम के आधार पर अपना मनमाना उच्चारण करने लगती है; जैसे फ़ा० انتقال (इन्तकाल) से हि० अंतकाल, फ़ा० بهشت (बहिश्त) से बो० भिस्त, फ़ा० دستخط (दस्तेखत) से बो० दसखत, फ़ा० آداب عرض (आदाब अर्ज) से हि० आदाबर्ज, सं० ब्राह्मण से उ० برهمن (ब्रहमन), सं० क्षत्री से उ० كشتري (कश्तरी), खम्भात से अं० Cambay, अं० library से बो० रायबरेली, अथवा लायबरेली, अं० omlette से बो० माम-लेट' postcard से बो० पोस्टकाट, Secretary से सिकत्तर, re-cruit से रंगरूट, gentleman से जंटुलमैन, lieutenant से लफटंट, tuition से टीसन अथवा टूसन, inspector से बो० इस्पट्टर, April से अप्रैल, Porugal से पुर्तगाल, madam से मेम, pantaloon से पतलून, waistcoat से वास्कट, captain से कप्तान, tramway से ट्रम्वे, compounder से कम्पोडर,

theatre से ठेटर, necktie से नकटाई, first से फस्ट, wife से वायफ़ अथवा वाइफ, lectere से ब्रे० लचकह, lord से लाट, fountain pen से फोटर पैन, christmas day से किसमिस डे, Rhudash से गु० लोहित्राग, railway से गुज० वेलवेल, Christ से ची० किलिसत्त, नमस्ते से नवस्ते इत्यादि

कारण—प्रमाद, अज्ञान तथा मुखसुख—विदेशी शब्दों की व्युत्पत्ति, हिज्जे आदि से अनभिज्ञ होने तथा भाषणावयवों के अभ्यस्त न होने के कारण उनके उच्चारण में अशिक्षित जनता को कुछ असुविधा होती है जिसके निवारणार्थ वे ज्ञात वस्तुओं के आधार पर उपमान नियम के अनुसार उनका उच्चारण करने लगते हैं। April को अप्रैल कहना संभवतया खप्रैल के सादृश्य पर है। इसी प्रकार انتقال (इंतकाल) को अंतकाल कहना ज्ञात से अज्ञात की ओर अग्रसर होना है।

(९) *विशेष ध्वनिविकार*—वे विकार हैं जो किसी भाषा अथवा देश विशेष में होते हैं जैसे यूनानी में 'ई' का अभाव होना, प्राकृत में संस्कृत के पदांत व्यंजन का लोप होना, जैसे भवान् से भवं, यत् से यं आदि, संस्कृत पद के मध्य में आनेवाले क ग च ज त द प ब य का प्राकृत में लोप अथवा परिवर्तन हो जाना, जैसे कृत से कअ, से वदन वयन; सं० ख घ थ भ की जगह हिंदी में ह हो जाना जैसे मुख से मुँह, बधिर से बहिर, मेघ से मेह; सं० ण का हिंदी में न हो जाना जैसे चरण से चरन इत्यादि बंगला में स का श हो जाना; फारसी में स का ह हो जाना जैसे—सत का هفت (हत) आदि।

कारण—स्थितिजन्य अवस्था—विशेष ध्वनिविकार किसी स्थान की जलवायु, प्राकृतिक दशा आदि भौगोलिक तथा अन्य स्थितिजन्य बाह्य कारणों से होते हैं। इस प्रकार के विकारों की ध्वनिनियमों द्वारा भली भाँति व्याख्या की जा सकती है।

(१०) *अनिश्चित अथवा मिश्रित ध्वनिविकार*—कुछ ऐसे भी मिश्रित ध्वनिविकार होते हैं जिनको उक्त विभागों में से किसी एक में निश्चित रूप से नहीं रख सकते, जैसे निश्चय से निहचे, महिष से भैंस, कच्छू से खाज, सपादिक से सवा, हृदय से हिया, वृश्चिक से विच्छू; फा० آباد (आबाद) से अं० abode, फा० ماعون (माऊन) से अं० maund, पुर्त० Anglais से अंग्रेजी, पुर्त० Franchis से फ्रांसीसी, इत्यादि।

कारण—इस प्रकार के मिश्रित विकार कभी कभी कई कारणों के मिलने से होते हैं, जैसे क्षीणालय से छिनाल होने में 'क्ष' का 'छ' तथा 'ण' का 'न' होना विशेष ध्वनिविकार, क्षीका छि होना मात्राभेद और य का गिर जाना लोप के अंतर्गत हैं, तदनुसार इसमें तीन प्रकार के विकार संमिलित हैं। कभी कभी ऐसे विकार अकस्मात् अनिश्चित रूप से भी हो जाया करते हैं। यद्यपि कुछ न कुछ श्रेणीविभाग अथवा कारण तो उसका भी अवश्य होता है, तदपि उसको न तो किसी एक निश्चित श्रेणीविभाग के ही अंतर्गत रक्खा जा सकता है और न उसका कोई विशेष कारण ही बताया जा सकता है।

स्वदेशी तथा विदेशी हिंदी शब्दों में ध्वनिपरिवर्तन

हिंदी में दो प्रकार के शब्द हैं, स्वदेशी तथा विदेशी। स्वदेशी के अंतर्गत आर्य तथा अनार्य शब्द और विदेशी के अंतर्गत मुसलमानी तथा यूरोपीय शब्द हैं। स्वदेशी में अनार्य शब्दों की संख्या तो अति न्यून है, परंतु आर्य (संस्कृत) शब्दों की अधिक। इसी प्रकार विदेशी मुसलमानी में फारसी शब्दों की और यूरोपीय में अंगरेजी शब्दों की संख्या अधिक है। अतः हम संस्कृत, फारसी तथा अंगरेजी भाषाओं से आए हिंदी शब्दों के ध्वनिविकारों का ही विवेचन करेंगे।

जब एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में गृहीत होते हैं, तो प्रायः

उनमें कुछ न कुछ ध्वनिविकार हो जाता है, क्योंकि ग्राहक भाषा को गृहीत भाषा का उच्चारण अपने अनुकूल करना पड़ता है; यद्यपि कभी कभी गृहीत शब्द तत्सम रूप में भी रहते हैं। वे नियम जिनके अनुसार ये ध्वनिविकार होते हैं, उस भाषा के विशेष ध्वनिनियम कहे जा सकते हैं। विषय बहुत विस्तृत है, अतः प्रत्येक प्रकार के दो तीन उदाहरणों से अधिक देना कठिन होगा।

संस्कृत

१—*स्वरविकार*—(१) विशेष विकार— (अ) मूल स्वर-संबंधी—

(क) सं० 'अ' हिं० में अ आ, इ ई, उ ऊ, ए ऐ, ओ औ में परिवर्तित हो जाता है। अ→अ-भक्त से भगत, प्रथम से पहिला; अ→आ—कर्म से काम, सप्त से सात; अ→इ—घर्षण से घिसना, अम्लिका से इमली, पंजर से पिंजड़ा; अ→ई—अतसी से तीसी; अ→उ—अंगुली से उँगली, खर्जू से खुजली, स्मरण से सुमरन अ→ऊ—श्मश्रु से मूछ; अ→ए—संधि से सेंध, छगली से छेरी, बदर से बेर, कदली से केला; अ→ऐ—रजनी से रैन, गंडक से गैंडा, पंचत्रिंशत् से पैंतीस; अ→ओ—मयूर से मोर, चंचु से चोंच, जलूका से जोंक: अ→औ —चतुर्थ से चौथा, चतुर्दश से चौदह।

(ख) सं० 'आ' हिं० में अ आ ई ए औ हो जाता है। आ→अ—मार्ग से मग, कासीस से कसीस मार्जन से मंजन, चामर से चमर; आ→आ —कार्य से कारज, द्राक्षा से दाख, जागरण से जागना; आ→ई —पान से पीना; आ→ए —दान से देना; आ→औ—भ्रातृजाया से भौजाई।

(ग) सं० 'इ' हिं० में अ इ ई ऊ ऐ हो जाता है। इ→अ—विभूति से भभूत, वारिद से बादल, कुट्टनी से कुटनी; इ→इ—

किरण से किरन, बधिर से बहिरा, भगिनी से बहिन' इ→ई—इक्षु से ईख; चिल्ल से चील, निद्रा से नींद, भित्ति से भीत, मित्र से मीत इ→ऊ—शिङ्घन से सूँघना, बिन्दु से बूँद, गैरिक से गैरू; इ→ए—शिम्बा से सेम, बिल्व से बेल, सिंदूर से सेंदूर, तिक्त से तेज।

(घ) सं० 'ई' हिं० अ इ ई ए ऐ में परिवर्तित हो जाता है। ई→अ —परिक्षा से परख, गर्भिणी से गाभिन, सर्पिणी से साँपन, इ→ई —चीत्कार से चिंघाड़, दीपावली से दीवाली, दीपक से दिया; इ→ई —शीर्ष से सीस; कीट से कीड़ा; ई→ए क्रीड़ा से खेल; ई→ऐ—कीदृश से कैसा, ईदृश से ऐसा।

(ङ) सं० 'उ' हिं० अ ई उ ऊ ए ओ में परिवर्तित हो जाता है। उ→अ—तनु से तन, कर्बुर से कबरा, विद्युत् से बिजली; उ→ई—वायु से बाई, बिंदु से बिंदी; उ→ऊ—दुर्बल से दुबला, उज्ज्वल से उजला, कुचिका से कुजा; उ→ऊ—उष्ट्र से ऊँट, पुत्र से पूत, मूषल से मुसल, उपरि से ऊपर; उ→ए—फुफ्फुस फेफड़ा; उ→ओ—कुष्ठ से कोढ़, मुक्त से मोती, तुंद से तोंद, तु से तो, पुस्तक से पोथी।

(च) सं० 'ऊ' हिं० में अ उ ऊ ए ओ औ हो जाता है। ऊ→अ—यूथ से जथा अथवा जत्था; ऊ→उ—कूप से कुआ, सूची से सुई, पूप से पुआ, मधूक से महुआ; ऊ→ऊ—ऊर्ण से ऊन, दुर्वा से दूब: ऊ→ए—नूपुर से नेउर; ऊ→ओ—कूष्माण्ड से कोहड़ा; ऊ→औ—भ्रू से भौं।

(छ) सं० 'ए' हिं० इ ई ए ऐ में परिवर्तित हो जाता है। ए→इ —एला से इलायची, लेखन से लिखन; ए→ई—लेपन से लीपना, पेषण से पीसना, ए→ए—एक से एक, कसेरु से कसेरू, क्लेस से कलेस, ए→ऐ—फेनिका से फैनी।

(ज) सं० 'ऐ' हिं० इ ए ऐ में परिवर्तित हो जाता है ऐ→ई—धैर्य से धीरज, ऐ→ए गैरिक से गेरू, कैवर्त्त से केवट,

तैलिक से तेली; ऐ→ऐ—चैत्र से चैत, वैराग से वैराग, वैर से बैर।

(झ) सं० 'ओ' हिं० ए ओ में परिवर्तित हो जाता है। ओ→ए—गोधूम से गेहूँ; ओ→औ—रोदन से रोना, त्रोटन से तोड़ना, गोधा से गोह।

(ञ) सं० 'औ' हिं० में ओ हो जाता है। औ→ओ—गौर से गोरा, पौत्र से पोता।

(ट) सं० 'ऋ' हिं० में अ आ इ ई ऊ हो जाता है। ऋ→अ—मृत से मरा; ऋ→आ—शृंखला से साँकर, कृष्ण से कान्ह, नृत्य से नाच; ऋ→इ:—गृध्र से गिद्ध, कृषाण से किसान, तृण से तिनका, शृंगाल से सिआर; ऋ→ई—घृत से घी, भ्रातृज से भतीजा, शृंग से सींग; ऋ→ऊ—वृद्ध से बूढ़ा, पृच्छति से पूछे, वृक्ष से रूख।

(आ) संयुक्त स्वर-संबंधी—(क) अ इ हिं० में ए ऐ में बदल जाता है। अ इ→ए—प्रा० चलई से चले, प्रा० थइर से थेर; अइ→ऐ—प्रा० मइं से मैं, अप० वइन से वैन; (ख) अ उ हिंदी में ऊ औ में परिवर्तित हो जाता है, यथा, अउ→ऊ—अप० चलउ से चलूँ; अउ→औ—प्रा० मउड से मौर, प्रा० णउल से नौला। (ग) अ य हिंदी में ऐ हो जाता है, जैसे नयन से नैन, समय से समै, निश्चय से निहचै इत्यादि। (घ) अव हिंदी में ओ औ हो जाता है। अव→ओ—लवण से नोन अव→औ—लवंग से लौंग, व्यवहार से व्यौहार, अवतार से औतार।

(२) *स्वरलोप*—(अ) आदिस्वरलोप—संस्कृत शब्दों के आदि के अ उ ए प्रायः हिंदी में लुप्त हो जाते हैं; जैसे अ—अस्ति से है, अश्वार से सवार, अभ्यटन से भिड़ना; उ—उद्गार से डकार, उपायन से वायन, उपविष्ट से बैठा; ए—एकादश से ग्यारह।

(आ) मध्यस्वरलोप—संस्कृत शब्दों के मध्य में आनेवाले 'अ' का उनके उच्चरित हिंदी रूपों में प्रायः लोप हो जाता है, जैसे सं० तोलन नरक आदि के हिंदी रूप क्रमशः तोलना, नरक आदि हैं, परंतु इनका उच्चारण तोल्ना, नर्क आदि की भाँति होता है। कभी कभी लिखित रूपों में भी 'अ' का लोप हो जाता है, जैसे अरथी से अर्थी।

(इ) अंत्यस्वरलोप—शब्दांत में आनेवाले सं० अ आ इ ई उ ए का प्रायः उच्चारण में लोप हो जाता है, यथा अ—सं० शीतल, ततसम् आदि का उच्चारण शीतल, तत्सम् आदि की भाँति होता है; आ—वार्त्ता से बात, टंकशाला से टकसाल, ननान्दा से ननद; इ—विपत्ति से विपत, जाति से जात, तित्तिर से तीतर, ज्ञाति से जात; ई—भगिनी से बहिन; उ—बाहु से बाँह; ए—पार्श्वे से पास, अभ्यंतरे से भीतर।

(३) *स्वरागम*—(अ) आदिस्वरागम—अ—लोप से अलोप। इसके अतिरिक्त संयुक्त 'स' से आरंभ होनेवाले शब्दों के आदि में उच्चारण में प्रायः अ अथवा इ का आगम हो जाता है जैसे स्मरण, स्त्री, स्थान, स्तुति आदि का उच्चारण क्रमशः अस्मरण, इस्त्री, अस्थान, अस्तुति आदि की भाँति होता है।

(आ) मध्यमस्वरागम—संस्कृत शब्दों के हिंदी रूपों में प्रायः अ इ उ का आगम हो जाता है। अ—कर्म से काम, पूर्व से पूरब; इ—मिश्र से मिसिर; उ—स्मर से सुमर, वक से वगुला।

(इ) अंत्यस्वरागम—संस्कृत शब्दों के हिंदी रूपों के अंत में प्रायः आ उ का आगम हो जाता है। आ—गुरु से गरुआ, गल से गला, उ—जी से जीउ (बो०)।

स्वरविपर्यय—सं० अ इ उ ए हिं० में प्रायः उलट-पुलट हो जाते हैं। अ—जंघा से जाँघ; इ—अम्लिका से इमली, उ—उल्का

से लूका, बिंदु से बूँद, शकुन से सुगन, श्वसुर से ससुर, अंगुली से उंगली, ए→एरंड से रेंड।

(५) *मात्राभेद*—संस्कृत शब्दों के हिंदी में आने पर प्रायः उनमें मात्राभेद हो जाता है। अनेकों शब्द दीर्घमात्रिक से ह्रस्व मात्रिक और ह्रस्वमात्रिक से दीर्घमात्रिक हो जाते हैं। ह्रस्व→दीर्घ—चंद्र से चाँद, चित्रक से चीता, मुष्टिका से मूठ, मुद्ग से मूँग, प्रा० एरिसो से ऐसा, प्रा० केरिसो से कैसा, दीर्घ→ह्रस्व—प्लीहा से पिलही, कील से किल्ला, भूपाल से भुआल, भूमि से भुइँ, तैल से तेल, चौर्य से चोरी।

२—*व्यंजनविकार*—(१) *विशेषविकार* (अ) मूल व्यंजन संबंधी—यदि संस्कृत शब्दों में कोई अनुनासिक व्यंजन (ङ ञ ण न म) होता है और हिंदी में उसका लोप हो जाता है, तो उसके पूर्व का अथवा पूर्व के स्थान में आगंतुक स्वर सानुस्वार या सानुनासिक हो जाता है, जैसे गङ्गा से गंगा, जङ्गल से जंगल, चञ्चल से चंचल, पञ्च से पंच, कण्टक से काँटा, रण्डा से राँड, बन्धन से बाँधना, अन्धकार से अँधेरा, चन्द्र से चाँद, कम्पना से काँपना, कुमार से कुँवर अथवा क्वाँरा, स्वामी से साँई।*

* वास्तव में बात यह है कि आजकल हिंदी में अनुनासिक व्यंजन के स्थान में अनुस्वार लगाने की प्रवृत्ति चल पड़ी है और उसका उच्चारण प्रायः 'न' की भाँति होता है, अतः कुछ लोग भ्रमवश अनुस्वार के स्थान में अर्द्ध 'न' भी लिखते हैं जैसे चन्चल, घन्टा; सन्मुख आदि में। अनुनासिक व्यंजन के स्थान में (ं) लगाना तो प्रचलित हो गया है, परन्तु 'न' लिखना ठीक नहीं। संभवतः लोग यह समझते है कि कोई भी अनुनासिक व्यंजन कहीं भी लिखा जा सकता है, परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। इनके प्रयोग का यह निश्चित नियम है कि अनुस्वार के जिस वर्ग का वर्ण होगा उसी वर्ग का पाँचवा वर्ण अनुनासिक व्यंजन

कवर्ग—सं० क हिं० में क, ख, ग हो जाता है। क→क—कारवेल्ल से करेला, काञ्चनार से कचनार, कोद्रव से कोदों; क→ख—कृशर से खिचड़ी, कर्षण से खींचना, कास से खाँसी; क→ग—काक से काग, शाक से साग, मकर से मगर, कंकाल से कंगाल, कंकण से कंगन।

सं० ख हिं० में ख ह हो जाता है। ख→ख—खादन से खाना खट्वा से खाट; ख→ह—नख से नह, मुख मुँह, आखेट से अहेर।

सं० ग हिं० में ग, घ, ह हो जाता है। ग→ग—गर्दभ से गधा गृध्र से गिद्ध अथवा गीध; ग→घ—गुंजा से घुंघची, गृह से घर; ग→ह—भगिनी से बहिन।

स्वरूप आयेगा अर्थात् यदि अनुस्वार के परे कवर्ग का कोई वर्ण होगा तो ङ जैसे लङ्का, चवर्ग का कोई वर्ण होगा तो ञ, जैसे पञ्च, तवर्ग का कोई वर्ण होगा तो न जैसे क्रांति, टवर्ग का कोई वर्ण होगा तो ण, जैसे दण्ड और पवर्ग का कोई वर्ण होगा तो म, जैसे कुम्भ आएगा। अतः तवर्ग के संयोग के अतिरिक्त अन्य किसी जगह अनुस्वार के स्थान में 'न' लिखना ठीक नहीं। अतएव उपर्युक्त चन्चल, घन्टा, सन्मुख आदि रूप नितांत अशुद्ध हैं। परंतु इधर, संभवतः सं० ण के स्थान में हिंदी में न लिखने की प्रवृत्ति प्राचीन काल से ही प्रचलित होने के कारण, टवर्ग के साथ अनुस्वार की जगह 'न' लिखने की प्रवृत्ति अशुद्ध होने पर भी नित्यप्रति बढ़ती जा रही है और पंडा, मुंडन, टंडन आदि अनेक शब्द इस प्रकार लिखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त कभी कभी मूल अनुस्वार को अनुनासिक व्यंजन का स्थानापन्न जानकर उसकी जगह भी 'न' 'म' आदि लिख देते हैं, जैसे संस्कृत, संवत् आदि में। परन्तु अंतस्थ (य र ल व) तथा ऊष्म (श ष स ह) वर्ग के पूर्व अनुस्वार मूल अथवा आदिष्ट अनुस्वार होता है, अनुनासिक व्यंजन का स्थानापन्न नहीं, अतः उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता और संवत् आदि रूप नितांत अशुद्ध हैं।

सं० घ हिंदी में घ, ह हो जाता है घ→घ—घर्म से घाम, घृणा से घिन; घ→ह—मेघ से मेह, प्राघूर्ण से पाहुना, अरघट्ट से रहट, श्लाघा से सराहना।

चवर्ग—सं० च हिं० में च, छ, ज हो जाता है। च→च—कूर्चिका से कूची, चक्रवाक से चकवा, चर्वण से चबाना, चूचुक से चूची, च→ छ—तिर्यञ्च से तीछा, च→ज—कुंचिका से कुंजी।

सं० छ हिं में अपरिवर्तित रहता है, जैसे छत्र से छाता अथवा छतरी, छाया से छाँह इत्यादि।

सं० ज हिं० में ज, य, व में परिवर्तित हो जाता है,। ज→ज—जन्म से जनम (बो०); जम्बु से जामुन; ज→व अथवा य—राजा से राव अथवा राय।

टवर्ग—सं० ट हिं० में ट, ड (ड़) में परिवर्तित हो जाता है। ट→ट—रोटिका से रोटी; ट→ड (ड़—ड का ड़ की भाँति उच्चारण बहुत प्राचीन काल में ही होने लगा था):—कर्पट से कपड़ा, कटाह से कड़ाही, कीट से कीड़ा, वट से बड़, घट से घड़ा, खटिका से खड़िया, कटु से कड़वा कर्कटी से ककड़ी।

सं० ठ हिं० में ट ढ़ हो जाता है। ठ→ठ—शुण्ठि से सोंठ, कण्ठ से कण्ठ. ठ→ढ़—पठन पाठन, से पढ़ना पढ़ाना, मठिका से मढ़ी, पीठ से पीढ़ा।

सं० ड हिं० ड, ड़ र में परिवर्तित हो जाता है। ड→ड—डाकिनी से डाइन; ड→ड़—शुण्ड से सूंड़, मुण्ड से मूड़, पण्डित से पाँड़े; ड→र—पीडा से पीर।

सं० ण हिं० न में परिवर्तित हो जाता है, जैसे हरण से हरना, ऊर्ण से ऊन, निर्गुण से निर्गुन इत्यादि।

तवर्ग—सं० त हिं में त ट ड ल र व ई हो जाता है। त→त—दंत से दाँत तंतु से ताँत; त→ट—कर्तन से काटना वर्त्तिका से बटेर, मृत्तिका से मिट्टी कैवर्त्त से केवट; त→ड—गर्त

से गड्डु, त→ल—अतसी से अलसी, त→र—सप्तति से सत्तर, त→व—घात से घाव, त→ई—भ्राता से भाई, जामाता से जमाई, माता से माई।

सं० थ हिं० थ ह में परिवर्तित हो जाता है। थ→थ—साथी से साथ, कपित्थ से कैथ, कुलत्थ से कुलथी, थ→ह—कथन से कहना, शपथ से सौंह

सं० द हिं० द, ड में परिवर्तित हो जाता है। द→द—दान से देना, दश से दस, दक्षिण से दाहिना, द→ड—दंड से डंड, दंशन से डसना, दोरक से डोरा।

सं० ध हिं० में ध, ह हो जाता है। ध→ध—धुम से धुआँ धान्य से धान ध→ह—दधि से दही, साधु से साहु, वधू से बहू, गोधूम से गेहूँ।

सं० न हिं० में अपरिवर्तित रहता है, जैसे नासिक से नाक, निगरण से निगलना, गान से गाना। कभी कभी अल्पज्ञता के कारण न का ण हो जाता है, जैसे फाल्गुन से फाल्गुण*।

पवर्ग—सं० प हिं० में प, व, ओ, औ, फ, य आ में परिवर्तित हो जाता है प→प—पितृ से पिता पिप्पल से पीपल; प→व—ताप से ताव, सपाद से सवा, कपाट से कवाड़, द्वीपन से

---

* प्राचीन कविता में ण के स्थान में न प्रयुक्त होता था, परंतु आजकल गद्य तथा पद्य दोनों में शुद्ध तत्सम शब्द प्रयोग करने की प्रथा है। शुद्ध तत्सम की धुन में कभी कभी लोग न की जगह भी ण प्रयोग कर देते हैं। न तथा ण संबंधी एक निश्चित नियम है। यदि सस्वर 'न' ध्वनि के पूर्व ऋ, र अथवा ष हो या इन दोनों के मध्य कोई स्वर, कवर्ग, पवर्ग, य अथवा ह हो, तो 'ण' आयगा, अन्यथा 'न'। 'फाल्गुन' में न के पूर्व ऋ, र, अथवा ष नहीं है, अतः फाल्गुण ।

† मिलाइए 'फाल्गुने गगने फेने णत्वमिच्छन्ति बर्बराः'

खेवना; प→ओ अथवा औ — (चूँकि प का प्रायः व हो जाता है और अ व के ओ औ में परिवर्तित हो जाने का नियम है, अतः कभी कभी प से सीधा ओ, औ भी हो जाता है) जैसे वपन से वोना, स्वपन से सोना, कपर्द से कौड़ी, सपत्नि से सौत; प→फ़— प्लवंग से फ़लांग, पाश से फाँस, पोलिका से फ़लक प→य—पिपासा से प्यास, दीप से दिया प→ अा—कूप से कुआँ।

सं० फ़० अपरिवर्तित रहता है जैसे फ़लहार से फ़लहारी, फुल्ल से फूल।

सं० व हिं० में व, भ हो जाता है। व→व—दुर्बल से दुवला, वर्कर से वकरा, व→भ—बुभुक्षा से भूख, वाष्प से भाप।

सं० भ हिं० में भ, ह हो जाता है। भ→भ—भर्ता से भरता, भिक्षा से भीख; भ→ह—भू से हो (ना), शोभन से सोहना, भुण्ड से हुंडी, आभार से अहार, गंभीर से गहिरा, सौभाग्य से सुहाग।

सं० म हिं० में म, व, ओ, औ, व, भ हो जाता है। म→म—मूलिका से मूली, मयूर से मोर; म→व—ग्राम से गाँव, आमलक से आँवला, श्यामल से साँवला; म→ओ, औ—(क्योंकि म प्रायः व में परिवर्तित हो जाता है और अव के ओ औ में परिवर्तित हो जाने का नियम है, अतः कभी कभी म से भी ओ औ हो जाता है) जैसे भ्रमर से (भँवर और भँवर से) भौंर, चमर से चौरी, गमन से गौना; म→भ—महिष से भैंस।

अंतस्थ—सं० य हिं० में ज, ल में परिवर्तित हो जाता है। (तत्सम रूपों में य अपरिवर्तित रहता है जैसे युद्ध, यज्ञ, आर्य इत्यादि में।) य→ज—यम से जम, सूर्य से सूरज, यवनिका से जवनिका, यमुना से जमुना; य→ल—यष्टिका से लाठी, पयाण से पलान, पर्यंक से पलँग।

सं० र हिं० में र, ल, ड़ हो जाता है। र→र—रथ से रथ, राज्ञी से रानी; र→ल—हरिद्री से हल्दी; र→ड—मसुर से मसूड़ा

सं० ल हिं० में ल, र हो जाता है। ल→ल—कज्जल से काजल, कोकिल से कोयल, लाजा से लावा, शलाका से सलाख; ल→र—महिला से महिरारु, प्रक्षालन से पखारना, हल से हर, स्थाली से थरिया।

सं० व हिं० में ब, भ, औ, हो जाता है। व→ब—चर्वण से चबाना, व्रात से बारात, पूर्व से पूरब, विहार से बिहार; व→भ—वेष से भेष, विभूति से भभूत; व→ओ औ—इसके उदाहरण अव के साथ ऊपर दिए जा चुके हैं।

उष्म—सं० श हिं० में स, ह, छ हो जाता है। श→स—शत से सौ, शंख से संख, शून्य से सून अथवा सूना, वश से बस, वंश से बाँस, शाटिका से साड़ी, कोश से कोस; श→ह—पशु से पौहे, द्वादश से बारह, षोडश से सोलह, त्रयोदश से तेरह; श→छ—शल्कल से छिकला, शकट से छकड़ा

सं० ष हिं० में श, ह, स, ख हो जाता है। ष→श—कृष्ण से किशन, विष्णु से बिशन; ष→स—शीर्ष से सीस सर्षप से सरसों, आषाढ़ से असाढ़ वर्ष से बरस; ष→ह—पुष्प से पुहुप, ष→ख—भाषा से भाखा (ब्रo), भेष से भेख, वर्षा से बरखा (ब्रo), पुरुष से पुरुखा; प्राचीन हिंदी में सर्वत्र ष का प्रयोग होता था, परंतु आजकल तत्सम शब्दों के अतिरिक्त और सब जगह प्रायः ख का प्रयोग होता है।

सं० स हिं० में स, ह ष हो जाता है। स→स—सत्य से सत; स→ह—त्रिसप्तति से तिहत्तर; स→ष—वि० + सम = विषम, अनु + संग = अनुषंग, नि + सिद्ध = निषिद्ध।

सं० ह हिं० में अपरिवर्तित रहता है, जैसे हीरक से हीरा, हस्तिन् से हाथी, हस्त से हाथ।

सं० विसर्ग (:) हिं० में स हो जाता है, जैसे निःसंदेह से निस्संदेह, निःसंकोच से निस्संकोच इत्यादि।

ऊपर के उदाहरणों को ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि सं० क च ट त प श हिंदी में क्रमशः ग ज ड द ब ल स में परिवर्तित हो जाते हैं अर्थात् संस्कृत शब्दों के हिंदी रूपों में कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, अंतस्थ तथा ऊष्म वर्गों का प्रथम वर्ण प्रायः अपने वर्ग के तृतीय वर्ण में परिवर्तित हो जाता है।

(आ) *संयुक्त व्यंजन संबंधी*—संयुक्त व्यंजन तो अनेक हैं, मुख्य-मुख्य यहाँ दिये जाते हैं।

सं० क्ष हिं० में ख, छ, झ हो जाता है। क्ष→ख—कुक्षि से, कोख, द्राक्षा से दाख, तीक्ष्ण से तीखा, पक्ष से पंख अथवा पाख; क्षेप, से खेप-अक्षोट से अखरोट, प्रक्षर से पाखर अथवा पाखड़, क्षीर से खीर, क्षार से खार, लक्ष से लाख; क्ष→छ—क्षुर से छुरी, ऋक्ष से रीछ, क्षण से छन; क्ष—झ—क्षाम से झामा।

सं० त्र हिं० में त, ट, ड़, हो जाता है। त्र→त—त्रीणि से तीन, रात्रि से रात, गात्र से गात, अंत्र से आँत, सूत्र से सूत, मूत्र से मूत, त्र→ट—त्रुटि से टूटना; त्र→ड़—गंत्री से गाड़ी।

सं० ज्ञ हिं० में ग, ज, न में परिवर्तित हो जाता है। ज्ञ→ग—ज्ञान से ग्यान, आज्ञा से आग्या; ज्ञ→ज—यज्ञोपवीत से जनेऊ, ज्ञा से जानना ज्ञ→न—राज्ञी से रानी।

सं० त्य हिं में च हो जाता है। जैसे सत्य से साँच नृत्य से नाच मृत्यु से मीच।

सं० द्ध हिं० में ढ़ हो जाता है, जैसे वृद्ध वूढ़ा, वर्द्धकि से बढ़ई, इत्यादि।

सं० द्य हिं० में ज हो जाता है जैसे अद्य से आज, वाद्य से बाजा, द्यूत से जुआ, विद्युत् से बिजली, अन्नाद्य से आनाज; इत्यादि।

सं॰ ध्य हिं॰ में झ, ढ़ हो जाता है ध्य→झ—मध्य से मझोला, संध्या से साँझ, वंध्या से बाँझ, उपाध्याय से ओझा, युध्य (ति) से जूझ (ना) बुध्य (ति) से बूझ (ना), ध्य→ढ़—क्रुध्य (ति) से कुढ़ (ना)।

सं॰ व्य हिं॰ में ब हो जाता है, जैसे व्यतीत से बीता, व्याघ्र से बाघ, व्यापारी से बेपारी, इत्यादि।

सं॰ श्च हिं॰ में च्छ, छ हो जाता है। श्च→च्छ अथवा छः—वृश्चिक से बिच्छू अथवा बीछू, पश्चिम से पच्छिम अथवा पछाँ।

सं॰ श्र श्व हिं॰ में स हो जाते हैं। श्र→स—श्रावण से सावन, आश्रय आसरा; श्व→स—श्वसुर से ससुर, श्वश्रू से सास।

सं॰ ष्क हिं॰ में ख हो जाता है, जैसे शुष्क से सूखा, पुष्कर से पोखर।

सं॰ ष्ट हिं॰ में ट, ठ हो जाता है जैसे—ष्ट→ट—उष्ट्र से ऊँट, इष्टका से ईंट, ष्ट→ठ—दृष्टि से दीठ, मिष्टान्न से मिठाई, अष्ट से आठ।

सं॰ ष्ट हिं॰ में ट् हो जाता है, जैसे कोष्ट से कोट, षष्ठी से छट्ठी, इत्यादि।

सं॰ स्त हिं॰ में थ हो जाता है, जैसे मस्तक से माथा, स्तंभ से थंभ, पुस्तक से पोथी, स्तन से थन इत्यादि।

सं॰ स्थ हिं॰ में ट हो जाता है, जैसे स्थग से ठग, स्थान से ठाँव, स्था से ठड़ा (बो॰)।

सं॰ स्प हिं॰ में फ हो जाता है, जैसे स्फुरण से फुरना, स्पन्दन से से फाँदना इत्यादि।

सं॰ स्व हिं॰ में स हो जाता है, जैसे स्वामी से साईं, स्वाँग से सांग, स्वर से सुर, इत्यादि।

सं० ह्व हिं० में भ हो जाता है, जैसे जिह्वा से जीभ, गोजिह्वा से गोभी इत्यादि।

(२) *व्यंजनलोप*— (अ) आदिव्यंजन लोप—संस्कृत शब्दों के आदि ज श स का प्रायः हिंदी में लोप हो जाता है, जैसे ज—ज्वलन से बलना; श—श्मशान से मसान, श्मश्रु से मूँछ; स—स्थाली से थाली, स्थान से थान अथवा थाना, स्नेह से नेह, स्फूर्ति से फुर्ती।

(अ) *मध्यव्यंजन लोप*—संस्कृत शब्दों के मध्य में आनेवाले क ग च ज त द न प फ य र ल व ष विसर्ग (:) हिंदी में प्रायः लुप्त हो जाते हैं जैसे क—चिक्कण से चिकना, कुक्कुर से कूकर, कोकिल से कोइल; ग—दुग्ध, से दूध, गुग्गुल से गूगल; च—सूची से सुई; ज—लज्जा से लाज, कज्जल से काजल; त—उत्पत्ति से उपज, कपित्थम् से कैथ; द—उद्गार से उगाल, उद्धार से उधार, मुद्ग से मूँग, अर्द्ध से आधा न—ननांद से ननद प—पिप्पल से पीपल फ—फुफ्फुस से फेफड़ा य—शय्या से सेज र—प्रणाली से पनाली, कार्तिक से कातिक, कर्पूर से कपूर ल—फाल्गुन से फागुन, वल्गा से बाग, ष—निष्ठुर से निठुर, अंगुष्ठ से अंगूठा विसर्ग (:)—दुःख से दुख।

(इ) *अंत्यव्यंजन लोप*—संस्कृत शब्दों के अंत में आनेवाले क य र विसर्ग आदि हिंदी में प्रायः लुप्त हो जाते हैं, जैसे क—हीरक से हीरा; य—मूल्य से मोल, नित्य से नित, श्वशुरालय से सुसराल; र—आम्र से आम, व्याघ्र से बाघ; विसर्ग—यह तो संस्कृत में शब्दांत में प्रायः होता ही है, परंतु हिंदी में वह सदैव लुप्त हो जाता है, जैसे कसेरुः से कसेरू, बाहुः से बाँह, शिरः से सिर, चरणः से चरन।

(३) *व्यंजनागम*—(अ) आदिव्यंजनागम—ह—ओष्ठ से होंट, अस्थि से हड्डी, इत्यादि।

(अ) मध्यव्यंजनागम—प्राय 'क' का हिंदी में आगम हो जाता है, जैसे मुख से मुक्ख, दुख से दुक्ख (उच्च०)। कभी कभी अकारण ही संस्कृत शब्दों के हिंदी रूपों में अनुस्वार का आगम हो जाता है जैसे, श्वास, से साँस, उष्ट्र से ऊँट, अश्रु से आँसू।

(इ) अंत्यव्यंजनागम—संस्कृत शब्दों के हिंदी रूपों के अंत में प्रायः क व ल ह ड़ का आगम हो जाता है। क—अमूल्य से अमोलक; व—विटप् से बिरवा ल—वक से बगुला; ह—भ्रू से भौंह, चिल्ल से चील्ह; ड़—अंक से आँकड़ा पक्ष से पंखड़ी। कभी-कभी अकारण ही (ं) का आगम हो जाता है, जैसे यूका से जूं, भ्रू से भौं इत्यादि।

(४) *व्यंजनविपर्यय*—हिंस से सिंह, लघुक से हलुक, परिधान से पहिरना, ब्राह्मण से बाम्हन (बो०), गृह से घर, चिह्न से चिन्ह इत्यादि।

(५) *समीकरण*—पक्का से पका धूर्त से धुत्ता, सक्तु से सत्त, तप्त से तत्ता, उज्ज्वल से उज्जल इत्यादि।

(६) *विषमीकरण*— मत्त से मस्त, काक से काग, दरिद्र से दलिद्र (बो०) नवनीत से लौनी इत्यादि।

यहाँ यह याद रखना चाहिए कि यह आवश्यक नहीं है कि उक्त विकार संबंधी नियम सर्वत्र और सदैव ही लगें। अन्य ध्वनिनियमों की भाँति इनकी भी सीमाएँ हैं जो अपवाद स्वरूप प्रतीत होती हैं। उदाहरणार्थ शब्दांत में आनेवाले 'अ' का हिंदी उच्चारण में लोप हो जाने का नियम है, परंतु उसके साथ यह भी उपनियम है कि यदि 'अ' के पूर्व संयुक्त व्यंजन हो, जैसे हस्त, अम्ल, कृष्ण आदि में अथवा अ, य से युक्त हो और उसके पूर्व इ ई ऊ हो जैसे प्रिय तृतीय, सूर्य आदि में, तो 'अ' का उच्चारण में लोप नहीं होता। इसी प्रकार ष के ख हो जाने का नियम है, परंतु इसके साथ यह भी

प्रतिबंध है कि जिन शब्दों के मूल धातुओं में ष् होता है उनमें वह अपरिवर्तित रहता है, जैसे पुष् धातु से निर्मित पुष्ट, पौष आदि तथा शिष धातु से निर्मित शिष्य, शेष आदि शब्दों में ष अविकृत रहता है।

फारसी

भारत में मुसलमानी शब्दों का प्रचार मुसलमानों के भारत में आने पर ११-१२ वीं शताब्दी में हुआ। अरबी तुर्की शब्द सीधे हिंदी में नहीं आए। वे सब फारसी में से होकर आए हैं। ७ वीं शताब्दी में ईरानियों के अरबियों द्वारा पराजित होने पर ईरान, राज्य में अरबी सभ्यता के साथ साथ इस्लाम धर्म का प्रचार भी हुआ। इस धार्मिक आंदोलन के कारण सहस्रों अरबी तुर्की शब्द फारसी में आ गए। अतः हिंदी में आने के पूर्व अरबी तुर्की शब्दों की मूल ध्वनियाँ नष्टप्रायः हो चुकी थीं और उनका रूप फारसी के समान हो गया था। अतः हम समस्त मुसलमानी शब्दों को व्यावहारिक दृष्टि से फारसी मानकर फारसी हिंदी संबंधी ध्वनिपरिवर्तनों का विवेचन करेंगे।

हिंदी और फारसी में कुछ ध्वनियाँ समान हैं, परन्तु कुछ में भेद है। संस्कृत में फारसी خ ژ ز ض ط ع غ ف ق आदि के लिये कोई ध्वनि न थी, परंतु हिंदी में उनके लिए क्रमशः ख़ ज़ अ़ ग़ फ़ क़ आते हैं। प्रत्येक विदेशी भाषा की ध्वनियों को अपनी ग्राहक भाषा की ध्वनियों के अनुसार परिवर्तित होना पड़ता है, अतः कुछ फारसी शब्द तो तदनुसार विकृत हो ही जाते हैं। परंतु अनेक इस कारण भी परिवर्तित हो जाते हैं कि हिंदी विद्वानों का मत है कि फारसी आदि विदेशी शब्दों को हिंदी रूप देकर प्रयुक्त किया जाय और यह ठीक भी है इस प्रकार फारसी शब्दों के हिंदी में आने पर उनमें अनेक ध्वनिपरिवर्तन हो जाते हैं।

१—*स्वरविकार*—(१) *विशेष विकार*—अ (', ज़बर)—फ़ारसी विवृत अग्रस्वर 'अ' हिंदी में अर्द्ध विवृत अर्द्धस्वर 'अ' हो जाता है। जैसे نوکر (नौकर) से नौकर, هنر (हुनर) से हुनर, इत्यादि। यह भेद इतना सूक्ष्म है कि भाषा वैज्ञानिकों तथा ध्वनि-तत्व के ज्ञाताओं के अतिरिक्त अन्य साधारण व्यक्ति इसे शीघ्र नहीं समझ सकते। इसके अतिरिक्त लिखने में भी इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता। कभी कभी 'अ' आ उ में परिवर्तित हो जाता है, जैसे अ→आ—تلاش तलाश से तालाश, دوات (दवात) से दावात, اسامی (असामी) से आसामी; अ→उ—پلاو (पलाव) से पुलाव, محاورہ (महावरह) से मुहावरा।

अ़ (ع)—फ़ा० अ़ हि० में प्रायः अ आ हो जाता है, जैसे अ→अ—عقل (अक़्ल) से अक़्ल अथवा अकल, عرق (अ़रक़) से अर्क, تعلق (तअ़ल्लुक) से ताल्लुक, تعصب (तअ़स्सुब) से तास्सुब, عطار (अ़त्तार); से अत्तार अ→अ—تعداد (तअ़दाद) से तादाद, معاملہ (मुअ़ामलह) से मामला इत्यादि।

आ (آ)—फ़ा० आ प्रायः अपरिवर्तित रहता है, जैसे تاج (ताज) से ताज, رائے (राए) से राय; جاجم (जाजम) से जाजम इत्यादि। कभी आ का अ हो जाता है जैसे آچار (आचार) से अचार, مالیدہ (मालीदह) से मलीदा. داروغہ (दारोगा) से दरोगा, باورچی (बावर्ची) से बवर्ची इत्यादि।

इ (ِ, ज़ेर)—फ़ा० इ प्रायः अपरिवर्तित रहती है, जैसे ریاست (रियासत) से रियासत, حصہ (हिस्सा) से हिस्सा, इत्यादि। कभी कभी इ का अ हो जाता है, जैसे محنت (मिहनत) से मेहनत, صاحب (साहिब) से साहब इत्यादि।

ई (ی)—फ़ा० ई अपरिवर्तित रहती है, जैसे ایمان (ईमान) से ईमान, دلیل (दलील) से दलील। परंतु कभी कभी उच्चारण

में ई का इ हो जाता है, जैसे دیوانہ (दीवाना) से दिवाना, دیوار (दीवार) से दिवाल, دیوان خانہ (दीवानखाना) से दिवानखाना, इत्यादि।

उ (' पेश)—फा० उ हिं० में उ, अ, ऊ, ओ हो जाता है, जैसे उ→उ—منشی (मुंशी) से मुंशी, فرصت (फ़ुर्सत) से फ़ुर्सत; उ→अ—محکمہ (मुहकमा) से महकमा, حکومت (हुकूमत), से हकूमत, زبان (ज़ुबान) से जबान, उ→ऊ—دکان (दुकान) से दूकान, उ→ओ :—مہرہ (मुहरा) से मोहरा, محبت (मुहब्बत) से मोहब्बत; مہر (मुहर) से मोहर; محمد (मुहम्मद) से मोहम्मद, محلہ (मुहल्ला) से मोहल्ला, محتاج (मुहताज) से मोहताज इत्यादि।

ऊ (اُو)—फा० ऊ प्रायः अपरिवर्तित रहता है, जैसे خون (खून) से खून, خوب (खूब) से खूब; परंतु कभी कभी ह्रस्व हो जाता है, जैसे صابون (साबून) से साबुन।

फा० अइ अउ हिंदी में क्रमशः ऐ औ हो जाते हैं, जैसे अइ→ऐ—طیار (तइयार) से तैयार, شیطان (शइतान) से शैतान; अउ→औ—اوسط (अउसत) से औसत, موسم (मउसम) से मौसम।

(२) *स्वरलोप*—फा० अ उ व का हिं० में प्रायः लोप हो जाता है। अ—امیر (अमीर) से मीर, احاطہ (अहाता) से हाता, شاباش (शाबाश) से शाबश خشخاش (खशखाश) से खशखश, حوالدار (हवालदार) से हवलदार, مرض (मरज़) से मर्ज़, غرض (गरज़) से गर्ज़, उ—ترک (तुरक) से तुरक अथवा तुर्क, کمک (कुमुक) से कुमक, अर्द्धस्वर व—موافق (मुवाफ़िक) से माफ़िक; خوان (ख्वान) से (दस्तर) खान।

(३) *स्वरागम*—फ़ारसी शब्दों के हिंदी रूपों में प्रायः अ उ का आगम हो जाता है। अ—عمر (उम्र) से उमर, صبر (सब्र) से सबर, ختم (खत्म) से खतम; उ—حکم (हुक्म) से हुकुम।

(४) स्वरविपर्य्यय, जैसे پاسنگ (पासंग) से पसंगा।

(४) मात्राभेद—अ इ उ के दीर्घ या ई ऊ के ह्रस्व होने के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं।

२—*व्यंजनविकार*—(१) *विशेष विकार*—(अ) फा० क़ (ق), ख़ (خ) ग़ (غ), ज़ (ذ ز ض) फ़ (ف), श (ش) हिंदी रूप देने की धुन में क्रमशः क ख ग ज फ स कर दिए जाते हैं। क़→क—قلم (क़लम) से कलम; قینچی (क़ैंची) से कैंची, قیمت (क़ीमत) से कीमत, چاقو (चाक़ू) से चाकू, कभी कभी क़ ग में परिवर्तित हो जाता है जैसे تقاضا (तक़ाज़ा) से तगादा, نقد (नक़द) से नगद, بقچہ (बुक़चा) से बुगचा; ख़→ख—اخبار (अख़बार) से अखबार, خط (ख़त) से खत, ग़→ग—بغل (बग़ल) से बगल, غریب (ग़रीब) गरीब, باغ (बाग़) से बाग; ज़→ज—زلیبی (ज़लेबी) से जलेबी, زمین (ज़मीन) से जमीन; कभी कभी ज़ द में भी बदल जाता है जैसे کاغذ (काग़ज़) से कागद, फ़→फ—فرصت (फ़ुर्सत) से फ़ुर्सत, فقیر (फ़क़ीर) से फकीर, فوج (फ़ौज) से फौज, श→स—यद्यपि फा० श अपरिवर्तित रहता है परंतु कभी कभी श का स हो जाता है जैसे شربت (शर्बत) से सर्बत, شیرہ (शीरा) से सीरा, پشہ (पश्शा) से पिस्सू।

(आ) फारसी में शब्दांत में आनेवाली अनुच्चरित ہ (ह) ध्वनि हिंदी में आ हो जाती है जैसे اللہ (अल्लह) से अल्ला, راستہ (रास्तह) रास्ता, کنارہ (किनारह) से किनारा, آوارہ (आवारह) से आवारा, برادہ (बुरादह) से बुरादा इत्यादि।

(इ) फा० क ग ज द न प ब र व कभी कभी हिंदी में क्रमशः ख क ग त (ं) फ म ल म में परिवर्तित हो जाते हैं, क→ख—زکام (ज़ुकाम) से जुखाम, ग→क—چگن (चिगन) से चिकन ज→ग—نارنج (नारंज) से नारंगी, द→त—پلید (पलीद)

से पलीत, مسجد (मसजिद) से मसीत (बो०) مردود (मरदूद) से मरदूत; शब्दांत में आनेवाला न अनुस्वार में परिवर्तित हो जाता है जैसे خان (खान) से खाँ, جوان (जवान) से जवाँमर्द, میان (मियान) से (दर) मियाँ; प→फ—پلیتہ (पलीता) से फलीता; ब→म—بالائی (बालाई) से मलाई; र→ल—دیوار (दीवार) से दीवाल, مرہم (मरहम) से मलहम; व→म—پیوند (पैवंद) से पैमद, دیوانہ (दीवाना) से दिमाना (बो०), دیوان خانہ (दिवान-खाना) से दिमानखाना (बो०), कभी कभी फा० न भी ल में बदल जाता है, जैसे ناچار (नचार) से लाचार।

(२) *व्यंजनलोप*—फारसी व्यंजनों के हिंदी में लुप्त होने के अनेक उदाहरण पाए जाते हैं, जैसे چبوترہ (चबूतरा) से चौतरा مزدور (मज़दूर) से मजूर, زیادتی (ज़्यादती) से जाती, (बो०), صاحب साहब से (भाई) साब (बो०), ضد (ज़िद्द) से जिद, इत्यादि।

(३) *व्यंजनागम*—कभी कभी फारसी शब्दों के हिंदी रूपों में किसी किसी व्यंजन का आगम भी हो जाता है, जैसे الچی (इलाची) से इलायची, کمک (कुमुक) से कुम्मक इत्यादि।

(४) *व्यंजनविपर्यय*—कभी कभी फारसी शब्दों के हिंदी रूपों में व्यंजनविपर्यय हो जाता है, जैसे تمغہ (तमग़ा) से तगमा, امانت (अमानत) से अनामत, فتیلہ (फ़तीलह) फलीता इत्यादि।

अँगरेजी

भारत में अँग्रेजी राज्य होने तथा अंग्रेजी के अंतर्राष्ट्रीय तथा भारत की भाषा होने के कारण अनेक अँग्रेजी शब्द हिंदी में आ गए हैं। यद्यपि हिंदी में law तथा alone के 'a' के सूक्ष्म भेदों के द्योतक ध्वनिचिह्न ऑ तथा ॲ तक निर्मित हो गए हैं, तथापि

अँग्रेजी ध्वनियाँ विदेशी होने के कारण अपनी ग्राहक भाषा हिंदी के अनुसार कुछ न कुछ परिवर्तित हो ही जाती है।

१—*स्वरविकार*—(१) *विशेष विकार*—(अ) u (अ), a (आ), i (इ), ee (ई), u अथवा oo (उ) तथा oo अथवा u (ऊ) का उच्चारण तो हिंदी में ठीक प्रकार हो जाता है, जैसे club, master, bill, speech, jubilee, boot, आदि का उच्चारण हिंदी में क्रमशः क्लब, मास्टर, बिल स्पीच, जुबली, बूट आदि की भाँति होता है; परंतु America के a अथवा butter के u, office के o अथवा chalk, walk आदि के a, law, stall आदि के a अथवा lord, congress आदि के o, bird, third आदि की i. learn के ea अथवा berth की e, college की प्रथम e अथवा bench की e और magic, gas आदि के a का द्योतन ठीक प्रकार नहीं होता। यद्यपि इनके निकटतया द्योतक क्रमशः अ ॲ ऑ ऍ ऍ ऍ आदि निर्मित हो गए हैं तथापि ये अभी अप्रचलित हैं। इनके स्थान में प्रायः अ आ ए ऐ ही (ॲ ऍ के स्थान में अ ॲ ऑ के स्थान में आ, ऍ के स्थान में ऍ अथवा इ और ऍ के स्थान में ऐ) प्रयुक्त होते हैं। उक्त शब्द क्रमशः अमरीका, बटर, आफिस, चाक, वाक, ला, स्टाल, लार्ड, कांग्रेस, बर्ड, थर्ड, लर्न, बर्थ, कालिज, बेंच, मैजिक, गैस आदि लिखे तथा बोले जाते हैं।

(आ) कभी कभी अँग्रेजी शब्दों के हिंदी में आने में इ का उ जैसे biscuit से बिस्कुट, gentleman से जंटुलमैन इत्यादि तथा ए का अ ई जैसे engine से अंजन Appeal से अपील, April से अप्रेल, May से मई, Bombay से बंबई इत्यादि हो जाते हैं।

(इ) संयुक्तस्वर—ai (एइ)→ए—fail (फेइल) से फेल jail से जेल, train से ट्रेन इत्यादि। i (आइ अथवा ई)→ऐ—line (लाइन) से लैन, lime-juice से लैमजूस, pice से पैसा,

license से लैसंस, fire से फैर, type से टैप, quinine (कुनीन अथवा कुनाइन) से कुनैन इत्यादि।

ia (इअ)→य अथवा या—material (मैटीरिअल) से मैटीरियल, India से इंडिया, malaria से मलेरिया, Hysteria से हिस्टिरिया इत्यादि।

oa (ओउ)→ओ—coach (कोउच) से कोच, boat से बोट, coat से कोट इत्यादि। ou अथवा ow (अउ)→औ—pound (पउंड) से पौंड; compounder से कंपौंडर, town-hall से टौनहाल इत्यादि।

(२) *स्वरलोप*—अँगरेजी शब्दों के हिंदी रूपों में प्रायः स्वरलोप हो जाता है, जैसे Italy से इटली, America से अमरीका, deputy से डिप्टी, cigarette से सिगरेट, hotel से होटल, report से रपट, platoon से पल्टन, lamp से लम्प, bundle से बंडल इत्यादि।

(३) *स्वरागम*—अंग्रेजी शब्दों के हिंदी में आने पर उनमें अ इ आदि का आगमन हो जाता है, जैसे अ—form से फारम, serge से सरज, इ—glass से गिलास, blotting-paper से ब्लाइटिंगपेपर, school से इस्कूल (उच्च०) इत्यादि।

(४) *मात्राभेद*—कभी कभी अंग्रेजी शब्दों के हिंदी रूपों में मात्राभेद हो जाता है, जैसे ह्रस्व से दीर्घ—tin से टीन, mill से मील; दीर्घ से ह्रस्व—foot से फुट।

(२) *व्यंजनविकार*—(१) *विशेष विकार*—c (क)→ग—cork से काग, decree से डिगरी, recruit से रंगरूट ch (च)→त—Portugese से पुर्तगीज, christian से क्रिस्तान।

अं० d (ड) हिं० में द, ट हो जाता है। d→द—godown से गोदाम, December से दिसंबर, orderly से अर्दली,

dozen से दर्जन; d→ट—forward से फरवट (बो॰) lemonade से लमलेट, lord से लाट; अं॰ f (एफ) हिं॰ में फ प हो जाता है। f→फ – fee से फीस, firm से फर्म, football से फुटबाल, f→प—half-side से हाप साइड, डच troop से तुरुप; n (न)→ल—number से लंबर, note से लोट (बो;) r (र)→ड़—rubber से रबड़। s (ज़)→ज—music से म्यूजिक, museum से म्यूजियम; sh (श)→स—shilling से सिलिंग, shirting से सर्टिंग shutle से सटिल अथवा सिटिल; t (ट)→त—August से अगस्त, hospital से अस्पताल, pistol से पिस्तौल, botle से बोतल, tobacco से तंबाकू, captain से कप्तान; v अथवा w (व)→ब :—vote से बोट, wagon से बैगन, waistcoat से वास्कट।

(२) *व्यंजनलोप*—अँगरेजी, शब्दों के हिंदी रूपों में प्रायः किसी न किसी व्यंजन का लोप हो जाता है, जैसे September से सितम्बर, Puncture से पंचर, pantaloon से पतलून, hundrea-weight से हंडर वेट, receipt से रसीद इत्यादि।

(३) *व्यंजनागम*—जैसे guinea से गिन्नी, dozen से दर्जन, summon से सम्मन इत्यादि।

(४) *व्यंजनविपर्य्यय*— प्रायः विदेशी शब्दों में उच्चारण की सुविधा के लिए व्यंजनों में हेर फेर हो जाता है, जैसे desk से डैक्स, signal से सिंगल; general से जर्नल। कभी कभी अक्षर विपर्य्यय भी हो जाता है, जैसे coal-tar से तार कोल।

(५) *समीकरण तथा विषमीकरण*—विदेशी शब्दों के उच्चारण में प्रायः कठिनाई पड़ती है, अतः सुविधा के लिये उनमें कभी समीकरण और कभी विषमीकरण हो जाता है। (अ) समीकरण—flannel से फलालेन, lantern से लालटेन, lemonade से लमलेट, collector से कलट्टर, secretary से

सिकार, long-cloth से लंकलाट, theatre से टेटर इत्यादि।
(आ) विषमीकरण—पुर्त० lello से नीलाम, number से लंबर इत्यादि।

ध्वनिनियम

किसी भाषा के विभिन्न कालों के अथवा किसी कालविशेष की विभिन्न भाषाओं के ध्वनिविकारों की तुलना करने से प्रकट होता है कि वे किसी निश्चित नियम के अनुसार होते हैं, जिसे हम ध्वनिनियम कह सकते हैं; परंतु इसके मानी न तो यही हैं कि किसी भाषाविशेष के विभिन्न कालों में होनेवाले ध्वनिविकारों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा निर्धारित ध्वनिनियम प्रत्येक भाषा में लग सकता है और न यही कि किसी कालविशेष की विभिन्न भाषाओं में होनेवाले ध्वनिविकारों से संबंध रखनेवाला ध्वनि-नियम किसी भी काल में लागू हो सकता है, वरन् जो नियम जिस भाषा अथवा काल का है, वह केवल उसी में लग सकता है। सच तो यह है कि प्रत्येक ध्वनिनियम अपनी प्रारंभिक अवस्था में एक प्रवृत्ति होता है। कभी कभी तो किसी भाषाविशेष में किसी कारणवश कोई प्रवृत्ति चल निकलती है, जिसके अनुसार उसमें भिन्न भिन्न कालों में ध्वनिपरिवर्त्तन होते रहते हैं और कभी किसी कालविशेष में कोई प्रवृत्ति चल पड़ती है, जिसके अनुसार भिन्न-भिन्न भाषाओं में ध्वनिविकार होते हैं। अनेक प्रवृत्तियाँ तो परिवर्तित अथवा समाप्त हो जाती हैं, परंतु जो शेष रह जाती हैं, वे अपना कार्य पूर्ण करने पर, चाहे उनका कार्यक्षेत्र कितना ही संकुचित क्यों न हो, सिद्धांत का रूप धारण कर लेती हैं और ध्वनि-नियम कहलाने लगती हैं। अतएव प्रत्येक ध्वनिनियम का कार्य-क्षेत्र परिमित और काल नियमित है। जिसप्रकार प्राकृतिक नियम निरपवाद होते हैं, उसीप्रकार ध्वनिनियम में भी अपवाद नहीं होते। यदि किसी ध्वनिविकार की उसकी भाषा अथवा

काल संबंधी ध्वनिनियम द्वारा व्याख्या नहीं की जा सकती, तो इसके यह मानी नहीं हैं कि वह उस नियम का अपवाद है, क्योंकि ऐसे ध्वनिविकार प्रायः उपमान विभाषामिश्रण, मस्तिष्क की स्वछंदता, ग्राम्य तथा प्राचीन मृत शब्दमिश्रण आदि बाह्य कारणों द्वारा सिद्ध किए जा सकते हैं। वास्तव में बात यह है कि ध्वनिनियमों का संबंध मुखजन्य तथा श्रुतिजन्य विकारों से अर्थात् आंतरिक कारणों से है, बाह्य से नहीं; परंतु भाषा के विकास में बाह्य कारणों का विशेष हाथ रहता है, अतः ध्वनि-नियमों पर भी बाह्य प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। यदि कोई भाषा बाह्य कारणों से पृथक् रहे अथवा हम उसके बाह्य प्रभाव को अलग कर दें, तो शुद्ध अथवा निरपवाद ध्वनि नियम बन सकता है। अतएव प्रत्येक ध्वनिनियम की कुछ सीमाएँ होती हैं, जिनके बाहर वह नहीं जा सकता। दो एक उदाहरणों से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। यथा, (१) ग्रिम के द्वितीय वर्ण परिवर्तन के अनुसार निम्न-जर्मन K, T, P, का उच्च जर्मन में Ch. Z, F या Pf. हो जाता है; परंतु जब K, T, P, 'S' के पश्चात् आते हैं, तो उनमें कोई विकार नहीं होता। 'T' के उदाहरण से यह विषय स्पष्ट हो जायगा—जैसे, अंगरेजी Tongue, Timber, Ten उ० ज० में क्रमशः Znnge, Zimmer, Zehn आदि हो जाते हैं; परंतु अंगरेजी Steel, Stool, Straw आदि क्रमशः Stahl, Stuhl, Stroh आदि ही रहते हैं। इसका कारण यह है कि नियम K. T. P. असंयुक्त वर्णों का है, Sk. St. Sp संयुक्त-वर्णों का नहीं। (२) अंगरेजी Beget, Spake, Break के भूतकालिक रूप प्राचीन काल में Begat; Spake, Brake आदि होते थे; परंतु आजकल अपने कर्मवाचक कृदंत Begot, Spoken, Broken आदि के सादृश्य पर a का o में आदेश

होकर Begot. Spoke. Broke आदि हो गए हैं। (२ ग्रिम के प्रथम वर्णपरिवर्त्तन के अनुसार अंगरेजी K (c) के स्थान में संस्कृत में ना अथवा ज (g) होना चाहिए; परंतु अंगरेजी Camel तथा सं० क्रमलेक में ऐसा नहीं है। इसका कारण यह है कि क्रमलेक शुद्ध संस्कृत शब्द नहीं है, यह अरबी جمل (जमल) है। इसका संस्कृत में सेमिटक से आगमन हो गया है। इसी प्रकार ग्राम्य तथा प्राचीन मृत शब्दों में भी, जिनको प्रायः कवि तथा लेखक लोग प्रयोग किया करते हैं, कोई ध्वनिनियम नहीं लगता। अतः इस प्रकार के अपवाद वास्तविक अपवाद नहीं, अपितु अपवाद स्वरूप हैं, जिनका हम बाह्य कारणों द्वारा समाधान कर सकते हैं। इनको हम ध्वनि नियम की सीमाएँ कह सकते हैं।

सारांश यह है कि किसी ध्वनिनियम की व्याख्या करते समय उनके क्षेत्र, काल तथा सीमाओं का हमें विशेष ध्यान रखना चाहिए, ध्वनिनियम तो अनेक हैं; परंतु यहाँ हम स्थानाभाव के कारण सर्वप्रसिद्ध ग्रिमनियम तथा उससे संबंधित नियमों की विवेचना करेंगे।

ग्रिमनियम—यद्यपि ग्रिमनियम का पता आर० के० रास्क (१७८७ १८३२ ई० ई० प०) ने ग्रिम से पहले ही लगा लिया था; परंतु उसका पूर्ण तथा वैज्ञानिक प्रतिपादन जैकब ग्रिम (१७८५-१८६३ ई० प०) ने किया। अतः यह नियम उसी के नाम से प्रसिद्ध है। इसको अँगरेजी में sound shifting और जर्मन में Laut verschiebung कहते हैं। इसका संबंध मूल भारोपीय स्पर्श व्यंजन ध्वनियों से है। ग्रिमनियम का मुख्य उद्देश्य कंठ्य, दंत्य तथा ओष्ठ्य स्पर्शों का, क्लासिकल (classical) तथा निम्न-जर्मन और निम्न जर्मन तथा उच्च जर्मन भाषावर्गों में पारस्परिक-ध्वनिपरिवर्तन दिखाना है इसके दो भाग हैं—प्रथम वर्णपरि-वर्तन, तथा द्वितीय वर्णपरिवर्तन।

प्रथम वर्णपरिवर्तन—१८२२ ई० प० में जैकब ग्रिम ने संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, गाथिक, अंगरेजी, जर्मन, आदि भारोपीय भाषाओं के शब्दों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा यह निश्चित किया कि प्रागैतिहासिक काल में मूल भारोपीय स्पर्श व्यंजन ध्वनियों का विकास गाथिक, अंगरेजी आदि निम्नजर्मन वर्ग की भाषाओं में संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि क्लासिकल वर्ग की भाषाओं की अपेक्षा भिन्न प्रकार से हुआ और कुछ वर्ण परिवर्तन ऐसे हैं, जो एक ओर क्लासिकल वर्ग की भाषाओं में और दूसरी ओर निम्नवर्ग की भाषाओं में पाए जाते हैं। अतः प्रथम वर्ण परिवर्तन द्वारा क्लासिकल वर्ग की भाषाओं का निम्नजर्मन वर्ग की भाषाओं से संबंध दिखाया गया है। यह वर्णपरिवर्तन क्राइस्ट के जन्म के पूर्व जर्मन भाषा के भिन्न भिन्न भाषाओं में विभाजित होने से पहले हो चुका था। यह नियम इस प्रकार है—

( ) क्लासिकिल वर्ग के K, C, Q, (क, स श), T (त), P (प) अघोष स्पर्श निम्न जर्मन वर्ग में क्रमशः H अथवा Hw (wh) Th. F. महाप्राण घर्ष हो जाते है, जैसे K H—सं० कः लै० quis का गा० Hwas ऐ० से० Haw अं० Who, सं० कद् लै० quod ग्री० Kos का ऐ० से० Hwoet अं० What गा० Hwo सं० शृंग (सींग) का अं० Horn, सं० श्वन, ग्री० Kuon, लै० Canis का अं० Hound; T Th—सं० तद्, ग्री० to का गा० that अं० that; सं० त्वं लै तथा ग्री० tu का अं० thou, सं० त्रि० ग्री० treis लै० tres का गा० threisऐ से thri अं० three; P F—सं० पाद लै० pedis ग्री० podos का गा० fotus ऐ० से० fot अं० foot. सं० पत्र लै० penna ग्री० pteron का० अं० feather (२) क्लासिकल वर्ग के G (ग, ज), D (द), B (ब) सघोष स्पर्श के स्थान में निम्न जर्मन वर्ग में K (c) T. P. अघोष स्पर्श आते हैं जैसे G. K—सं० जनः

ग्री० genos लै० genus का गा० kuni ऐ० से० cyn अं० kin, सं० गो का ऐ० से० cu अं cow; DT सं० द्वि० लै० duo ग्री० dyo का गा tvai ऐ० से० twa अं० two, सं० द्रुम ग्री० drys का गा० trin अं० tree; B P—लै० Cannabis का० ऐ० से० hoenep अं० hemp। (३) क्लासिकल Gh (घ, सं० तथा लै० ह) Dh (घ), Bh (भ) महाप्राण स्पर्श के स्थान में निम्न जर्मन G. D. B. सघोष स्पर्श आते हैं—जैसे Gh→G — सं० हर्यतिका गा० gairan; ऐ० से० georn; सं० हंस लै० anser (haser) का ऐ० gos अं goose ; लै० hortus का गा० gards अं० garden; Dh→D—सं० धा का ऐ० से० don अं० do, सं० धितिका अं० deed; Bh→B— सं० भ्रातृ का अं brother, ऐ० से० brother, सं० भृ का गा० bairan अं bear उक्त वर्णपरिवर्तन को संक्षेप में निम्न प्रकार से प्रकट कर सकते हैं—

क्लासिकल	निम्न जर्मन
(१) K (क, सं श) T (त) P (प)	H. TH F
(अघोष स्पर्श)	(महाप्राणघर्ष)
(२) G (ग ज), D (द), B (ब)	K (c) T P
(सघोप स्पर्श)	(अघोष स्पर्श)
(३) Gh (घ सं० तथा लै० ह), Dh (घ),	G. D. B. Bh (भ)
(महाप्राण स्पर्श)	(सघोष स्पर्श)

द्वितीय वर्णपरिवर्तन—जिस प्रकार प्रथम वर्णपरिवर्तन द्वारा क्लासिकल वर्ग की भाषाओं का निम्न जर्मन वर्ग की भाषाओं से संबंध दिखाया गया है; ठीक उसी प्रकार द्वितीय वर्णपरिवर्तन द्वारा निम्न जर्मन वर्ग की भाषाओं का उच्च जर्मन वर्ग की भाषाओं से संबंध दिखाया गया है। इसका उद्देश्य भिन्न जर्मन भाषावर्ग के संबंध में उच्च जर्मन भाषावर्ग में होनेवाले भारोपीय स्पर्श

ध्वनिसंबंधी वर्णपरिवर्तन दिखाना है। ये वर्णपरिवर्तन उच्च जर्मन लोगों के ऐंग्लोसेक्सन से पृथक् होने के पश्चात् सातवीं शताब्दी में हो चुके थे। इस वर्णपरिवर्तन का विशेष संबंध केवल ट्यूटानिक अथवा जर्मनिक भाषाओं से है। यह नियम इस प्रकार है—(१) निम्न जर्मन भाषावर्ग में (H). Th. F. महाप्राण घर्ष का उच्च जर्मन भाषावर्ग में (H). D. B. (v)—सघोष स्पर्श हो जाता है, जैसे Th→D—गा० thata अं० that का ज० das, अं० thread का ज० draht; F→B (v)—अं० leaf का० ज० laub, अं० father गा० fader का प्रा० उ० ज० Vatar (२) निम्न-जर्मन वर्ग के K (c) T. P अघोष स्पर्श के स्थान में उच्च जर्मन वर्ग में क्रमशः Ch. ZF. अथवा Pf, महाप्राण घर्ष आते हैं, जैसे K (c)—ch—अं० scum का ज० schaum; T→Z—गा० tvai ऐ० से० twa अं० two का ज० zwei; गा० tunthus अं tooth का प्रा० उ० ज० Zand, ज० zahn; P→F, Pf—अं० pray का ज० fragen, अं० leap का ज० laufen, अं० pool path plug pole आदि का क्रमशः ज० pfuhl Pfad Pflock Pfahl आदि (३) जहाँ निम्न जर्मन वर्ग में G. D. B. सघोष स्पर्श आते, वहाँ उच्च जर्मन वर्ग में K T. P. अघोष स्पर्श आते हैं, जैसे G→k—गा० gards अं० garden का प्रा० उ० ज० karto; D→T—अं० deer का प्रा० उ० ज० tior; B→P—गा balths अं० bold का प्रा० ज० Pald। द्वितीय वर्णपरिवर्तन को संक्षेप में निम्न प्रकार प्रकट कर सकते हैं—

निम्न जर्मन	उच्च जर्मन
(१) (H) Th F.	(H) D, B (v)
(महाप्राण घर्ष)	सघोष स्पर्श
(२) K (c) T, P.	Ch. Z F, Pf.
(अघोष स्पर्श)	(महाप्राण घर्ष)

(३) G. D. B. K. T. P.

(सघोष स्पर्श) (अघोष स्पर्श)

समन्वित रूप अथवा ग्रिमनियम—ग्रिमनियम में प्रथम तथा द्वितीय दोनों वर्णपरिवर्तनों का समावेश हो जाता है। इस समन्वित ग्रिमनियम द्वारा क्लासिकल भाषा वर्ग के संबंध में निम्न जर्मन भाषावर्ग में और निम्न जर्मन भाषावर्ग के संबंध में उच्च जर्मन भाषावर्ग में होनेवाले मूल भारोपीय स्पर्शसंबंधी ध्वनिपरिवर्तनों का विवेचन होता है, अर्थात् यह क्लासिकल, निम्न जर्मन तथा उच्च जर्मन भाषावर्गों में होनेवाले स्पर्शसंबंधी परिवर्तनों का परस्परिक संबंध प्रकट करता है। इसका संबंध केवल कंठ्य, दंत्य तथा ओष्ठ्यस्पर्श व्यंजन ध्वनियों से है। यह नियम इस प्रकार है—

(१) क्लासिकल K, C, Qu, (क, सं० श) T (त). P (प). अघोष स्पर्श क्रमशः निम्न जर्मन H, Hw, Wh. Th. F महाप्राण घर्ष और, उच्च जर्मन H. D. B (v) सघोष स्पर्श के हो जाते हैं। (२) क्लासिकल वर्ग के G (ग ज) D (द), B (ब) सघोष स्पर्श के स्थान में निम्न जर्मनवर्ग में K. C. T. P. अघोष स्पर्श और उच्च जर्मन में Ch. Z. F, Pf. महाप्राण घर्ष आते हैं (३) जहाँ क्लासिकल भाषाओं में Ch (ख, सं० ख) Th (थ), F, Ph (फ) महाप्राण घर्ष अथवा Gh (घ, सं० तथा लै० ह), Dh (ध), Bh भ), महाप्राणस्पर्श पाए जाते हैं, वहाँ निम्न जर्मन भाषाओं में G. D B संघोप स्पर्श और उच्च जर्मन भाषाओं में K. T. P. अघोप स्पर्श आते हैं। इसको संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं—

क्लासिकल	निम्न जर्मन	उच्च जर्मन
(१) अघोष	महाप्राण (घर्ष)	सघोष
(२) सघोष	अघोष	महाप्राण (घर्ष)
(३) महाप्राण (स्पर्श अथवा घर्ष)	सघोष	अघोष

निम्नलिखित उदाहरणों से यह नियम स्पष्ट हो जायगा

क्लासिकल	निम्न जर्मन	उच्च जर्मन
(१) K. T. P.	H. Th. F.	H. D. B
K — लै० cord, ग्री० kard	H — गा० hairto अं० heart	H — प्रा० उ० ज० herz
लै० octo सं० अष्ट	गा० ahtan	प्रा० उ० ज० ateh
लै० claudus	अं० half	प्रा० उ० ज० halz
T — सं० त्वं०, ग्री० तथा लै०	Th — गा० तथा ऐ० से० thu	D — उ० ज० du
tu लै० tectum	गा० thak, अं० thatch	प्रा० उ० ज० dach
सं० तनुः, लै० tenuis	अं० thin	प्रा० उ० ज० dunni, ज० dunn
P — सं० पितृ, ग्री० तथा लै०	F — गा० fader अं० father	B — प्रा० उ० ज० Vatar
pater लै० Rapina	ऐ० से० Reaf	प्रा० उ० ज० Roub
(२) G. D. B	K. T. P.	Ch. Z F.
G — ग्री० gonu	K — अं० knee	Ch — प्रा० उ० ज० chnio
लै० ager, ग्री० agros	अं० acre, गा० akrs	प्रा० उ० ज० achar
लै० granum	गा० kaurn, अं० corn	प्रा० उ० ज० chorn
D — लै० dingua	T — अं० tongue ऐ० से० tunge	Z — प्रा० उ० ज० Zunga ज० Zunge
ग्री० dero	ऐ० से० teran अं० tear	ज० Zehren

क्लासिकल	निम्न जर्मन	उच्च जर्मन
B ग्री० Kaunabis	P—श्रं० hemp	F - प्रा० उ० ज० hanaf
		ज० hanf
(३) Ch. Th. F. अथवा Gh. Dh. Bh,	G. D. B.	K. T. P.
Ch, Gy—ग्री० chthes, सं० ह्य ! ग्री० chen, सं० हंस लै० anser (hanser)	G—गा० gistra ऐ० से० geos tra ऐ० से० gos श्रं० goose	K—प्रा० उ० ज० Kestre प्रा० उ० ज, Kans
Th, Dh—ग्री० thugater, सं० दुहिता (हि० धी)	L—गा० dauhtar, श्रं० daughtre,	T—प्रा० उ० ज० thotar
ग्री० ther	श्रं० deer	प्रा० उ०ज० tior
F, Bh—लै० frango	L—गा० brikan, श्रं० break	P--प्रा० उ० ज० Prechan
ग्री० phu, लै० fu सं० भ्र० (भराभि)	श्रं० be	प्रा० उ० ज० pim
	गा० bairan श्रं० bear	प्रा० उ० ज० peran
K—लै० piscis	गा० fisks	उ० ज० fisch
T – ग्री० stallo	श्रं० stall	ज० stall
ग्री० astor, लै० stella	श्रं० star	ज० stern
सं० अस्ति, लै० est	गा० ist	उ० ज० ist
P—ग्री० spathe. लै० spatha	श्रं० spade	ज० spaten

सारांश यह है कि क्लासिकल, निम्न जर्मन तथा उच्च जर्मन तीनों भाषावर्गों में मूल भारोपीय स्पर्शों का विकास तथा ध्वनि-परिवर्तन एक दूसरे से भिन्न प्रकार से हुआ है; परंतु फिर भी एक निश्चित नियम के अधीन होने के कारण उनके पारस्परिक संबंध हैं। मैक्समूलर ने तो इस त्रिविध संबंध के कारण मूल भारोपीय भाषा को ही उक्त तीन वर्गों में विभक्त मान लिया है—क्योंकि प्रथम तो ट्यूटानिक भाषाओं के अतिरिक्त शेष सभी भारोपीय भाषाओं का क्लासिकल वर्ग की भाषाओं से सादृश्य है, द्वितीय अनेक वर्णपरिवर्तन ऐसे हैं, जिनमें समन्वित ग्रिम-नियम ठीक प्रकार से नहीं बैठता, अर्थात् या तो वे क्लासिकल तथा निम्न जर्मन में ही पाए जाते हैं। या निम्न जर्मन तथा उच्च जर्मन में ही, तीनों वर्गों में नहीं पाए जाते। यह त्रिविध संबंध न तो अविच्छिन्न रूप से घनिष्ट ही है और न मूल भारोपीय भाषा के त्रिविध विभाग का द्योतक ही। वास्तव में ग्रिम नियम पूर्णतया सदोष है। प्रथम तो वह क्राइस्ट के पूर्व तथा सातवीं शताब्दी दो भिन्न-भिन्न कालों से संबंध रखता है। द्वितीय इसका क्षेत्र संकुचित है और वर्णपरिवर्तन का संबंध केवल ट्यूटानिक भाषाओं से है, क्योंकि उच्च जर्मनवर्ग की प्रा० उ० ज० भाषा के वर्णपरिवर्तन निम्न जर्मनवर्ग में पाए जानेवाले वर्णपरिवर्तनों के पश्चात् के हैं अतः यह उनमें भी ठीक प्रकार नहीं बैठता और प्रा० उ० ज० में इसके अनेक अपवाद पाए जाते हैं। सच तो यह कि द्वितीय वर्ण-परिवर्तन तो केवल जर्मन भाषाओं की विशेषता मात्र है, ध्वनि-नियम नहीं। हाँ, प्रथम वर्णपरिवर्तन अवश्य निर्दोष है, और वही आजकल ग्रिमनियम के नाम से पुकारा जाता है। तृतीय न तो यह पूर्ण ही है और न इसकी सीमाएँ ही निर्धारित हैं, अतः यह सापवाद है। लाटनर (Lottner) ने इस प्रकार के अनेक अपवाद दिखाए हैं, जिनमें से कुछ का स्वयं ग्रिम ने उपनियमों के रूप में

विवेचन किया है और शेष को ग्रासमान तथा वर्नर के उत्तरवर्ती विद्वानों ने समझाने का प्रयत्न किया है। अतएव ग्रिम के उपनियम तथा ग्रासमान और वर्नर के नियम ग्रिमनियम के पूरक स्वरूप हैं।

ग्रिम के उपनियम—

(क) विशेष अपवाद—

(१) * गाथिक B. P. F G. K. H. D. T. Th.

शुद्ध प्रा० उ० ज०

P. Ph. F. CH, H, T. Z. D.

(२) ग्रिमनियम असंयुक्त वर्णों में लगता है, संयुक्त में नहीं; अतः मूल भारोपीय Sk, St, Sp, के k. T. P. में S. के संयोग के कारण कोई विकार नहीं होता, जैसे—शुद्ध अंग्रेजी शब्दों में sk का sh हो जाना जैसे=ग्री० skaphos लै० s apha का अं० ship; ग्री० skotos, जि० skad का अं० shade इत्यादि उक्त उपनियम का अपवाद नहीं है, अपितु अंगरेजी की प्रकृति है, क्योंकि sky, skill, school आदि विदेशी शब्दों में ऐसा नहीं होता है।

उक्त संयुक्त वर्ण sk, st, sp की भाँति kt तथा pt में t अविकृत रहता है, जैसे kt—ग्री० Okto लै० Octo का गा० ahtan तथा ज० acht; pt—लै० neptis सं० नता का प्रा० उ० ज० nift. लै० captus का गा० hafts, इत्यादि।

(ख) *ग्रासमान का उपनियम*—लाटनर के शेष विरोधों में से कुछ का परिहार ग्रासमान ने किया। ग्रिम नियम के अनुसार निम्न जर्मन G. D. B. क्लासिकल Gh (घ=सं० ह) Dh (ध) Bh (भ) के स्थानापन्न हैं, अतः गा० daubs तथा bindan का क्रमशः सं०

---

* F Max Muller-The Scieuceof Jangnage' Vol II, page 267.

दभ् तथा बोधति का स्थानापन्न होना इसका स्पष्ट अपवाद है, क्योंकि, गा० d, b, सं० द, ब के स्थानापन्न न होकर ध, भ के स्थानापन्न होने चाहिए। इसका समाधान ग्रासमान ने किया। उसने संस्कृत तथा ग्रीक का अध्ययन करके यह नियम खोज निकाला कि संस्कृत ग्रीक आदि क्लासिकल भाषाओं में किसी अक्षर (syllable) के आदि तथा अंत दोनों में सोष्म स्पर्श (aspirates) प्राण-ध्वनि अथवा महाप्राण स्पर्श नहीं आ सकते अर्थात् एक अक्षर में एक से अधिक प्राणध्वनि नहीं रह सकती। यदि सोष्म स्पर्श वाले दो अक्षर द्वित्व अथवा अव्यवहित रूप से आते हैं, तो पाणिनि के "पूर्वोऽभ्यासः" सूत्र (पाणिनीयाष्टाध्यायी ६।१।४) के अनुसार अभ्यास में उनमें से प्रथम निरुष्म हो जाता है। उदाहरणार्थ 'हा' धातु का द्वित्व होने पर बिना सूत्र लगे 'हहाति' रूप होना चाहिए; परंतु अभ्यास में 'जहाति' हो जाता है। इसी प्रकार सं० दधाति, बिभेति तथा बभार में क्रमशः 'धा' 'भी' तथा 'भृ' धातुओं की पुनरावृत्ति है। इनके 'धाधाति, भी भीति तथा भृभृग्र' जैसे रूप होने चाहिए थे, क्योंकि सोष्म स्पर्शवाले दो अक्षर द्वित्व रूप से एक साथ आ नहीं सकते, अतः अभ्यास में ध तथा भ परिवर्तित होकर द तथा ब हो गए। अतएव संभव है कि मूल भारोपीय भाषाओं में दभ् तथा बुध् धातुओं के आरंभिक वर्ण सोष्म स्पर्श ध, भ रहे हों। अतः उक्त अपवाद नियमानुकूल है। संक्षेप में ग्रासमान के उपनियम को इस प्रकार कह सकते हैं, चूँकि ग्रीक तथा संस्कृत क्लासिकल भाषाओं में दो अव्यवहित सोष्म स्पर्शवाले अक्षरों में से प्रथम अभ्यास में दो निरुष्म स्पर्शवाला हो जाता है, अतः जहाँ निम्न जर्मन G. D. B क्लासिकल G (ग, ज) D (द) B (ब) के स्थानापन्न हो अर्थात् कोई परिवर्तन न हो, वहाँ यह समझना चाहिए कि क्लासिकल G. D. B. सोष्म स्पर्श Gh. Dh. Bh. के स्थानापन्न हैं।

(ग) वर्नर का उपनियम—ग्रासमान के उपनियम के पश्चात् लाटनर के जो कुछ विरोध शेष रहे, उनका समाधान वर्नर ने किया। ग्रिम नियम के अनुसार क्लासिकल K (क, श), T (त) p (प) के स्थान में निम्न जर्मन H Th F. आते हैं; परंतु* k—लै० juvencus सं० युवशसका गा० juggs अं० young, T—लै० centum सं० शतम् का गा० hund अं० hundred; p—लै० lippus सं० लिम्पामि का गा० bileiba, लै० seotem सं० सतम् का गा० sibun, इत्यादि में क्लासिकल K. T. P. के स्थान में निम्न जर्मन वर्ग में G. D. B. आते हैं, जो ग्रिमनियम के प्रतिकूल हैं। इसका निराकरण वर्नर ने किया है। वर्नर का कहना है कि ग्रिमनियम स्वर की स्थिति पर निर्भर है। यदि क्लासिकल भाषाओं में मूल भारोपीय K.T.P.S. के अव्यवहित पूर्व में कोई उदात्त स्वर होता है, तो उनमें ग्रिमनियम लगता है, अर्थात् उनके स्थान में निम्नजर्मन वर्ग में H. th. F. S. आते हैं, अन्यथा नहीं। यदि उदात्त स्वर उनके पश्चात् होता है, तो उनके स्थान में G (Gw). D. B. R. (Z) आते हैं। सारांश यह है कि यदि क्लासिकल K T P S. का पूर्व स्वर उदात्त है तो उनके स्थानापन्न निम्नजर्मन H, Th. F. S. होंगे। और यदि पर स्वर उदात्त है, तो G (Gw) D, B R, (Z) होंगे। k. T. P S. के पूर्व S के आने से बने हुए संयुक्त वर्ण—अर्थात् sk, st, sp, ss तथा pt, ps, ft—इसके अपवाद स्वरूप हैं। उपर्युक्त उदाहरणों में उदात्त स्वर श (क), त, प के पश्चात् हैं, अतः इनके स्थान में G. D. B. आए हैं। कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जो वर्नर नियम के अपवाद प्रतीत होते हैं—जैसे भ्राता में त के पूर्व उदात्त स्वर है, अतः उसके गा० brothar, ऐ० से० brothor

*डा० मंगलदेव शास्त्री। 'भाषाविज्ञान', पृ० २१२।

तथा अं० brother ग्रिमनियमानुकूल हैं। सं० माता, लै० mater तथा सं० पिता, ग्री० लै० pater में उदात्त त के पश्चात् है, अतः इनके क्रमशः ऐ० से० moder तथा ऐ० से० faedar, गा० fadar रूप आते थे; परंतु अं० brother के मिथ्या सादृश्य पर इनके भी अं० रूप mother तथा father हो गए। ऐसे अपवाद तो उपमान आदि से सिद्ध हो जाते हैं, परंतु इनके अतिरिक्त निम्न जर्मन वर्ग की संज्ञा, सबल क्रियाओं (strong verbs) के रूप आदि कुछ अन्य भी ऐसे स्थान हैं, जहाँ वर्नर का उपनियम पूर्णतः नहीं लगता।

उक्त ध्वनिनियम की भाँति और भी अनेक भाषा तथा काल-संबंधी ध्वनिनियम हैं।

अध्याय ६

हिंदी का शब्दभंडार

कोई भी भाषा ऐसी नहीं है जिसका प्रारंभिक स्वरूप परिवर्तित न हुआ हो, परिवर्तनशीलता भाषा का जीवन है, संमिश्रण उसका स्वभाव है; तदनुसार हमारी हिंदी भी नित्यप्रति परिवर्तित होती रहती है और उसमें अन्य भाषाओं के शब्द आते जाते रहते हैं। वास्तव में हिंदी अनेक भाषाओं के शब्दों की खिचड़ी है। उसमें विशेषतः आर्य, अनार्य तथा विदेशी तीन प्रकार के शब्द हैं।

क) *आर्यशब्द*—भारतीय आर्य भाषाएँ दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं, प्राचीन तथा आधुनिक। प्राचीन वर्ग की सर्वप्रधान भाषा संस्कृत है; आधुनिक वर्ग के अंतर्गत बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि देशी भाषाएँ हैं, यद्यपि संस्कृत की ऋणी तो समस्त संसार की भाषाएँ हैं तदपि अधिक काल तक उत्तरी भारत की राष्ट्र तथा धर्मग्रंथों की भाषा रहने के कारण उसका आधुनिक भाषाओं के और विशेषतः हिंदी के शब्दसमूह पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। हिंदी तथा अन्य आधुनिक भाषाओं का संस्कृत से वैसा ही संबंध है जैसा इटैलिक, स्पेनिश, फ्रेंच आदि का लैटिन से. जिस प्रकार लैटिन के अनेक शब्द इटैलिक, फ्रेंच आदि में पाए जाते हैं उसी प्रकार संस्कृत के हिंदी में। संस्कृत को हिंदी की आदि जननी अथवा उद्गम कहना चाहिए, क्योंकि भारत की समस्त आधुनिक भाषाएँ संस्कृत के लौकिक स्वरूप प्राकृत अथवा उसके किसी न किसी विकसित रूप से निष्क्रमित हुई हैं। बात यह है कि जब संस्कृत व्याकरणिक शृंखलाओं ने जकड़कर

मृत हो गई, तो प्राकृत का प्रचार बढ़ने लगा; परंतु क्योंकि संस्कृत अमरवाणी तथा राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त कर चुकी थी, उसके अनेक शब्द प्राकृत तथा उसकी उत्तरोत्तर भाषाओं पाली, अपभ्रंश, प्राचीन हिंदी आदि में समय समय पर आते रहे हैं। इनमें से कुछ शब्द तो अविकृत रहने के कारण आज तक ज्यों के त्यों चले आ रहे हैं और कुछ प्राकृत का बाना पहनकर परिवर्तित हो गए हैं। अतः हिंदी का ढाँचा संस्कृत के तत्सम् तथा तद्भव शब्दों द्वारा निर्मित हुआ है। अब रहा प्रश्न आधुनिक भाषाओं के प्रभाव का। हिंदीभाषियों ने पंजाबी, मराठी, बँगला आदि आधुनिक भाषा-भाषियों के संपर्क में आने पर भी उनकी भाषा बोलने का प्रयत्न कभी नहीं किया, प्रत्युत अन्य भाषाभाषियों ने ही हिंदी बोलने तथा लिखने का उद्योग किया। अतः हिंदी में तो आधुनिक भाषाओं के शब्द नाममात्र को ही आ पाए, परंतु आधुनिक भाषाओं पर हिंदी की गहरी छाप लगी।

संस्कृत तथा हिंदी—हिंदी में संस्कृत शब्द निम्न रूपों में प्रयुक्त होते हैं—

तत्सम्—वे शब्द हैं जो ध्वनियों की सरलता के कारण आज तक अपने मूल रूप में चले आ रहे हैं अथवा सीधे संस्कृत से हिंदी में आए हैं। पारिभाषिक शब्दों के लिये तो हिंदी को सदैव ही संस्कृत ही की शरण लेनी पड़ी है और फिर आजकल तो शिक्षा का माध्यम हिंदी होने के कारण गणित, विज्ञान आदि में इस प्रकार के पारिभाषिक शब्दों की संख्या और भी अधिक बढ़ रही है। इसके अतिरिक्त अनेकों संस्कृत शब्द विद्वत्ता प्रदर्शनार्थ भी प्रयुक्त होते हैं। यहाँ तत्सम शब्दों की एक संक्षिप्त सूची दे देना कुछ अनुचित न होगा।

सूची – अक्षर, अर्द्ध, अश्रु, अष्ट, असुर, अक्षि, अंगुली, अग्नि, अंक, अग्र, अंतकाल, अतिथि, अनिल, असि, अरि, अन्न, अस्त्र,

अस्त, अन्य, अकस्मात्, अतः, अति, अथवा, अन्यत्र, अतिरिक्त, अवश्य, अलंकार, अंजन, अंग, अपितु, अपेक्षा, अस्तु, अभियोग, अध्यापक, अश्रु, अंध, अलम्, अचल, अश्व, अनुकूल, अनुज, अंकुर, अंडज, अंडकोश, अंत, आश्चर्य, आज्ञा, आषाढ़, आभीर, आखेट, आकाश, आकर्षण, आगत, आचरण, आदि, आदर, आधार, आभरण, आयु, आय, आर्य्य, आशा, आरण्य, आश्रम, आश्रय, आवाहन, आक्षेप, इंद्र, इंद्रिय, इच्छा, इत्यादि, इष्ट, ईर्षा, ईश, इति, उर, उष्ण, उच्चारण, उज्ज्वल, उत्तम, उत्तर, उदधि, उदय, उद्गार, उद्देश्य, उद्भिज, उद्यम, उपद्रव, उपवास, उपाधि, उपाध्याय, उपालंभ, उपासक, उष्ट्र, उल्का, उलूक, उपमा, ऊखल, ऊषा, एवं, एक, एकांत, एरंड, एला, ऐश्वर्य, ऐहिक, ओष्ठ, ओज, औद्य, औरस, औषधि, ऋण, ऋषि, कोटि, कष्ट, कुष्ट, केशरी, कर्म, कुमार कूप, कृष्ण, कज्जल, कवि, कंकाल, कन्या, कला, कर, कहार, कोलाहल, कोदंड, कोप, कपि, क्रिया, कर्ण, क्षण, क्षमा, क्षीर, क्षेत्र, खंजन, खग, खल, गृह, ग्रीवा, ग्रीष्म, गुंजा, गंध, गजगण, गदा, गर्व, गर्भ, गिरि, गुण, ग्रंथ, ग्राह, ज्ञान, घृणा, घृत, घोष, चतुर्थ, चकोर, चिंता, चित्र, चक्र, छत्र, छिद्र, जन्म, ज्योति, जंगम, जनक जन, जल, ज्वर, जीर्ण, जीव, ताप, तड़ाग, तत्त्व, तथा, तत्, तुल्य, तरु, ताल, तात्पर्य्य, तृष्णा, त्याग, तारा त्रिभुज, त्रिशूल, त्रिलोक, त्रिपाठी, त्रिफला, दंत, दंड, दधि, दैत्य, द्वीप, दक्षिण, दोष दुःख, दुर्बल, देह, दया, दर्शन, दास, दाह, देवता, देव, दीर्घ, देवर, दृष्टि, धर्म, धान्य, धैर्य्य, धूर्त, धृष्ट, ध्वनि, ध्रुव, नदी, नूपुर, नृत्य, नक्षत्र नगर, नृप, नाग, नित्य, निम्न, निर्जन, निशा, नर, नीति, न्याय, पितृ, पक्ष, पुनः, प्रायः, पर्व, पूर्व, पंडित, पंच, पश्चात्, पतित, पति, पत्नि, पथ, पद्म, परम, पद, पाश, पशु, पुष्प, पुस्तक, पूर्ण, पुत्र, प्रति, प्रण, प्राण, प्रातकाल, प्रिय, प्रेत, फल, फाल्गुन, बाहु, बधिर, ; बृहस्पति, ब्रह्म, ब्राह्मण, भ्राता, भ्रम, भ्रू, भाषा, भक्त, भद्र,

भूत, भवन, भाव, भूमि, भूकंप, भ्रष्ट, भ्रमर, मेघ, माँस, मृत्यु, मन, मनुष्य, मुख, मत्त, मद, मधु, मध्य, माता, मूर्ख, मूल, मुक्ति, यथा, योनि, यति, यन्त्र, यात्रा, यज्ञ, यथार्थ, युक्ति, युग, योग, रक्षा, रात्रि, रक्त, रत्न, रति, राजा, रूप, रवि, लक्ष्मी, लघु, लक्ष, लेख, लज्जा, वश, वर्ण, वस्तु, वचन, वधू, वन, वरंच, विघ्न, विजय, विपत्ति, वैद्य, विधवा, वृथा, व्यय, शताब्दी, शक्ति, शरीर, शकुन, शस्त्र, शिक्षा, शीत, शपथ, शून्य, श्रावण, शृंगार, शेष, श्याम, श्रद्धा, श्रम, श्री, स्नेह, संध्या, सहस्र, स्वामी, सत्य, सदृश, सपत्नी, सर, स्वर, सूक्ष्म, सूत्र, सूर्य, स्वप्न, संयम, स्वर्ण, हरि, हर्ष, हिम, ह्रस्व, हल, इत्यादि शब्द हिंदी में अधिक व्यवहृत होते हैं।

(२) *तद्भव*—वे शब्द हैं जो प्राकृत में होते हुए संस्कृत से अथवा सीधे प्राकृत से हिंदी में आए हैं। यद्यपि प्राकृत संस्कृत का लौकिक स्वरूप है और सभी तद्भव शब्द संस्कृत से आए हैं, परंतु कुछ शब्द समय के प्रभाव से ऐसे विकृत हो गए हैं कि प्राकृत के आगे उनके मूल रूप का पता नहीं चलता। अतः तद्भव दो प्रकार के हुए—प्राकृत में होकर संस्कृत से आनेवाले तथा सीधे प्राकृत से आनेवाले। निम्नलिखित उदाहरणों से तद्भव शब्दों के रूपों का स्पष्टीकरण हो जायगा—

संस्कृत	*प्राकृत*	
अग्नि	अग्गि	आग
अशीतिः	असीइ	अस्सी
अक्षि	अक्खि	आँख
आज्ञा	आणा	आन
ओष्ठ	ओट्ठ	ओठ, होठ
अद्य	अज्ज	आज
अर्द्ध-तृतीय	अड्ढतीय	अढ़ाई, ढाई
अष्ट	अट्ठ	आठ

संस्कृत	*प्राकृत*	*हिंदी*
एकादश	एआरह	ग्यारह
कर्ण	कराण	कान
कृतः	करिओ	करा
कर्म	कम्म	काम
चत्वारि	चत्तारि	चार
चतुर्थ	चउत्थ	चौथा
दुग्ध	दुद्ध	दूध
नव	नअ	नौ
प्रिय	पिय	पिय, पिया
पुष्प	पुप्फ	फूल
भवन्	होन्तो	होता
मुक्ता	मुत्ता	मोती
मया	मइं	मैं
मुकुट	मउडु	मौर
यदि	जद्	जो
वत्स	वच्छ	बच्चा, बछेड़ा, बछिया
शक्तु	सत्तु	सत्तू, सतुआ
सपाद	सवाअ	सवा
श्रुत्वा	सुणिय	सुन
कर्पूर	कप्पूर	कपूर
घोटकः	घोडउ	घोड़ा
चतुर्दश	चउद्दह	चौदह
जिह्वा	जिब्भा	जीभ
द्वयर्द्ध	दिअड्ढ	डेढ़
पुण्य	पुराण	पुन्न
प्रति	पति	पति

संस्कृत	प्राकृत	हिंदी
पर्यंक	पल्लंक	पलंग
भक्तः	भत्त	भात
मध्य	मज्झ	में
मृत्यु	मिच्चु	मीच
मयूर	मऊरी	मोर
वचन	वअण	बैन
शत	सअ, सय	सौ
सूची	सुइ	सुई
सपत्नी	सपत्ती	सौत
हरिद्री	हलिद्दी	हल्दी

इनके अतिरिक्त अँगुठा, आँत, इलायची, कपड़ा, कनफूल, करौंदा, ककड़ी, कंगन, कत्था, कुम्हार, कान, कैथ, कोहड़ा, कौवा, खत्री, खिचड़ी, खिन्नी, खीर, गाजर, गैंडा, गोझा अथवा गुझिया, घिसना, चिंघाड़, चमार, चना, चूची, चूमा, छुरा, जामुन, जुआ, झोली, झरना, परौठा, पूरी, पापड़, पीठ, पीसना, पकवान, फुलका, बाजा, बथुआ, बेर, बगला, भाई, मालपूआ, मुट्ठी, तोंद, थाली, नीबू, नाक, रंगना, लहसुन, सुनार, हड्डी, हाथ इत्यादि और भी अनेकों तद्भव शब्द हिंदी में प्रयुक्त होते हैं।

उक्त दोनों प्रकार के तद्भवों के अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द भी हिंदी में हैं जो प्राकृत से होकर आने पर भी प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत से अधिक मिलते जुलते हैं औ जो प्राकृत भाषाभाषियों द्वारा भाषित होने के कारण युक्तविकर्ष अथवा स्वरभक्ति, आगम, लोप आदि साधारण विकारों द्वारा कुछ विकृत तो अवश्य हो गए हैं परंतु इतने नहीं कि उनके रूप संस्कृत से नितांत भिन्न हो गए हों, उदाहरणार्थ अग्नि, से अगिन रात्री से रात, मूत्र से मूत, आज्ञा से

आग्या, धर्म से धरम, जन्म से जनम, मिश्र से मिसिर, अक्षर से अच्छर, कृपा से किरपा, कार्य से कारज इत्यादि। क्योंकि इस प्रकार के तद्भव तत्सम् शब्दों से अधिक मिलते जुलते हैं, अतः इन्हें हम अर्द्धतत्सम् कह सकते हैं। हिंदी में अर्द्धतत्सम् शब्द अनेक हैं जैसे लगन, ग्यान, तोल, तन, चूरन, भौं, बिंदी, बरस, साधू, लोहा, रोटी, कदम, साला, अलि, मेहतर, बहँगी, सींचना इत्यादि।

अब प्रश्न यह है कि हिंदी की जननी प्राकृत होने तथा प्राकृत रूपों की उपस्थिति में भी अर्द्धतत्सम् शब्दों के रूप संस्कृत के समान क्यों हुए अथवा तत्सम् शब्द क्यों प्रचलित हुए? दो एक उदाहरणों से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। यथा सं० लभ्यते का प्रा० रूप लब्भति है, परंतु इसका तद्भव लाभ प्राकृत लब्भति की अपेक्षा संस्कृत लभ्यते के सदृश है, इसी प्रकार 'रात' प्रा० रैण की अपेक्षा संस्कृत रात्रि के समान है। इसी प्रकार प्राकृत, साअर, जद, सअल आदि के स्थान में उनके तत्सम रूप सागर, यदि, सकल आदि प्रयुक्त होते हैं। किसी भाषा के मार्ग को परिवर्तित करना उसकी धारा को एक ओर से दूसरी ओर ले जाना, अथवा किसी प्रचलित भाषा की उपस्थिति में उसके प्राचीन स्वरूप को चलाना किसी बड़े तथा प्रभावशाली व्यक्ति अथवा जाति का काम है। पाणिनि की अष्टाध्यायी द्वारा संस्कृत के मृत अथवा बंध्या हो जाने पर उसका वंश समाप्त हो गया, परंतु उसकी बहिन प्राकृत अपने मिलनसार स्वभाव के कारण संतानवती हुई और उसकी उत्तरोत्तर वंशवृद्धि होती रही। तत्पश्चात् उसका इतना आदर हुआ कि भगवान् बुद्ध तक ने उसे अपनाया और उसकी वंशज पाली का अशोक, कनिष्क, हर्ष जैसे सम्राटों के दरबार में बड़ा मान हुआ। अतः उनकी वंशज अपभ्रंश तथा प्राचीन हिंदी से निष्क्रमित हिंदी आदि आधुनिक भाषाओं में उनकी आदि जननी प्राकृत के शब्द अधिक होने चाहिए थे, परंतु वास्तव में ऐसा नहीं

है। हिंदी में तत्सम् शब्दों की भरमार है और तद्भव भी अधिकतर या तो अर्द्ध-तत्सम ही हैं या उनने रूप प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत से मिलते हैं। इसका कारण यह है कि ८वीं, ९वीं शताब्दी में बौद्ध धर्म की अवनति और हिंदू धर्म का प्रचार हो रहा था। हिंदू धर्म के प्रवर्त्तक ब्राह्मणों ने बौद्धों का यथाशक्ति विरोध किया। क्योंकि ब्राह्मणों का प्रजा पर बहुत प्रभाव था, अतः अनेक शब्दों के प्राकृत रूप लुप्त होने लगे और उनके स्थान में उनके तत्सम रूप प्रयुक्त होने लगे। इस पुनरुत्थान के समय अनेक शब्दों के रूपों में प्राकृत-भाषियों द्वारा कुछ भेद हो गया। ब्राह्मणों ने भी जिसका ध्यान धर्म की ओर था, इसकी चिंता न की और शब्दों का संशोधन करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। अतएव 'रात्रि' की जगह 'रात' कार्य की जगह कारज जैसे अनेक शब्द चल निकले। प्रत्येक भाषा के पुनरुत्थान में ऐसा ही होता है। उदाहरणार्थ अंग्रेजी wain, rain tail, sail, say, day, rail आदि का निकासन क्रमशः ऐ० से० waegen, regel, taegel, segel, sagian, daeg, ryge, नि० ज० regel आदि से हुआ है अर्थात् इनके प्राचीन रूपों में g थी जिसका नवीन रूपों में किसी कारणवश लोप हो गया। g के एकबार लुप्त हो जाने पर उसको फिर से लाने का प्रयत्न कभी नहीं किया गया और विकृत शब्द ही चल निकले। ठीक इसी प्रकार जब अर्द्ध तत्सम अथवा संस्कृत रूपेण तद्भव रूप एक बार चल पड़े तो वे उत्तरोत्तर भाषाओं में होते हुए आधुनिक भाषाओं में भी आ गए।

(३) *तत्समाभास*—हिंदी में अनेक ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं जो तत्सम प्रतीत होते हैं, परंतु वास्तव में तत्सम नहीं हैं। इनमें से कुछ तो प्राचीन हैं जैसे* 'श्राप' प्राण, क्षत्राणी, सिंचन, अभिलाषा, सृजन, मनोकामना आदि और कुछ आजकल के अल्प

---

* श्यामसुंदर दास 'हिंदी भाषा और साहित्य', पृष्ठ ४८ व ५२

संस्कृतज्ञों ने गढ़ लिए हैं जैसे राष्ट्रीय, जाग्रत, पौर्वात्य, फाल्गुण, उन्नायक आदि' ।

(४) *तद्भवाभास*—वे शब्द हैं जिन्हें न तो तत्सम ही कह सकते हैं और न तद्भव ही जैसे मौसा जो मौसी तद्भव के आधार पर बना है ।

(५) *देशज*—वे शब्द हैं जिनकी व्युत्पत्ति संदिग्ध है जैसे लोटा, डिबिया, तेंदुआ, चिड़िया, जूता, कटोरा, कलाई, कुनगी, खिचड़ी, पगड़ी, खिड़की, डाब, ठेस, डोंगा, बियाना आदि । यह तो पता नहीं कि ये शब्द आर्यन भाषाओं के हैं अथवा अनार्यन के, परंतु इतना निश्चय है कि ये हैं इसी देश के, अतः इन्हें देशज कह सकते हैं ।

(क) *हिंदी तथा आधुनिक भाषाएँ*—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि हिंदी में आधुनिक आर्य भाषाओं के शब्द अधिक नहीं हैं, परंतु फिर भी थोड़े बहुत आ ही गए हैं जैसे* मराठी लागू, चालू, बाजू आदि, गुजराती लोहनी, कुनबी, हड़ताल आदि तथा बं० प्राणपण, चूड़ांत, भद्र लोग, गल्प नितांत, सुविधा आदि ।' इधर स्वराज्य आंदोलन के कारण हिंदी में आधुनिक भाषाओं के शब्दों की संख्या बढ़ रही है ।

(ख) *भारतीय अनार्य शब्द*—भारतीय अनार्य भाषाओं से आशय कोल द्रविड़ भाषाओं से है । यद्यपि कोलद्रविड़ जातियाँ तथा भाषाएँ आजकल दक्षिणी भारत में पाई जाती हैं, तदपि प्राचीन काल में आर्यों के भारत में आने के पूर्व वे समस्त उत्तरी भारत में प्रसरित थीं । अतः जब आर्य भारत में आए तो उन्हें मूल भारतवासियों के संपर्क में आना पड़ा । अतः अनेकों शब्द एक दूसरे की भाषा में चले गए । वास्तव में बात यह है कि

*श्यामसुंदर दास 'हिंदी भाषा और साहित्य' पृष्ठ ४८ व ५२

खाने पीने की वस्तुओं, पालतू पशुओं, यंत्रों, संबंधियों, पौधों आदि के नाम तो आर्यों ने अपनी बुद्धि से बना लिए जैसे हस्तिन् (एक हाथवाला), कपि (स्थिर न रहनेवाला), वानर (वन का नर), गज (गर्जन करनेवाला) आदि, परंतु कुछ द्रविड़ भाषाओं से ले लिए। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के बहुत बड़े भाग की रचना दक्षिणी द्रविड़ों द्वारा हुई। अतः द्रविड़ शब्दों का संस्कृत में आना अनिवार्य है। तत्पश्चात् वे प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में होते हुए हिंदी आदि आधुनिक भाषाओं में भी आ गए।

कोल द्रविड़ शब्द—(१) टवर्ग वर्णों से युक्त शब्दों में से कुछ संभवतया द्रविड़ भाषाओं से आए हैं अथवा उनसे प्रभावित हुए हैं।

(२) हिं॰ पिल्ला तथा चुरुट क्रमशः ता॰ पिल्हई तथा शुलुट्ट से, हि॰ आलि, अलि अथवा अली ते॰ आलु से, हि॰ कोड़ी मुं॰ कुड़ी से निष्क्रमित हुए हैं तथा हिं॰ साबू मलय भाषा से आया है। कैल्डवेल के अनुसार* अक्का, अटवी, नीर, पट्टन, पल्ली, मीन आदि भी द्रविड़ भषाओं से आए हैं।

प्रतिध्वनि शब्द—द्रविड़ भाषाओं में प्रतिध्वनि शब्दों का प्रयोग अधिक होता है जैसे ता॰ कुदिरइ किदिरइ, कलड़ी कुदिरे, गिदिरे, ते॰ गुर्रमु गिर्रमु आदि। इसी प्रकार हिंदी में भी घोड़ा ओड़ा, जल उल, ईंट ऊँट, खाना ऊना, बर्तन-उर्तन, इत्यादि आने लगे हैं। यह संभवतः द्रविड़ भाषाओं का ही प्रभाव है।

(४) हिं॰ मइया, पड़वा, गाय, डाँगर अथवा डंगर, घी, पनही बाप, नन्ना आदि शब्द क्रमशः संथाली एयो, काड़ा, गै, डाँगर, घै

---

*कम्परेटिव ग्रामर आफ द्राविडियन लाइंग्वेज, पृष्ठ ४३१-४४८

पनाही, बा, नेनु आदि के समान हैं। संभव है ये शब्द हिंदी में संथाली भाषाओं से ही आये हों। कुली भी सम्भवतः कोल से संबंधी है।

(ग) *विदेशी शब्द*—यों तो परस्पर संपर्क के कारण हिंदी में चीनी, तिब्बती आदि पास-पड़ोस की सभी भाषाओं के शब्द पाए जाते हैं जैसे ति० चुंगी, चीं० चाय, मैना इत्यादि, परंतु दो प्रकार की भाषाओं का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है। (१) अरबी फारसी, तुर्की आदि मुसलमानी भाषाओं का। (२) अंगरेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, डच आदि योरोपीय भाषाओं का। इसका कारण मुसलमानों तथा अंगरेजों का विजयी तथा शासक होना है।

(१) *मुसलमानी शब्द*—जब मुगलकाल में फारसी राज्य-भाषा हुई और उसका प्रचार बढ़ा तो अनेक फारसी शब्द हिंदी में आ गए। क्योंकि फारसी में इस्लाम धर्म के प्रचार के कारण अरबी, तुर्की के शब्दों का बाहुल्य ईरानी राज्यकाल से ही था; अतः फारसी के साथ अरबी, तुर्की शब्द भी हिंदी में आ गए। यहाँ नित्य व्यवहार में आनेवाले कुछ मुसलमानी शब्द दिए जाते हैं।

(अ) *फारसी शब्द*—अफसोस, आबदार, आबरू, आबदाना, आतिशबाजी, अदा, आराम, आमदनी, आवारा, आवाज, आईना, आइंदा, इमला, उम्मेद, एलची, कद्दू, कबूतर, करमकल्ला, कुश्ती, कुश्ता, किशमिश, कमरबंद, किनारा, कूचा, कोता, खाक, खाका, खामोश, खरगोश, खुश, खुराक, खूब; गर्द, गज, गुम, गल्ला, गोला, गवाह, गर्मी, गिरफ्तार, गरम, गिरह, गुलबंद, गुलाब, गुल, गोश्त, चाबुक, चादर, चालाक, चिराग, चश्मा, चर्खा, चूँकि, चौकीदार, चाशनी, जंग, जहर, जीन, जोर जबर, जिंदगी, बच्चा, जादू, जागीर, जान, जुरमाना, जिगर, जोश, तरकश, तमाचा, तालाब, तेज, तीर, ताकत, तबाह, तनख्वाह, ताजा, दीवार

(दीवाल), देहात, दामाद, दरबार, दर्द, दंगल, दिलेर, दिलासा, दिमाग, दुम, दिल, दवा, दोस्त, दलीज, (दहलीज), नामर्द, नशा, नाव, नाप (नाक), नाजुक, नापाक, नायब, नौजवान, नौरोज, पाजी पासंग, पैजामा (पाजामा), पाक, पाया, पर्दा, परहेज, पुर्जा, परगना, परवा अथवा परवाह, पुश्ता, पलंग, पलीत, पैदावार, पेशवा, पैमद, (पैवंद), पलक, पुल, पारा, पेशा, पैमाना, बोसा, बेवा, बहार, बेहूदा, बीमार, बारिश, बुरादा, बिरादरी, मादा, माशा, मस्त, मलाई, मुर्दा, मजा, मलीदा, मुफ्त मोर्चा, मीना, मुर्गा (मुर्ग), यार, यदि, राये, रकाबी, रंग, रोगन, राह, रान, लश्कर, वर्ना, वापिस, शराब, शादी, शोर, शीरा, सितारा, सितार, सरासर, सुर्ख, सरदार, सरकार, सूद, सौदागर, सीना, हफ्ता, हजार इत्यादि।

(अ) अरबी शब्द—अजब, अमीर, अजीब, अथवा अजायब (घर), अदावत, अत्तार, अक्ल, अक्स, अर्क, असर, अहमक, अब्ला, आसार, आखिर, आसामी, आदमी, आफत, आदत, आदी, इजारा, इनाम, इजलास, इज्जत (आबरू), इमारत, इस्तीफा, इजरा, इलाज, इमान, उम्दा, उम्र अथवा उमर, एहसान, एवज, औसत, औरत, औलाद कसूर, कदम, कब्र अथवा कब्र, कंद, कसर, कमाल, कर्ज, किस्म, किस्मत, किस्स, किला, कसम, कीमत, कसरत, कुर्सी, किताब, कायदा, कादिल, खबर, खत्म, खतम, खत, खिदमत, अथवा खिजमत, खराब, ख्याल, गरीब, गैर, गैरत, जाजिम, जाहिल, जर्राह, जलूस, जिस्म, जलसा, जिन, जनाब, जवाहर, जवाब, जहाज, जालिम, जिक्र, जहन, ताज, तमाम, तिजारत, तख्त अथवा तख्ता, तकाजा अथवा तगादा, तकदीर, तारीख, तकिया, तमाशा, ताऊन, तरफ, तूती, तोता, तौर, तैरना, तै, तहसील, तादाद, तरक्की तजुर्बा, तअस्सुब, दाखिल, दस्तूर, दावा, दावत, दफ्तर, दगा, दुआ, दफा, दल्लाल, दुकान, दिक, दुनिया, दीवान, दौलत; दफन, दीन, नतीजा, नुस्खा, नाल, नकद अथवा नगद, नकल, नहर,

फकीर, फिक्र, फायदा, फैसला, बाज, बहस, बाकी बग्गी, महावरा मेहहत, मदद, मुद्दई, मर्जी, माल; मिसाल, मजबूर, मुंसिफ, मालूम मामूली, मुकद्दमा, मुल्क, मल्लाह, मवाद, मौसम, मौका, मौलवी, मरहम, मुसाफिर, मशहूर, मुश्क, मजमून, मतलब, मानी, मए, मेदा, यतीम, लिहाफ, लफ्ज, लहजा, लिफाफा, लगाम लेकिन, लियाकत लायक, वालिद, वारिस, वहम, वकील, हिम्मत, हैज, हरीरा, हिसाब, हरामी, हद, हज्जाम, हक, हुक्म, हाजिर, हाल, हाशिया, हाकिम, हमला, हया, हवालात, हवलदार, हौसला इत्यादि

(इ) *तुर्की शब्द*—आगा, आका, उजबक, उर्दू, कुमुक अथवा कुन्मक, कोतल; कालीन, काबू, कमची, कज्जाक, कैंची, कुतका अथवा गतका, कलाबत्तू, कलगी, कोर्मा, कुली, कुल्लाच, कुर्की, खानुम, खान, खजांची, चिक, चेचक, चमचा, चाकू, चुगल, चोगा, चकमक, चारपाई, जाजिम, तुपक, तुरुक, तुज्ज, तमगा, तोप, तोशक, तलाश, तगाड़, दरोगा, नुसादर, बुलबुल, बंक्काल, बकचा, बक्सी, बेगम, बहादुर, बीबी, मुगल, मुचलका, मशालची ताबू, लगलगे, लफंगा, लाश, सौगात, सुराक अथपा सुराग, हुदहुद इत्यादि ।

(ई) *पश्तो शब्द*—रोहिल्ला, पठान इत्यादि ।

(२) *योरोपीय शब्द*—अन्य भाषाओं के शब्दों की भाँति अनेक योरोपीय शब्द भी हिंदी में तत्सम, तद्भव आदि रूपों में प्रयुक्त होते हैं । यद्यपि परस्पर व्यापार के कारण कुछ पुर्तगाली, फ्रेंच, डच शब्द भी आ गए हैं तदपि अंगरेजी राज्य के कारण अंगरेजी शब्दों की संख्या अधिक है । इनमें से कुछ केवल अनपढ़ मनुष्यों द्वारा ही बोले जाते हैं ।

(अ) *अंगरेजी शब्द*—अगस्त, अप्रैल, अक्टूबर, अपील अफसर, अर्दली, अस्पताल, अमरीका, अटेरियन, (Italian) आद

रेशन, आफिस, आर्डर, इंच, इंजन, इंटर, इंजीनियर, इंटैंस, इटली, इस्कू, इंस्पैक्टर, इनकमटैक्स, इलैक्ट्रिक, इयरिंग (Ear-ing) एविंटग ओवरकोट, ओवरसियर, कम्पनी, कमीशन, कमिश्नरी, कमिश्नर, कम्पौंडर, कलक्टर, कलैंडर, कैप, कटपीस, कफ, कमेटी कैमरा, कांग्रेस, कापी, कालरा, कालर, काग (cork), क्लास, कांफ्रेंस कामा, कास्ट्रेल (costor-oril), कालिज, क्लब, क्वार्टर, क्रिकेट, क्लिप, कोचवान, कोलतार, कौंसिल, केतली (kettle), कोट, कोरम, गजट, गिलास, गवरमेंट, गार्ड अथवा गाड, गिलट, गिन्नी, गैस, गौन, गाटर, ग्लेशियर, गीसर, गैलन, गेटिस, चाक, चिमनी चैक, चार्ज अथवा चारज, चेअरमैन, चेन, चेंज, चैस्टर, चीनी (china), चरट (charlot), जज, जेलर, जनवरी, जुलाई, जून जोकर, ज्वैलर, जेक, जट, जर्नल (मर्चेंट), जंफर; टन, टीन (tin) ट्रंक ट्रांबे, टिकट टिमाटर (tomato) टैंपरेचर, टिफन, टीम, ट्यूब, टेम, टुइल, टेनिस, टैक्स, ट्यूशन, टेलीफून, ट्रेन, टायर, टाइप, टाइमटेबिल, टौनहाल, टीचर, टेठर (thetre), डबल (रोटी) डंबल, डाक्टर, ड्रामा, डाइरैक्टर, डायरी, डेअरी, डिप्टी, डिस्ट्रक-बोर्ड, डिगरी, ड्राइवर, डेमरेज, डैक्स, डिपलोमा, ड्यूटी, ड्रिल, डिपो (बुकडिपो), डिसमिस, (सिंगल) डौन, तारपीन अथवा तारबीन (turpentine), तारकोल (coal-tar), थर्मामीटर, दर्जन, दिसम्बर, नर्स, नकटाई, नम्बर, नाविल, नवम्बर अथवा नौम्बर, निब, नैकर, नोट, नोटिस, (बोर्ड), नेकलेस, पल्टन परेड पलस्तर, पंचर, पम्प, पाइप, पाकेट (बुक), पतलून (pantloon), पैंट, पैडिल, प्रिंसिपल, पार्क, पालिश, पार्टी अथवा पाल्टी, पाट, पार्सल, प्लाट, प्राइमरी, पैंसिल, पैंशन, पियानो, प्लेट, पैट्रोल पिन, पीपरमैंट, प्लेग, पुल्टिस, प्रोफेसर, पुलिस, पुर्तगाल, पोलो पुटीन, पेटीकोट, पैसा (pice), पाई, पौंड, पाउडर, प्रेस, फारम,

(form), फ्रेम, फर्म, फैक्टरी, फुलालैन (flannel), फ़रवरी, फाउल, फर्लांग, फिनैल, फिटन, फिराक, फीस, फ्री, फील, फुट अथवा फिट, फैल्टकैप, फेल, फैर (fire), फैशन, फोटो, फोटोग्राफ़, फरपट (forward), फील्ड, बंक, बम (bomb), बरांडी, बटन, बिल्टी, बिगुल, बिलाटिंग, बक्स; बनयान, बोर्डिंगहाउस, बारक (barrack), ब्लैडर, ब्रास्कट (waist-coat), बैञ्च, बुकसेलर, बुरुस, ब्रैकेट, बिल, बजट, ब्रेक, बूट, बैंड, बाइसिकिल, बोर्ड, बोट, मसीन, मनीआर्डर, मनीबेग, मई, मजिस्ट्रेट, मफलर, मडगार्ड, मैनेजर, माचिस, मास्टर, मिस्टर, मार्च, मिस, म्यूनिसपल्टी, मिनट, मिल अथवा मील, मिक्सचर, मीटिंग, मेंबर, मोटर, मैञ्च, यूनियन, (जैक), रंगरूट, रबड़, रसीद, रपट, रन, रजिस्टर, रजिस्ट्री, रिटायर, रीडर, रेकर्ड, रूल, रेल लंप, लमलेट (lemonad), लंच, लाटरी, लालटेन, लाट (lord) लाइब्रेरी, लेटरबक्स, लेट, लैक्चर, लेबिल, लैन (किलियर), लैसंस; लेमचूस, लंबर (number), लोट (note), लोकल, लोअर (प्राइमरी), वारंट; वार्निश, वाइल, वाइसराय, वालंटियर, वालीबाल, वॉट, सम्मन, सरज, सिविल-सर्जन, सार्टिफिकेट, स्लेट, सीट, सैट, स्वीटर अथवा सूटर, सर्टिंग (क्लाथ), सटिलकाक, संतर, सरकस, सब (जज), साइंस, सर्विस, सिकत्तर, सिंगल, स्लीपर, सुपरडंट, सूटकेट, सेशन, सेकिंड, सेफ्टी-पिन, सोपकेस, सोडावाटर, स्टूल, स्कूल, स्काउट, स्टाम्प, स्पीच, स्टेशन, स्पेशल, हैंडिल, हाई (स्कूल), कोर्ट, हारमोनियम, हाकी, हाल, हिट, हुक, हेड (मास्टर), हैट, होल्डर, होटल, हंटर, होमो-पैथी, हंडरवेट इत्यादि ।

(आ) * *पुर्तगाली शब्द*—अलमारी, अनन्नास, आलपिन,

* अंशतः धीरेन्द्र वर्मा, 'हिंदी भाषा का इतिहास' पृष्ठ ७३—७४ के आधार पर ।

आया, इस्पात, इस्त्री, क़मीज़, क़निस्तर, कमरा, काज, काजू, काका-तुआ, किरच, किस्तान, गमला, गिर्जा, गारद, गोदाम अथवा गुदाम, गोभी, चाबी, तौलिया, तौला, नीलाम, परात, पाउ (रोटी), पादरी, पिस्तौल, पीपा, फर्मा, फीता, फ्रांसीसी, बाल्टी, बुताम, बोतल, मस्तूल, मिस्त्री, मेज, यशू, लबादा, साया, सागू अथवा सागौन इत्यादि।

(इ) *फ्रांसीसी शब्द*—अँगरेज, कूपन, कारतूस, फ्रांसीसी इत्यादि

(ई) *डच शब्द*—तुरुप, बम (गाड़ी की) इत्यादि।

(घ) *द्विज शब्द*—वे शब्द हैं जो दो भाषाओं के शब्दों के संमिश्रण से बने हैं जैसे बोट, अगिन (सं० अग्नि + अं० Boat), कोकोजम (पुर्त० co-co + अं० jam), अमनसभा (अं० अमन + सं० सभा), डबलरोटी (अं० double + हि० रोटी), भगवानबख्श (हि० भगवान + फा० बख्श), विलियम खाँ, प्यारे खाँ इत्यादि। कभी कभी विजातीय प्रकृति अथवा प्रत्यय के संयोग से भी शब्द निर्मित होते हैं जैसे बगड्डम (हि० बगड़ा + अं० dom), डिप्टी-गीरी (अं० deputy + फा० गिरी), क्लर्की, लाटसाहिबी, बाबूपन, शोहदापन, पतंगबाजी इत्यादि।

सारांश यह है कि हिंदी में देशी विदेशी सभी भाषाओं के शब्द पाए जाते हैं और वे ऐसे घुल मिल गए हैं कि उनके उद्भव का पता लगाना तक कठिन है। वे सब निजी प्रतीत होते हैं, विदेशी नहीं। वास्तव में हिंदी में पाचनशक्ति इतनी अधिक है, कि किसी भी भाषा का शब्द क्यों न हो इसमें आकर भिन्न ही नहीं जाता अपितु घर का सा हो जाता है।

अध्याय ७

रूपविचार

रूपविचार बहुत विस्तृत तथा व्यापक विषय है, परंतु यहाँ हम उसके मुख्य अंग रूप, रूपमात्र तथा रूपविकार का ही चिंतन करेंगे। इन तीनों का संबंध शब्दों से है और शब्दों का सच्चा रूप अथवा पारस्परिक संबंध उनके वाक्यांतर्गत होने पर प्रकट होता है। अतः रूपविचार के दो भेद हो जाते हैं, वाक्यविचार तथा शब्दविचार। प्रत्येक शब्द में दो बातें होती हैं। उसका प्रयोग तथा रचना अर्थात् उसका प्रयोगार्ह होना तथा अंतरंग रचना। पहली का संबंध वाक्य-विचार से और दूसरी का शब्दविचार से है। रूपविचार के 'शब्द' साधारण शब्दों से नितांत भिन्न हैं। साधारणतः जिसे हम एक शब्द समझते हैं वे प्रायः रूपविचार की दृष्टि से अनेक और जिन्हें हम अनेक समझते हैं वे एक होते हैं। उदाहरणार्थ 'लड़का रो रहा है' में 'रो', 'रहा' तथा 'है' प्रत्यक्षतः तीन शब्द हैं, परंतु वाक्यविचार की दृष्टि से इन्हें एक ही शब्द कहेंगे; इसी प्रकार 'उसको' एक शब्द है, परंतु शब्दविचार की दृष्टि से, 'उस' तथा 'को' दो शब्द हैं। संस्कृत पद इसके सुंदर उदाहरण हैं; जैसे बालेन = बाल + एन, कविभ्याम् = कवि + भ्याम्, पठन्ति = पठ् + अन्ति इत्यादि। इतना ही नहीं अपितु वाक्यविचार और शब्दविचार के शब्दों में भी भेद है, जैसे उक्त उदाहरण में वाक्यविचार से 'रो रहा है' एक शब्द है, परंतु शब्दविचार से 'रो' तथा 'रहा है' दो शब्द हैं। प्रत्येक वाक्य अथवा शब्द में दो पक्ष होते हैं, अर्थ तथा रूप। वाक्य में 'अर्थ' से तात्पर्य उस भाव (idea) से है जो उस वाक्य द्वारा व्यक्त होता है और रूप से व्याकरणिक संबंध से है जो

वाक्यांतर्गत अर्थों के बीच होता है। शब्द में अर्थ से अभिप्राय उस वस्तु अथवा भाव (concept) से है जो उस शब्द द्वारा होता है और रूप से उसके व्याकरणिक स्वरूप से है। वाक्य तथा शब्द दोनों में 'अर्थ' तो निकटतया एक ही है, वाक्यसंबंधी' 'अर्थ' (idea) शब्द-संबंधी अर्थों (concepts) का एक सार्थक समूह मात्र है, परंतु रूप में थोड़ा सा भेद है। वाक्यसंबंधी 'रूप' प्रायः क्रिया के संबंध में होता है और शब्दसंबंधी 'रूप' शब्द की अंतर्रचना के। अतः रूप दो प्रकार का होता है, वाक्यसंबंधी तथा शब्दसंबंधी। वह तत्त्व जिससे अर्थ का बोध होता है अर्थमात्र और जिससे रूप का बोध होता है रूपमात्र कहलाता है। रूपानुसार रूपमात्र के भी दो भेद हो जाते हैं, वाक्यसंबंधी तथा शब्दसंबंधी; रूपसाधक तथा शब्दसाधक। एक उदाहरण से यह विषय स्पष्ट हो जायगा। यथा 'हंसनी उड़ रही है, वाक्य में 'पक्षी' के उड़ने का बोध होना' अर्थ और 'हंसनी उड़' अर्थमात्र है और अर्थ का अन्य पुरुष एक वचन वर्तमान काल होना; अथवा हंसनी का कर्त्ताकारक में होना रूप और उसका द्योतक 'रही है' रूपसाधक रूपमात्र है। व्यष्टि रूप से 'हंसनी' शब्द से 'पक्षी' के सत्व का बोध होता है। अतः 'पक्षी सत्व' अर्थ और उसका द्योतक 'हंसनी' अर्थमात्र है, इसी प्रकार 'उड़ने का भाव' अर्थ और 'उड़' अर्थमात्र है; फिर हंसनी का स्त्रीलिंग होना रूप और उसका द्योतक 'नी' प्रत्यय शब्द-साधक रूपमात्र है। यहाँ 'हंसनी' का कर्त्ता आदि होना क्रिया के संबंध में है और हंसनी का स्त्रीलिंग होना स्वयं अपनी अंतर्रचना से संबंधित है। अतः कर्त्ता आदि होना वाक्यरूप और स्त्रीलिंग होना शब्दरूप है। रूपमात्र का स्वरूप समझाने के लिये दो चार उदाहरण दे देना अनुचित न होगा, जैसे देवी, लड़की आदि में 'ई' (मात्रा) स्त्रीलिंग सूचक, books में 'S' बहुवचनसूचक, फा० قلمم (कलमम्) में م (म) उत्तमपुरुष-सूचक, सं० कृष्णः, मधुरः, उष्णः

आदि में : (स्), 'कृष्णा, मधुरा, उष्णा, आदि में 'आ' (मात्रा), कृष्णम् 'मधुरम्' उष्णम् आदि में 'म' क्रमशः पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग सूचक अपठत्' अदधात्, अपतत् आदि में 'अ' भूत काल सूचक, حکم خدا (हुक्मे खुदा) में ـے (ए) अथवा (जेर संबंध कारक सूचक एकवर्णिक रूपमात्र हैं । 'अहं चंद्रं पश्यामि' में चन्द्र में 'अम्' कर्मकारक सूचक, राजत्व मृदुल आदि में 'त्व' सुन्दरता प्रचुरता आदि में 'ता', बुढ़ापा, मुटापा आदि में 'पा', घबराहट, चिकनाहट आदि में 'हट' भाववाचक, सं० रक्षति, पिबति आदि में 'ति' एकवचन, प्रथमपुरुष, लट् (वर्तमान) कालद्योतक स शिशुः प्रासादात् अपतत्', 'मनुष्यः ग्रामात् आगच्छति' में 'आत्' (पंचमी विभक्ति) अपादान कारक सूचक, एकाक्षरी रूपमात्र हैं; जाता है', देखता है, आदि में 'ता है' एकवचन पुल्लिंग, उत्तम पुरुष, वर्तमानकाल सूचक सं० पठिष्यति, भविष्यति, आदि में 'इष्यति' एकवचन, प्रथमपुरुष, लृट् (भविष्यत) काल सूचक अनेकाक्षरी रूपमात्र हैं, 'क्या यह निर्धन है ?' क्या प्रश्न सूचक, 'I shall go' में shall' भविष्यत् काल सूचक, चीनी 'वो ती युत त्सु' में 'ती' संबंधकारक सूचक एक शाब्दिक रूपमात्र हैं; इसी प्रकार 'Will have been finished, में 'Will have been' मर गया होता' में 'गया होता' 'चला जाता था' में 'जाता था' बहु शाब्दिक रूपमात्र हैं। इस प्रकार रूपमात्र एक वर्ण अथवा मात्रा से लेकर अनेक शब्द तक का हो सकता है। उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि अर्थमात्र तथा रूपमात्र में वही संबंध है जो साध्यसाधक, प्रकृति प्रत्यय, पूर्णरिक्त, वाचक द्योतक आदि में है।

रूपमात्र के रचनात्मक भेद—रचना के अनुसार रूपमात्र के तीन भेद किए जा सकते हैं;—(१) वे रूपमात्र जिनका अर्थमात्र से पृथक् अस्तित्व हो अथवा पृथक्करण किया जा सके। इनको मुक्त रूपमात्र कह सकते हैं। (२) वे रूपमात्र जिनका अर्थमात्र से

पृथक् कोई अस्तित्व न हो अर्थात् जो अर्थमात्र बोधक अक्षरों के परिवर्तन द्वारा उत्पन्न हों और अपने अर्थमात्रों से भिन्न किए जा सकें। इन्हें बद्ध रूपमात्र कह सकते हैं। (३) वे रूपमात्र जिनका पृथक् कोई अस्तित्व न हो अपितु अर्थमात्रों के रूप अर्थात् व्याकरणिक संबंध का बोध उनके स्थान अथवा क्रम से हो। इन्हें स्थान अथवा क्रम संबंधी रूपमात्र कह सकते हैं।

१ *मुक्त रूपमात्र*—चीनी आदि व्यासप्रधान, तुर्की आदि प्रत्ययप्रधान, अमरीका की कुछ समासप्रधान भाषाओं, हिंदी, मराठी, गुजराती, पंजाबी, बँगला आदि देशी भाषाओं तथा अं० फ्रेंच आदि आधुनिक भाषाओं में पाए जाते हैं। प्रत्येक प्रकार की भाषाओं के एक दो उदाहरण दे देना युक्तसंगत होगा। चीनी में रूपमात्र अर्थमात्र से पूर्णतः पृथक् रहता है इसमें अर्थमात्र पूर्ण शब्द और रूपमात्र रिक्त शब्द कहलाते हैं जैसे 'मु' छिह त्सु' में मु (माता) तथा त्सु (पुत्र) अर्थमात्र पूर्ण शब्द और 'छिह' (क) रूपमात्र रिक्त शब्द है। कभी कभी तो पूर्ण शब्द अर्थात् अर्थमात्र भी रिक्त शब्द है। कभी कभी तो पूर्ण शब्द अर्थात् अर्थमात्र भी रिक्त शब्द अर्थात् रूपमात्र हो जाते हैं जैसे काल अथवा काल-भेद प्रगट करने के लिये एक क्रिया में दूसरी क्रिया जोड़ दी जाती, है, जैसे 'त्सेउ' (चलना) तथा 'यऊ' (चाहना) दोनों पूर्ण शब्द हैं, परंतु यऊ त्सेउ' (चलेगा) में 'यऊ' रिक्त शब्द होकर भविष्यत काल सूचक रूपमात्र हो जाता है !, प्रत्ययप्रधान भाषा तुर्की में रूपमात्र अर्थमात्र में जुड़े तो होते है, परंतु सहज ही पृथक् किए जा सकते हैं जैसे वाकरिम, सेवरिम आदि में 'इम' एक वचन उत्तम, पुरुष, वर्त्तमानकालिक रूपमात्र, एवलेर, अतलर आदि में 'लेर', अथवा लर बहुवचन सूचक रूपमात्र, हैं। अमरीका की कुछ समासप्रधान भाषाओं से तो रूपमात्र अर्थमात्र से नितांत ही पृथक रहते हैं। उनमें रूपमात्र प्रायः वाक्यारंभ में, अर्थमात्र वाक्यांत में आते हैं। यद्यपि विभक्तिप्रधान भाषाओं में मुक्त रूपमात्र

नहीं पाए जाते, तद्‌पि बहिर्मुखी विभक्तिप्रधान योरोपीय भाषाएँ इतनी व्यवहित हो गई हैं कि उनसे निष्क्रमित हिंदी, मराठी, गुजराती आदि आधुनिक भाषाओं में अधिकतर मुक्त रूपमात्र ही पाए जाते हैं जैसे हिं० 'राम ने मोहन को मारा' में 'ने' कर्ता-सूचक और 'को' कर्मसूचक रूपमात्र हैं; मराठी 'मी तिला तु रुगांत मेटण्यास गेलो' में 'तु रुगांत' में आँत अधिकरणकारक सूचक; 'अन्नाची भिक्षा, में 'ची' 'भगवान बुद्धा चा शिष्य' में 'चा', 'त्याच्या' में 'च्या' आदि संबंधकारक सूचक रूपमात्र हैं; गुज० बुद्ध भगवान मगधनी राजधानी राजगृहना वेणुबन मां रहेता हता' में 'वन मां' में 'माँ' अधिकरणकारक सूचक मगधनी में नी' 'राजगृह ना' में 'ना' संबंधकारक सूचक रूपमात्र हैं; पंजाबी, 'शामदा वेला', पहाड़ियाँ दे पिक्छे,' वियोगनि दी विदायगी; में 'दा,' 'दे,' 'दी,' संबंध कारक, ते इस नू' इह हक नहीं दिला सके जिहड़ा गुजरात विच गुजराती नू हासल है' में 'नू', कर्म-कारक सूचक रूपमात्र है; बँगला, हासपातालेर डाक्तार दिलीप बाबुर बन्धु हासपताले चलिया गेल,' 'बंधुर कुशल संवादेर आनंदे ताहार भत्सनार मय दूर हईया गेल' में हासपातालेर, बाबुर बंधुर आदि में 'र' संबंधकारक सूचक, 'आजई अटाके आमि काऊ के दिछ्छ' में ओटाके, काउके में 'के' कर्मकारक सूचक रूपमात्र हैं; अं० Give it to Mohan में to कर्मकारक सूचक 'He walks' में 's' एकवचन, वर्तमानकाल सूचक रूपमात्र हैं; तथा फ्रेंच 'coup de vent' (वायु का झोंका), 'Affaire d' amour (प्रेम का विषय), Cheval de bataille' (युद्ध का घोड़ा), Maitre de hotel (होटल का अधिकारी) आदि में 'de' संबंधकारक सूचक, en famille (परिवार में); en revanche (बदले में), en route (मार्ग में) ne ville (नगर में), आदि में en अधिकरणकारक सूचक

रूपमात्र हैं। कभी कभी संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन में भी इस प्रकार के मुक्त रूपमात्र पाए जाते हैं जैसे सं० 'अशोक इति विख्यातः राजा सर्वजनप्रियः', 'विशेषेण जानातीति विज्ञः' आदि में 'इति' उक्ति सूचक मुक्त रूपमात्र हैः इसी प्रकार सं० अर्थ, ग्री० अन आदि भी हैं। इसके अतिरिक्त सं० अपठत् बालस्य आदि पदों का सहज ही विश्लेषण किया जा सकता है। यहाँ पट् अर्थ-मात्र, अ आगम और त् प्रत्यय तथा स्य विभक्ति हैं। लै० Ab extra (बाहर से) Ab ovo (अंडे से), Ab intra (भीतरसे) आदि में 'Ab,' in toto (पूर्ण रूप से), in nubibus बादलों में) in hoace (शांति में), in camera (कमरे में), in curia (न्यायालय में), ingremis (हृदय में) आदि में in' अधिकरण कारक सूचक रूपमात्र हैं।

२—*बद्ध रूपमात्र*—प्रायः प्राचीन योरोपीय तथा सैमिटिक आदि विभक्तिप्रधान भाषाओं में पाए जाते हैं। यद्यपि संस्कृत में कुछ मुक्त रूपमात्र भी पाए जाते हैं तदपि अधिकतर रूपमात्र ऐसे हैं जिनका अर्थमात्र से पृथक्करण करना कठिन है जैसे 'नी' धातु से बने नयति निनाय आदि 'वच' धातु से बने उवाच ऊचुः आदि 'कृ' धातु से बने चकार, चक्रु आदि रूपों में अर्थमात्र तथा रूपमात्र का पृथक्करण करना असंभव है। फा० آیند (आयन्द) में ن (न) آمدیم (आमदेम) ی (ए) बहुबचन सूचक रूपमात्र हैं, जिनको अर्थमात्र से भिन्न नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार अरबी में سبب (सबब) مرض (मरज) وصف (वस्फ) کتاب (किताब), امیر (अमोर), نتیجہ (नतीजा) आदि के बहुबचन क्रमशः اسباب (असबाब) امراض (अमराज) کتب (कुतुब), امرا (उमर) نتائج (नताइज) आदि में बहुबचन सूचक रूपमात्र तथा مفعول (मफअल) معشوق (माशूक) आदि कर्म-वाचक कृदंतों में कृदंत सूचक रूपमात्र, शब्दों के अंतर्गत वर्णों का

परिवर्तन ही है। अरबी में क्रियाओं के विभिन्नकालीन रूप भी इसी प्रकार अक्षरावस्थान द्वारा बनते हैं जैसे كتب (कत्ब) का भूतकाल كتب (कतब), قتل (क़त्ल) का वर्तमानकाल يقتل (यक़तलु) आदि हैं। इस प्रकार के उदाहरण अंग्रेजी में भी पाए जाते हैं जैसे tooth, foot आदि के बहुवचन teeth, feet आदि हैं; siug, come, sit आदि के भूतकालिक रूप sang, came, sat आदि हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत, ग्रीक आदि भाषाओं में (accent) स्वर परिवर्तन से भी अर्थभेद होता है जैसे वैदिक-संस्कृत में 'इंद्रशत्रु' का तत्पुरुष समास की भाँति अर्थात् अंतोदात्त उच्चारण करने से उसके अर्थ होते थे 'इंद्र का शत्रु' और बहुव्रीहि समास की भाँति अर्थात् आद्योदात्त उच्चारण करने से 'इंद्र है शत्रु जिसका'; इसी प्रकार ग्रीक में 'पैट्रोक्टो-नॉस' का अर्थ है 'पिता को मारनेवाला' और 'पैट्रो क्टोनॉस' का 'पिता द्वारा मारा हुआ'। चीनी में भी स्वर का अधिक महत्त्व है।

३—स्थान अथवा क्रमसंबंधी रूपमात्र—हिंदी, अंगरेजी, फ्रेंच, चीनी आदि भाषाओं में अर्थमात्रों के स्थान अथवा क्रम से ही उनके रूप का बोध हो जाता है। उदाहरणार्थ हिंदी में कर्त्ता-कर्म-क्रिया का क्रम है जैसे 'गोविंद पुस्तक पढ़ता है' में 'गोविंद', 'पुस्तक' तथा 'पढ़ता है' के स्थान से उनका क्रमशः कर्त्ता, कर्म तथा क्रिया होना व्यक्त होता है; अंगरेजी में कर्त्ता-क्रिया-कर्म का क्रम है जैसे—Govind reads the book, में स्थानानुसार Govind कर्त्ता, reads क्रिया तथा book कर्म है; चीनी में भी अंगरेजी की भाँति कर्त्ता-क्रिया-कर्म का ही क्रम है जैसे नी ता ग्गो' (तुम मुझे मारते हो) में 'नी' कर्त्ता, 'ता' क्रिया और 'गो' कर्म है। यदि उक्त उदाहरणों में शब्दों के स्थान में परिवर्तन कर दिया जाय तो अर्थ में बहुत भेद हो जाता है, उदाहरणार्थ 'पुस्तक पढ़ती है गोविंद' अथवा 'पुस्तक गोविंद पढ़ता है' The book reads

Govind अथवा न्गो ता नी के अर्थ होंगे 'किताब गोविंद को पढ़ती है' अथवा मैं तुम्हें मारता हूँ'। संस्कृत, ग्रीक आदि में ऐसा नहीं है, उनमें कर्त्ता-क्रिया-कर्म आदि में विभक्तियाँ अथवा प्रत्यय जोड़े जाते हैं। अतः उन्हें आगे पीछे कहीं भी रख सकते हैं जैसे उक्त उदाहरण 'गोविंद पुस्तक पढ़ता है' की संस्कृत 'गोविंद पुस्तकं 'पठति' परंतु 'गोविंदः पठति पुस्तकं' 'पुस्तकं पठति गोविंदः' पठति पुस्तकं गोविंदः' अथवा 'पठति गोविदः पुस्तकं' आदि कर देने से कोई अर्थभेद नहीं होता।

रूपमात्र के उपभेद—मुक्त रूप मात्र—(१) रिक्त शब्द—वे शब्द जो अर्थमात्रों के विशेष के द्योतक हैं रिक्त शब्द कहलाते हैं। चीनी में रिक्त शब्द अधिक संख्या में पाए जाते हैं। ऊपर इनका उल्लेख हो चुका है। हिंदी तथा अँगरेजी में भी इसी प्रकार के रिक्त शब्द पाए जाते हैं जैसे 'क्या', do, did इत्यादि प्रश्न सूचक रूपमात्र।

(२) *प्रत्यय*—योरोपीय भाषाओं में प्रत्ययों द्वारा शब्दों के रूप का ज्ञान होता है। प्रत्यय वे शब्दांश अर्थात् वर्ण अथवा अक्षर हैं जो शब्दों के अंत में लगाए जाते हैं। और उनके रूपविशेष के द्योतक होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—व्याकरणिक तथा रचनात्मक, रूपसाधक तथा शब्दसाधक। रूपसाधक प्रत्यय नाम तथा आख्यात्, संज्ञासंबंधी तथा क्रियासंबंधी, सुप तथा तिङ, कारकद्योतक तथा क्रियाद्योतक, दो प्रकार के होते हैं और उसी तरह शब्दसाधक प्रत्यय भी कृत तथा तद्धित दो प्रकार के होते हैं। नाम तथा आख्यात प्रत्ययों के भी क्रमशः कारकचिह्न (विभक्ति), अव्यय तथा पुरुष विशेषक आदि उपभेद हैं। उक्त प्रत्ययवर्गीकरण की संक्षिप्त रूपरेखा निम्न प्रकार से खींची जा सकती है—
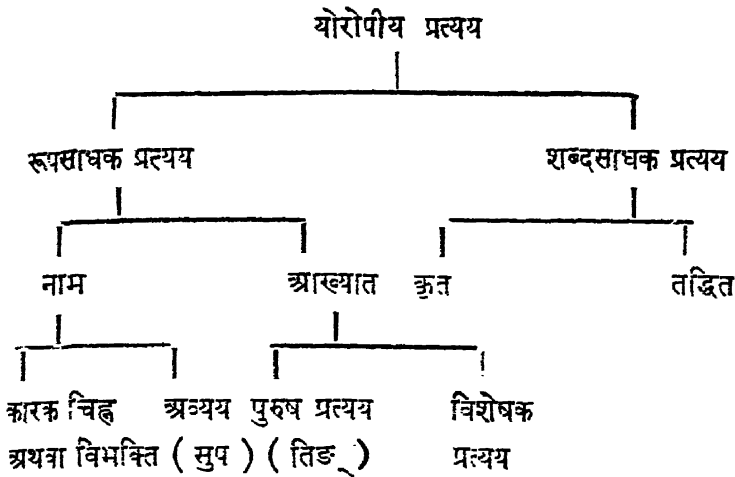
(क) *रूपसाधक प्रत्यय*—वे रूपमात्र हैं जो संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि के अंत में लगकर उनके कारक, वचन आदि का और क्रियांत में लगकर उसके पुरुष, वचन, काल आदि का बोध कराते हैं। संज्ञा, सर्वनाम आदि में लगनेवाले प्रत्यय नाम और क्रिया में लगनेवाले आख्यात कहलाते हैं।

(ख) *नामप्रत्यय*—दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो संज्ञा तथा सर्वनाम के अंत में लगकर उनके कारक का बोध कराते हैं। इन्हें कारकचिह्न अथवा विभक्ति कहते हैं। दूसरे वे जो सब लिंगों, वचनों तथा कारकों में अपरिवर्तित रहकर क्रिया के विशेषण स्वरूप प्रयुक्त होते हैं। इन्हें अव्यय कहते हैं। अव्यय की परिभाषा संस्कृत में इस प्रकार है—

'सदृशं त्रिषुलिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥'

अर्थात् तीनों लिङ्गों, सब विभक्तियों तथा वचनों में एक से रहनेवाले शब्द अव्यय कहलाते हैं।

नाम प्रत्ययों के भेद—(अ) कारक चिह्न अथवा विभक्तियाँ—कारक को अंगरेजी में Case और उर्दू में حالت (हालत) कहते हैं। कारक के चिह्न संस्कृत में विभक्ति, अंगरेजी में Case sign और उर्दू में علامت (अलामत) कहलाते हैं। कारक तथा विभक्तियाँ प्रायः सभी भाषाओं में एक सी हैं, भेद केवल नाम तथा संख्या का है। हिंदी कारकचिह्न, अंगरेजी Case sign तथा उर्दू علامتیں (अलामतें) तो प्रायः संज्ञा तथा सर्वनाम के साथ आती हैं और सब वचनों तथा लिंगों में अविकृत रहती हैं, परंतु संस्कृत विभक्तियाँ संज्ञा तथा सर्वनाम के अतिरिक्त विशेषणों में भी लगती हैं और लिंग तथा वचनानुसार परिवर्तित हो जाती हैं अर्थात् वे कारक के अतिरिक्त उसके लिंग तथा वचन की भी द्योतक हैं। इतना ही नहीं अपितु वे शब्दांत में आनेवाले स्वरों के अनुसार भी परिवर्तित हो जाती हैं। उक्त विषय पृष्ठ २१४-२१५ की तुलनात्मक सारणी से स्पष्ट हो जायगा।

(अ) *अव्यय*—अव्यय अविकारी शब्द हैं, परंतु वास्तव में देखा जाय तो ये भी एक प्रकार के विभक्ति प्रत्यय ही हैं, जो कि विभक्तियों की भाँति संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषणों के साथ लगते हैं। इतना ही नहीं अपितु अलम्, सुखेन, चिरात्, अवश्यम्, समीपे, अकस्मात्, आदि अनेकों अव्यय विभक्तियों के प्रतिरूपक हैं। अंतर केवल इतना है कि विभक्तियाँ संज्ञा, सर्वनाम आदि का क्रिया के संपादन में रूप बताती हैं और अव्यय स्वयं एक प्रकार के क्रियाविशेषण ही है; दूसरे विभक्तियाँ कारक तथा लिंग, वचन आदि के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं और अव्यय सब लिंग, वचन तथा कारकों आदि में एक से रहते हैं। संस्कृत में यदा-कदा, अतः कुतः, अत्र तत्र, इत-ततः आदि अनेकों अव्यय आते हैं। कुछ संस्कृत अव्यय जैसे अतः, आदि, एवम्, अन्यत्र, प्रायः, यथा, शनैः इत्यादि हिंदी में भी प्रयुक्त

होने लगे हैं। चूँकि, ताकि, लिहाजा, इसलिए, बल्कि, लेकिन, गोकि आदि कुछ उर्दू अव्यय का भी हिंदी में आगम हो गया है।

(छ) *आख्यात प्रत्यय*—जिस प्रकार नामप्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि के साथ लगकर उनका व्याकरणिक संबंध बताते हैं, उसी प्रकार आख्यात प्रत्ययों को क्रिया की विभक्ति कह सकते हैं। एक दो उदाहरणों से इनका रूप स्पष्ट हो जायगा, यथा: 'पठिष्यति में 'ति' प्रथमपुरुष एकवचन सूचक और ष्य (स्य) लृट् (भविष्यत्) काल सूचक प्रत्यय हैं; 'अपठम्' में 'म्' उ० पु० एकवचन सूचक और 'अ' भूतकालिक प्रत्यय हैं। हिंदी, अंग्रेजी तथा फारसी में भी इस प्रकार के प्रत्यय पाए जाते हैं जैसे 'वह जाती है' में 'ती है' एकवचन, अन्यपुरुष, वर्तमानकाल द्योतक है; He failed में ed भूतकाल द्योतक है, फा० آمدم (आमदम) में—(मीम = म) واحد متکلم (वाहिद-मुतकल्लिम) उ० पु० एकवचन द्योतक, آمدی (आमदी) में ی (ये = ई) واحد حاضر (वाहिद हाजिर) एकवचन मध्यम-पुरुष द्योतक रूपमात्र हैं।

आख्यात प्रत्ययों के भेद—(अ) पुरुष प्रत्यय—वे प्रत्यय हैं जो क्रियांत में आकर उसका काल, वचन तथा पुरुष बताते हैं। इन्हें तिङ् प्रत्यय भी कहते हैं। ये ति, तः, अन्ति आदि हैं जैसे पठित, पठतः पठन्ति में ति, तः, अन्ति क्रमशः प्रथमपुरुष एकवचन, प्र० पु० द्वि० वचन, प्र० पु० बहुवचन के द्योतक वर्तमान-कालिक तिङ् प्रत्यय हैं। इनका क्रिया के साथ वही संबंध होता है जो विभक्तियों का नाम के साथ होता है। अतः इन्हें क्रिया की विभक्ति कहना अनुचित न होगा।

(आ) *विशेषक प्रत्यय*—वे प्रत्यय हैं जो क्रिया में पुरुष प्रत्यय के पूर्व आते हैं। इनसे क्रिया के रूपों की सिद्धि में विशेष सहायता मिलती है।

कारक तथा कारकचिह्न

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
हिंदी कारक	حالتیں (हालतें)	चिह्न अथवा علامت (अलामतें)	Case	Case-Sign	संस्कृत कारक
कर्त्ता	فاعلی (फ़ाइली)	ने	Nominative	—	कर्त्ता
कर्म	مفعولی (मफ़ऊली)	को, के	Objective	to, by, etc prepositions	कर्म
करण	مجروری (मजरूरी)	से	Objective	with	करण
संप्रदान	مجروری (मजरूरी)	को, के लिए	Dative	—	संप्रदान
अपादान	مجروری (मजरूरी)	से	Objectiv (Ablative)		अपादान
संबंध	اضافی (इज़ाफ़ी)	का, के, की [ِ (ए), ज़ेर) इज़ाफ़त]	Possessive	's, of	संबंध*
अधिकरण	مجروری (मजरूरी)	में, पै, पर	Objective	in, at, on	अधिकरण
संबोधन	ندائی (निदाई) خبری (ख़बरी)	हे, ओ ए	Vocative Absolute	o	संबोधन

* अनेक विद्वान् संबंध तथा संबोधन को क्रिया से संबंधित न होने के कारण कारक नहीं मानते।

कारक तथा कारक चिह्न

(७)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम	:	औ	अः
द्वितीया	अम्	औ	अः
तृतीया	एन	भ्याम्	भिः
चतुर्थी	ए	भ्याम्	भ्यः
पञ्चमी	आत्	भ्याम्	भ्यः
षष्ठी	स्य	ओः	आम्
सप्तमी	इ	ओः	सु
	हे, अयि	रे;भो	आदि

(८)

विभक्तियों के शब्दांतिक स्वर तथा लिंगानुसार परिवर्तन के उदाहरण

प्रथमा

	शब्द	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पुल्लिंग	बाल	बालः	बालौ	बालाः
	कवि	कविः	कवी	कवयः
	साधु	साधुः	साधू	साधवः
	पितृ	पिता	पितरौ	पितरः
स्त्रीलिंग	लता	लता	लते	लताः
	नदी	नदी	नद्यौ	नद्यः
	धेनु	धेनुः	धेनू	धेनवः
	मातृ	माता	मातरौ	मातरः
नपुंसक लिंग	फल	फलम्	फले	फलानि
	वारि	वारि	वारिणी	वारीणि
	मधु	मधु	मधुनी	मधूनि

नोट—इसी प्रकार द्वितीया, तृतीया आदि में भी विभक्तियाँ परिवर्तित हो जाती हैं।

सहायता मिलती है। ये विकरण, द्वित्व तथा आगम तीन प्रकार के होते हैं।

१—*विकरण*—यह एक प्रकार का अंतःप्रत्यय है जो पुरुष प्रत्यय तथा धातु के मध्य में आता है और क्रिया के गुण, काल तथा वाच्य का द्योतक होता है। उदाहरणार्थ विद् युध् तथा नृत् नश आदि धातुओं के प्र० पु० एकवचन लट् लकार सूचक रूप क्रमशः विद्यते, युध्यते तथा नृत्यति, नश्यति आदि हैं जिनमें ति (अथवा परिवर्तित रूप ते) पुरुषप्रत्यय और 'य' विकरण है; इसी प्रकार पृच्छति, लज्जते, सिञ्चति आदि में 'ति' पुरुष प्रत्यय के पूर्व 'अ' विकरण है तथा क्रियादि गणीय धातुओं के लट् लोट्, लङ् और विधिलिङ् लकार सूचक रूपों में श्ना (ना) विकरण आता है जैसे क्री धातु के क्रीणाति (लट्), क्रीणातु (लोट्) अक्रीणात् (लङ) आदि रूपों में 'णा' विकरण है। संस्कृत में मुख्य विकरण शप्, शपो, श्लु, श्यन्, श्नु, शश्नम्, श्ना, स्य, सिप्, उ, तासि लुक्, यक्, च्लि आदि हैं। ये प्रायः लट्, लोट, लृट और विधिलिङ् लकारों में आते हैं।

द्वित्व——दो प्रकार का होता है, रूपसाधक और शब्दसाधक। रूपसाधक द्वित्व वह है जो क्रिया में होता है। संस्कृत क्रियाओं में इस प्रकार के द्वित्व पाए जाते हैं जो गण तथा कालों में एक प्रकार के भेद के द्योतक हैं, उदाहरणार्थ जुहोत्यादि गणीय तथा अन्य कुछ धातुओं से बननेवाली लिट् लकार (परोक्ष, अथवा पूर्णभूत) सूचक सभी क्रियाओं में द्वित्व पाया जाता है। इनमें ङ् प्रत्यय 'हु' धातु के जुहो' होने पर लगते हैं जैसे पठ्, भू, हृ, कृ, हनु, हस्, खाद् आदि धातुओं के लिट् लकार सूचक रूप क्रमशः पपाठ, बभूव, जहार, चकार, जघान, जहास, चखाद आदि हैं। जुहोत्यादि गणीय क्रियाओं के लट्, लङ् लोट् आदि लकारों में भी द्वित्व पाया जाता है जैसे दा, धा, भी हा आदि के लट् रूप क्रमशः ददाति, दधाति, बिभेति, जहाति आदि हैं।

आगम—१ भी द्वित्व की भाँति रूपसाधक तथा शब्दसाधक दो प्रकार का होता है। रूपसाधक आगम प्रायः क्रिया के आदि में आता है और कालद्योतक होता है। इसका सुंदर उदाहरण 'अ' का पूर्वागम है जो कि लुङ (सामान्य भूत) तथा लङ् (अनद्यतन भूत) लकारों में आता है जैसे पठ्, भू, खाद् आदि धातुओं के अपाठीत्, अभूत्, अखादीत् आदि लुङ् और अपठत् अभवत्, अखादत् आदि लङ् रूपों में 'अ' का आगम हुआ है। प्राचीन-काल में 'अ' पूर्वागम भूतकाल द्योतक था, परंतु आजकल भूतकाल का बोध पुरुष प्रत्यय 'त' से ही हो जाता है।

(ख) *शब्दसाधक प्रत्यय*—वे प्रत्यय हैं जिनसे शब्दों के अर्थों में भेद अथवा विकार हो जाता है। ये किसी शब्द में उसके प्रयोगार्ह होने के पूर्व लगते हैं, अतः शब्दसाधक रूपमात्र हैं। इनके दो भेद हैं कृत् तथा तद्धित्। (अ) कृत प्रत्यय वे प्रत्यय हैं जो धातुओं के अंत में जोड़े जाते हैं, धातु तथा कृत प्रत्ययों के संयोग से बने शब्द कृदंत कहलाते हैं, अतः कृत प्रत्यय कृदंत-सूचक रूपमात्र हैं, जैसे ज्ञा, गम्, स्व, पठ्, वच्, भिद्, सिध् आदि धातुओं से क्रमशः निर्मित ज्ञात, गत, सुप्त, पठित, उक्त, भिन्न, सिद्ध आदि में शब्दों में 'क्त' अथवा उसका परिवर्तित रूप त, न आदि कृत प्रत्यय कृदंतसूचक रूपमात्र है। इसी प्रकार गति, उक्ति आदि में 'क्तिन' अथवा उसका विकृत रूप क्ति, ति आदि, गमन्, शयन,

१. रूपसाधक द्वित्व तथा आगम प्रायः क्रिया शब्दों के पूर्व आते हैं, अतः रचनानुसार वे एक प्रकार के उपसर्ग हैं प्रत्यय नहीं, परंतु क्योंकि उपसर्ग शब्दसाधक रूपमात्र हैं रूपसाधक नहीं, अतः अर्थानुसार इन्हें उपसर्ग नहीं कह सकते। क्योंकि ये क्रिया के विशेष रूपों के द्योतक हैं, अतः इन्हें रूपसाधक (क्रिया) विशेष रूपमात्रों के अंतर्गत रखना ही उचित है।

पठन, स्वप्न, भेदन आदि में ल्युट (अन्), कर्त्ता नेता, वेत्ता आदि में तृच (तृ अथवा एक वचनरूप का अथवा ता), कर्त्तव्य, करणीय, वाच्य आदि में क्रमशः तव्य, अनीय तथा य और लेखक वाचक, पाठक आदि में 'अक' कृत प्रत्यय हैं। संक्षिप्ततः संस्कृत में मुख्य कृत प्रत्यय क्त, क्तिन, ल्युट, तव्य, अनीय, य, अच्, घञ्, क, तृच आदि हैं। एक उदाहरण से इनके कृदंतों का रूप स्पष्ट हो जायगा जैसे कृ से क्रमशः कृत, कृति, करण, कर्त्तव्य, करणीय, कार्य, कर, का, कारक कर्त्ता आदि। हिंदी तथा अंगरेजी में भी इस प्रकार के कृत प्रत्यय पाए जाते हैं जैसे आनेवाला, गानेवाला आदि में 'वाला', टूटनहार, सिर्जनहार आदि में 'हार', जड़िया में 'इया' गवैया में 'ऐया' थकित कथित आदि के इत, कतरनी चलनी आदि में 'नी' पियक्कड़, खिलक्कड़ आदि में, 'अक्कड़', लिखाई में 'ई' इत्यादि; इसी प्रकार अंगरेजी में Collector में or worker, writer आदि में er इत्यादि।

(आ) *तद्धित प्रत्यय*—वे प्रत्यय हैं जो धातुओं से बने अक्रिया शब्दों अर्थात् क्रिया शब्दों के अतिरिक्त अन्य सिद्ध शब्दों में लगते हैं। इनके संयोग से बने शब्द तद्धितांत कहलाते हैं। संस्कृत में तद्धित प्रत्यय बहुत से हैं जैसे प्रभुत्व, लघुत्व आदि में 'त्व', प्रभुता, लघुता आदि में 'ता' (तल्), मतिमान्, बुद्धिमान्, धनवान्, आदि में मान (मत् का परिवर्तित रूप) पुत्रवती, शीलवती में वती (वत् का स्त्रीलिंग), धनी, गृहणी, पापिनी आदि में 'ई तथा इनी', दैनिक, मासिक, वार्षिक आदि में 'इक' दयालु, कृपालु आदि में 'लु', बालिका, बाला, श्यामा आदि में 'आ' देवी, सुंदरी, नारी, दासी, ब्राह्मणी आदि में 'ई' इंद्राणी, भवानी, रुद्राणी आदि में आनी', इत्यादि तद्धित प्रत्यय हैं। हिंदी अँगरेजी तथा उर्दू में भी तद्धित प्रत्यय पाए जाते हैं जैसे हिंदी लकड़हारा, गाड़ीवान, खटिया, चौड़ाई आदि में हारा, वान, इया आदि, अँगरेजी में beauti

fully में ly, sale-able में able' begary में y आदि, तथा उर्दू में تحصیلداری (तहसीलदारी) کاریگری (कारीगरी) आदि में (ی इ) इत्यादि तद्धित प्रत्यय हैं।

(३)—उपसर्ग वे अविकारी शब्दांश हैं जो धातु और धातु से बने शब्दों के पूर्व लगकर उनका अर्थ परिवर्तित कर देते हैं। ये शब्दों में उनके प्रयोगार्ह होने के पूर्व लगते हैं, अतः शब्द-साधक रूपमात्र हैं। इन्हें संस्कृत में प्रादि अव्यय कहते हैं। इनकी विशेषता दो एक उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगी। यथा, गम् धातु का अर्थ है जाना, परंतु विविध उपसर्गों के संयोग से इसके विभिन्न अर्थ हो जाते हैं जैसे सम + गम् + (मिलना), निः + गम् (निकलना), अनु + गम् (पीछे चलना) अ + गम् (आना), अव + गम् (जानना), उप+गम् (पास पहुँचना), उत्+ गम् (उड़ना), प्रति + आ + गम् (लौटना), प्रति + गम् (फिर जाना) आदि: इसी प्रकार 'हृ' धातु से बने 'हार' शब्द के उपसर्ग-संयोगानुसार विभिन्न अर्थ हो जाते हैं जैसे प्र + हार (मारना), आ + हार (भोजन), सम + हार (मारना), वि + हार (घूमना), परि+हार (निवारण), प्रति + हार (द्वारपाल), उप + हार (भेट), अनु+हार (प्रतिरूप), इत्यादि। संस्कृत तथा हिंदी में मुख्य उपसर्ग प्र, परा, अप, सम, निः (निस्, निर) दुः (दुस्, दुर्) वि, आ, नि, उप, अधि, अपि, अनु, अव, परि, सु, उत, अभि, प्रति, अंतः, अ, अद, इति, कु, पुरा, पुनर स, इत्यादि हैं। इनके उदाहरण क्रमशः प्रचार, पराजय, अपयश, संरक्षण, निश्चल निर्भय, दुष्कर्म, दुर्गुण, विदेश, आजन्म, निग्रह, उपभेद, अधिराज, अत्याचार, अनुचर, अवगुण, परिणय सुपुत्र उत्तिष्ठ, अभिमान, प्रतिकार, अंतः करण, अधम, अद्भुत, इतिवृत्त, कुसंग पुरातन, पुनर्जन्म, सजीव, इत्यादि हैं। अंगरेजी तथा उर्दू में भी अनेकों उपसर्ग पाए जाते हैं। जैसे अं० illegal, dethrone, co-opera-

tion आदि में क्रमशः il, de, co आदि; उर्दू نیکنام (नेक-नाम), بدبو (बदबू) بوفا (बावफ़ा), بیفائدہ (बे फ़ायदा), ناپسند (नापसन्द), حاضر غیر (ग़ैरहाज़िर); خوشبو (ख़ुशबू) आदि में क्रमशः नेक, बद, बे, ना, ग़ैर ख़ुश आदि। अतएव उपसर्ग भी एक प्रकार का शब्दसाधक पूर्वागम ही है।

४—*शब्दसाधक द्वित्व*—द्वित्व से आशय किसी शब्द की पुनरावृत्ति से है। यह संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण आदि में पाया जाता है। यह प्रायः अर्थ पर बल देने के लिए प्रयुक्त होता है उसे द्विरुक्ति भी कहते हैं। संस्कृत व्यतिहार (बहुव्रीहि का एक भेद) समास इसका सुंदर उदाहरण है जैसे केशाकेशि, दंडादंडि, मुष्टामुष्टि, हस्ताहस्ति आदि। संस्कृत में साधारण पुनरावृत्ति भी पाई जाती है जैसे सं० शनैः शनैः, पुनः पुनः, अग्रे अग्रे इत्यादि। द्वित्व का प्रयोग हिंदी में भी होता है जैसे वह चलते चलते थक गया, यह औषधि घंटे घंटे भर बाद देना, दिन दिन का झगड़ा, उसने रो रो कर घर भर दिया, आदि में चलते-चलते, घंटे घंटे, दिन दिन, रो रो, इत्यादि।

बद्धरूप मात्र—१—अंतर्विभक्ति, अपश्रुति अथवा अक्षरावस्थान से आशय अर्थमात्र के अन्तरों में होनेवाले परिवर्तन से है अर्थात् कभी कभी अँगरेजी, अरबी आदि में किसी स्वर, वर्ण अथवा अक्षर के घटा बढ़ा देने अथवा परिवर्तन कर देने से ही शब्दों के रूप में भेद हो जाता है जैसे अ० take (वर्तमानकाल) से took (भूतकाल), tip (क्रिया), से tap (संज्ञा), man से (एक आदमी) men (बहुत से आदमी) आदि, अ० رسم (रस्म) के बहुवचन رسوم (रुसूम), ارسم (अरसुम) के رواسم (रवासिम) तथा مراسم (मरासिम), حاضر (हाज़िर), विशेषण से حضور (हुज़ूर) संज्ञा, كتب (कत्ब) धातु से كاتب (कातिब), कृदंत, كتبت (कतबत्) = (उसने लिखा) भूतकाल, يكتب

(तकतुबु = वह लिखता है) वर्तमान काल, اکتب (अक्तुब) प्रेरणार्थक क्रिया इत्यादि, तथा फा० آمدم (आमदेल) में आया एकवचन آمدیم (आमदेम) हम आए बहुवचन, آمدی (आमदी) तू आया भूतकाल, بیا (बया) तू आ विधि-क्रिया (imperative mood), مبیا (मया) तू मत आ निषेधात्मक विधि क्रिया इत्यादि ।

(२) *स्वरपरिवर्तन*—कभी कभी स्वरभेद (accent) द्वारा भी अर्थभेद हो जाता है अर्थात् स्वर भी रूपमात्र का कार्य करता है जैसे चीनी 'क्वोई क्वोक' में 'इ' पर उदात्त स्वर रहने से उसका अर्थ 'दुष्ट देश' और अनुदात्तस्वर रहने से श्रेष्ठ देश होता है। इस प्रकार के स्वर संबंधी रूपमात्र ग्रीक तथा संस्कृत में भी पाए जाते हैं।

(३) *स्वरभाव तथा अभाव*—किसी किसी शब्द में स्वर के भाव तथा अभाव से बड़ा अर्थभेद हो जाता है जैसे सं० देवासः सस्वर होने पर कर्त्ताकारक और स्वर रहित होने पर संबोधन कारक होता है। वैदिक काल में स्वर के भाव तथा अभाव से क्रिया का प्रधान अथवा गौण होना निश्चित होता था।

रूपमात्र के प्रयोगात्मक भेद—प्रयोगानुसार रूपमात्र के दो भेद किए जा सकते हैं, स्वतंत्र तथा परतंत्र। स्वतंत्रता-परतंत्रता का भेदीकरण रूपमात्रों की गति अथवा विचरण-शक्ति के अनुसार है। जो रूपमात्र स्वतंत्रतापूर्वक इधर उधर विचरण कर सकते हैं उन्हें स्वतंत्र और जो स्वतंत्रतापूर्वक इधर उधर नहीं घूम फिर सकते अर्थात् जिनकी गति बद्ध है, उन्हें परतंत्र कहते हैं। स्वतंत्र रूपमात्रों के उदाहरण तुर्की में अधिक पाए जाते हैं जैसे 'बाकरदिर-मे-लर' (उन्होंने आदर नहीं किया) में 'दिर' भूतकालिक 'मे' नकार सूचक, 'लर' बहुवचन बोधक रूपमात्र हैं। इन्हें 'बाकर' अर्थमात्र के पश्चात् जहाँ चाहे वहाँ

प्रयोग कर सकते हैं अर्थात् 'वाकर-लर-म-दिर', 'वाकर-मे-दिर-लर' आदि जो चाहे सो कह सकते हैं। परतंत्र रूपमात्रों के उदाहरण हिंदी, अंग्रेजी आदि में पाए जाते हैं जैसे 'मैंने उसको देखा' में 'ने' तथा 'को' कारक सूचक रूपमात्र है, परंतु इनको 'मैं' तथा 'उस' सर्वनामों के पश्चात् ही रखने का नियम है, इन्हें तुर्की की भाँति आगे-पीछे नहीं रख सकते। अंगरेजी के preposition (अव्यय) इसका सुंदर उदाहरण है जैसे 'in the well, on the roof आदि में in तथा on ऐसे रूपमात्र हैं जिन्हें well तथा roof के पश्चात् नहीं रख सकते।

रूपविकार—का संबंध रूपमात्र संबंधी विकारों से है। रूपविकार द्वारा रूपमात्र ही नहीं, कभी कभी शब्द भी परिवर्तित हो जाते हैं। रूप विकार का मुख्य कारण 'व्यष्टि में समष्टि तथा समष्टि में व्यष्टि' की भावना है। मनोविज्ञानानुसार मस्तिष्क सदैव सरलता की ओर अग्रसर होता है, अतः जब विभिन्न रूपों तथा भेदों का झमेला होता है, तब मस्तिष्क एकता तथा समानता लाना चाहता है और जब इतना अधिक सादृश्य हो जाता है कि अर्थ प्रकाशन में भी कठिनाई पड़ती है, तो नवीन रूपों तथा भेदों की उत्पत्ति करता है। इस प्रवृत्ति के अनुसार अनेक प्राचीन रूप तथा भेद नित्य प्रति नष्ट अथवा परिवर्तित होते रहते हैं और उनके स्थान में नवीन रूप उत्पन्न होते रहते हैं। ठीक यही दशा रूपविकारों की भी है। जब एक ही रूपों के द्योतक अनेकों रूपमात्र हो जाते हैं और व्यवहार में गड़बड़ होने लगता है, तो समता लाने के लिये उनमें से अनेकों निरर्थक होकर अव्यवहृत हो जाते हैं और जब रूपमात्र इतने कम रह जाते हैं कि काम नहीं चलता, तो नवीन रूप उत्पन्न होते हैं। यह विकार-चक्र चलता ही रहता है। जब एक प्रवृत्ति चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो दूसरी प्रवृत्ति कार्यक्षेत्र में आती है और जब वह भी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो फिर पूर्व प्रवृत्ति का पुनरुत्थान

होता है। रूपमात्र में उपमान का बड़ा हाथ रहता है, प्राचीन रूपों का नाश और नवीन रूपों की उत्पत्ति इसी के आधार पर होती है। उदाहरणार्थ संस्कृत में करण कारक तृतीया विभक्ति 'आ' है और सुधी से सुधिया, पितृ से पित्रा, श्रौत्र से श्रौत्रा, मति से मत्या, नदी से नद्या, धेनु से धेन्वा, आदि रूप बनते हैं; इसी प्रकार स्वामिन से स्वामिना, हस्तिन से हस्तिना आदि रूप भी बने, परंतु किसी कारणवश 'हस्तिना' रूप इतना प्रचलित हुआ कि 'ना' को ही तृतीया विभक्ति मान लिया गया और 'हस्तिना' के उपमान पर 'कविना', 'साधुना' 'अरिणा' 'वारिणा', आदि रूप बनने लगे और 'आ' विभक्तिवाले प्रचीन रूप लुप्त होने लगे।

रूपविकार के भेद—रूपविकार तीन प्रकार के होते हैं, परिवर्तन, उत्पत्ति तथा लोप अथवा नाश। (१) कभी तो रूपमात्र विकृत होकर अंशतः परिवर्तित हो जाता है, (२) कभी पूर्णतः नष्ट हो जाता है और उसका कार्य शब्द स्वयं ही कर लेता है (३) और कभी एक रूपमात्र के नष्ट हो जाने पर उसके स्थान में दूसरा रूपमात्र उत्पन्न हो जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्राचीन रूपमात्र के नष्ट होने पर ही नवीन रूपमात्र उत्पन्न हो, कभी-कभी प्राचीन रूपमात्र के रहते हुए भी नवीन रूपमात्र की उत्पत्ति हो जाती है और प्राचीन तथा नवीन दोनों रूपमात्र मित्रभाव से चलते रहते हैं। प्रत्येक प्रकार के रूपविकार के कुछ उदाहरण दे देने से उनका रूप स्पष्ट हो जायगा :

(१) रूपमात्रों में परिवर्तन—समयानुसार रूपमात्र परिवर्तित होते रहते हैं जैसे अधिकरण कारक का चिह्न अर्थात् सप्तमी विभक्ति संस्कृत में 'मध्ये' अपभ्रंश तथा प्राकृत में 'मज्झे, मज्झि,

मज्झहिं', पुरानी हिंदी में 'महिं', 'महि', और आजकल 'में', है; इसी प्रकार हिंदी में बहुवचन कर्त्ता कारक सूचक रूपमात्र 'ऐं' 'इयाँ' जैसे पुस्तकें, लड़कियाँ आदि का प्रचीनरूप, संस्कृत की नपुंसकलिंग बहुवचन सूचक प्रथमा विभक्ति 'आनि' और अन्य कारकों के बहुवचन सूचक रूपमात्र 'ओं' यों' (जैसे पुस्तकों, लड़कियों) का प्राचीन रूप नपुंसक लिंग बहुवचन सूचक षष्ठी विभक्ति 'आनान् था। इसी प्रकार अंगरेजी में ship भाववाचक संज्ञा (Abstract noun) सूचक, ly क्रियाविशेषण (Adverb) सूचक रूपमात्र क्रमशः Shine, like आदि के स्थानापन्न हैं।

(२) *रूपमात्रों का लोप*—कभी-कभी रूपमात्र छोड़ दिया जाता है, और उसका काम केवल अर्थमात्र से ही ले लिया जाता है, जैसे संस्कृत तथा हिंदी में संबोधन कारक के चिन्ह 'हे' 'रे' आदि हैं, परंतु कभी-कभी उनके न लगाने से भी काम चल जाता है; जैसे संस्कृत में 'हे' जगदीश! देहि मे मुक्तिम् 'चञ्चल लोचन! किं विलोकयसि', तथा हिंदी में 'हे' ईश्वर! सबका भला कर', 'हे' मित्र! तुम कहाँ थे? के स्थान में 'ईश्वर! सब का भला कर', मित्र! तुम कहाँ थे? आदि कर देने मे कोई भेद नहीं होता। अंगरेजी में भी ऐसा ही है जैसे 'O Mohan, come here 'अथवा; Mohan, come here में कोई भेद नहीं है। पाली में तो स्वयं अर्थमात्र ही संबोधन कारक का द्योतक है जैसे धम्मं, अग्नि, नदी, भिक्खु, माता (मात) पिता (पित), दण्डि, आदि संबोधनों में कोई विभक्ति नहीं हैं।

(३) *रूपमात्र का नाश तथा उत्पत्ति*—आदिम भारोपीय भाषा में संस्कृत काल तक द्विवचन का प्रयोग होता था। प्राचीन काल में द्विवचन नैसर्गिक युग्म के लिये, तदंतर कृत्रिम युग्म के लिये

तत्पश्चात् किन्हीं भी दो वस्तुओं के लिये आने लगा, और पाली-काल में निरर्थक होकर अव्यवहृत हो गया। प्राकृत में षष्ठी विभक्ति की व्यापकता के कारण चतुर्थी का लोप हो गया और चतुर्थी के स्थान में भी प्रायः षष्ठी ही आने लगी जैसा की निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट है—

	एकवचन	बहुवचन
चतुर्थी (सम्प्रदान) षष्टी (संबंध)	धम्मस्स	धम्मानं
च० तथा ष०	धेनुया	धेनूनं
च० तथा ष०	रुपस्स	रुपानं
च० तथा ष०	अग्गिनो, अग्गिस्स	अग्गीनं
च० तथा ष०	नज्जा, नदिया, नद्या	नदीनं
च० तथा ष०	भिक्खुनो (च०) भिक्खुस्स (ष०)	भक्खुनं
च० तथा ष०	मम, ममं, म्यहं, अम्हं	अम्हाकं, अम्हं
च० तथा ष०	तव, तवं, तुय्हं, तुम्हं	तुम्हाकं, तुम्हं
च० तथा ष०	इमस्स, इमेसं, अस्स, एस	इमेसानं, एसानं

इसी प्रकार वैदिक काल में 'रामा' जैसे आकारांत रूप कई विभक्तियों में लगे रहते थे, परंतु पाणिनि के समय तक ये सब नष्ट हो गए। प्राचीन रूपों की उपस्थिति में नवीन रूपों की उत्पत्ति का सुंदर उदाहरण 'हस्तिना' के उपमान पर 'ना' के संयोग से बननेवाले तृतीया रूपों का है जैसे जब ऋषिः, हरिः, विधुः, गतिः, मधु, अंबु आदि क्रमशः ऋषिणा, हरिणा, विधुना, गतिना, मधुना

अंशुना आदि रूप बन गए, तो इनके 'आ' विभक्तिवाले प्राचीन रूप लुप्त हो गए, परंतु कुछ जैसे 'मत्या, पत्या' आदि प्राचीन रूप भी अपने नवीन रूप 'मतिना', 'पतिना', आदि के साथ चलते रहे। इसी प्रकार प्राचीन काल में 'अपिवत्', 'अगच्छत्', आदि में 'अ' भूतकालद्योतक आगम रूपमात्र और 'त्' एकवचन प्रथमपुरुष सूचक तिङ् प्रत्यय था, परंतु आजकल 'सः जलं पीतवान्', 'सः गतवान्', जैसे 'आ' रहित रूप कुछ अधिक प्रचलित हो गए हैं और 'अ' वाले प्राचीन रूप तथा 'अ' रहित नवीन रूप दोनों साथ साथ चलते हैं।

अध्याय ८

अर्थविकार और उनके कारण

(क) बौद्धिक नियम तथा अर्थविकार

बौद्धिक *नियम*—अर्थविकार का संबंध शब्दार्थों में होनेवाले विकारों से है। प्रत्येक अर्थविकार का कुछ न कुछ कारण होता है। जब ये कारण कुछ व्यापारों तथा व्यवहारों में स्थायी रूप से पाए जाते हैं तो उनका विचार किया जाता है और विचार करके जो संबंध स्थापित होता है, उसे नियम कह सकते हैं। क्योंकि इन नियमों का संबंध मानसिक क्रिया से होता है अर्थात् वे बुद्धिगत होते हैं अतः इन्हें बौद्धिक नियम कहते हैं। बौद्धिक नियमों में ध्वनिनियमों की भाँति देश, काल, आदि का बंधन नहीं होता; वे किसी भी काल तथा देश की भाषाओं में लग सकते हैं अर्थात् ध्वनिनियम सापवाद होते हैं और निर्धारित सीमाओं के भीतर ही कार्य कर सकते हैं, परंतु बौद्धिक नियम निरपवाद होते हैं और स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सकते हैं। बौद्धिक नियमों के दो एक मुख्य उदाहरणों से उनका रूप स्पष्ट हो जायगा—

(१) *द्योतकता का नियम*—प्राचीन काल में संस्कृत में शब्दांत में आनेवाला 'आ' स्त्री प्रत्यय न था, जैसा कि सं० पुँल्लिग 'गोपा' से स्पष्ट है, परंतु अधिकांश में स्त्रीलिंग शब्दों के अंत में आने के कारण कालांतर में 'आ' में नवीन द्योतकता आ गई और वह स्त्रीलिंगसूचक प्रत्यय बन गया। यह उद्योतन सतत उपयोग अथवा कालभेद के कारण हुआ। तत्पश्चात् वही 'आ' प्रत्यय हिंदी में आने पर बड़प्पन अथवा पुरुषत्व का द्योतक हो गया, जैसे सूजा, टोकरा, कटोरा, तख्ता, पकौड़ा, पत्ता, चिट्ठा, टोपा, इत्यादि में

'आ' बड़प्पन का और बकरा, बेटा, चाचा मुर्गा, भौंरा, चकवा, लड़का, इत्यादि में पुरुषत्व का द्योतक है। यह द्योतकता भाषाभेद होने पर विभिन्न प्रकार का संसर्ग होने के कारण आई। उक्त दोनों प्रकार के अर्थविकारों के कारण विभिन्न हैं; परंतु फल एक ही है; अर्थात् अर्थोद्योत दोनों में होता है, जिसका मूलकारण स्थितिजन्य मानसिक अवस्था की विभिन्नता है। अतः अर्थोद्योतन का नियम बौद्धिक हो गया।

(२) *विशेषीकरण का नियम*—विशेषीकरण से तात्पर्य है अनेक ओर से एक ओर खिंचना। भाषा की यह प्रवृति है कि अर्थ अनेक ओर से खिंचकर एक विशेष ओर आ जाता है; तदनुसार जब एक ही व्यापार अथवा व्यवहार के द्योतक अनेक शब्द अथवा रूप प्रयुक्त होने लगते हैं, तो उनमें से कुछ नष्ट होने लगते हैं। उदाहरणार्थ, प्राचीन काल में तृतीया के रूप 'आ' तथा 'ना' दोनों प्रकार की विभक्ति जोड़कर बनते थे, जैसे हस्तिना, वारिणा, साधुना इत्यादि; परंतु आजकल 'आ' वाले रूपों का धीरे धीरे ह्रास होता जा रहा है और 'ना' वाले रूपों का प्रचार बढ़ रहा है। संभव है किसी समय 'आ' वाले रूप पूर्णतया नष्ट हो जायँ और तृतीया के रूप केवल 'ना' विभक्ति द्वारा ही बन सकें।

(३) *भेदीकरण का नियम*—भाषा की यह प्रवृत्ति है कि कोई भी दो शब्द एक ही अर्थ के द्योतक नहीं हो सकते। जब किसी भाषा में विभाषा, मिश्रण आदि किसी कारणवश दो अथवा अधिक शब्द पर्यायवाची हो जाते हैं तो उनके अर्थ में कुछ न कुछ भेद अवश्य हो जाता है; जैसे पाठशाला, मकतब, विद्यालय, स्कूल, मदरसा आदि पर्यायवाची हैं, परंतु इनके अर्थ में कुछ न कुछ भेद अवश्य है। पाठशाला में संस्कृत की, मकतब में अरबी फारसी आदि की, विद्यालय में संस्कृत आदि की उच्च कोटि की, स्कूल में अंग्रेजी की और मदरसे में उर्दू हिंदी की शिक्षा दी जाती है।

भेदीकरण के अनेक उदाहरण पाए जाते हैं, जैसे टोली (मित्रोंकी) गोष्ठी (साहित्यकों की), गिरोह (डाकुओं का), टुकड़ी (लड़ाकों की, दल (टिड्डियों का), भीड़ (जनता की), गोल (मण्डली), गल्ला (पशुओं का), इत्यादि; दुःख (कष्ट में), खेद (पश्चात्ताप अथवा निराशा में) क्षोभ (अनिष्ट के समय), शोक (किसी के मरने आदि के कारण होनेवाली व्याकुलता), विषाद (बड़ा भारी दुःख), इत्यादि; सभी जीवधारी 'बोलते' हैं, परंतु हाथी 'चिग्घाड़ता' है (trumpets), ऊँट 'बलबलाता' है (grunts) घोड़ा 'हिनहिनाता' है (neighs,) गधा 'रेंकता' है (brays), गाय 'रँभाती' है (cows), बिल्ली 'म्याऊ म्याऊ' करती है (mews), शेर 'गरजता' है (roars) मेंढक 'टर्र-टर्र' करता है (croaks)' मक्खी 'भन-भनाती' है (hums), इत्यादि; kitten (बिल्ली का बच्चा), fawn (हिरन अथवा बारहसिंघा का बच्चा), puppy (पिल्ला), duckling (बत्तख का बच्चा), tadpole (मेंढक का बच्चा) lamb (भेड़ का बच्चा), chiken मुर्गी का बच्चा इत्यादि।

अर्थविकार

१—अर्थावनति अथवा अर्थापकर्ष—जब किसी कारण से किसी शब्द के अर्थ गिर जाते हैं, अर्थात् अच्छे से बुरे हो जाते हैं तो उसे अर्थापकर्ष कहते हैं, जैसे पाली 'देवानं प्रियेन' (संस्कृत देवानां प्रियं) अशोक काल (३री शता० पू०) तक बौद्ध महाराजाओं की उपाधि थी, परंतु कात्यायन तथा पतंजलिकाल के पश्चात् ब्राह्मणों ने बौद्धों से द्वेष रखने के कारण 'देवानां प्रिय इति च' वार्तिक में 'मूर्खे'' और जोड़ दिया, जिससे उसके अर्थ गिरकर 'मूर्ख' हो गए; पाषंड' का अर्थ अशोककला तक अबौद्ध साधुओं का धर्म अथवा संप्रदाय विशेष' था, परंतु आजकल इसका अर्थ 'आडंबरी, ढोंगी, कपटी आदि' हो गया है; हिं० गँवार अथवा फा० देहाती या देहकानी का अर्थ 'गाँव का निवासी' था, परंतु

आजकल ग्रामीण तथा नागरिक सभ्यता में अधिक भेद होने के कारण इसका अर्थ 'मूर्ख' हो गया।

२—अर्थोन्नति अथवा अर्थोत्कर्ष—शब्दार्थ के बुरे से अच्छे हो जाने को कहते हैं। सं० धृष्ट का अर्थ है 'निर्लज्ज', परंतु बँगला में ढीट (धृष्ट का तद्भव रूप) के अर्थ अच्छे होकर 'सीधा' हो गए; सं० कर्पट अथवा पा० कप्पट का अर्थ 'जीर्ण वस्त्र' था परंतु आजकल इसके तद्भव 'कपड़ा' का अर्थ 'वस्त्र मात्र' हो गया है।

३—अर्थभेद—जब किसी कारण से किसी शब्द का अर्थ बिना किसी प्रकार उन्नत-अवनत, मूर्त-अमूर्त, विस्तृत-संकुचित, इत्यादि हुए नितांत भिन्न हो जाता है तो उसे अर्थभेद कहते हैं, जैसे सं० 'घर्म्म' के तद्भव 'घाम' के अर्थ हिंदी में 'धूप' हैं परंतु बँगला में 'पसीना' हैं; भारतवर्ष के दक्षिण-पश्चिमी किनारे पर गुजरात आदि में 'दरिया' समुद्र को कहते हैं, परंतु उत्तरी भारत में 'नदी' को कहते हैं, उत्तर प्रदेश में रामतुरई 'लौकी' को कहते हैं, परंतु बिहार में भिंडी को कहते हैं। पुस्तक सं० में पुल्लिंग है, परंतु हिंदी में स्त्रीलिंग; देवता सं० में स्त्रीलिंग, है, परंतु हिंदी में पुल्लिंग; दही तथा हाथी यू० पी० के पूर्वी भाग (बलिया-गोरखपुर आदि) में स्त्रीलिंग हैं, पर पश्चिमी भाग में पुल्लिंग।

४—अर्थापदेश—कभी कभी जब अप्रिय, अशुभ, भयानक, अमंगलसूचक, भद्दी आदि बातों की, उनका दोष कम करने के लिये सुंदर शब्दों द्वारा अभिव्यंजना की जाती है, तो उन शब्दों के अर्थ कुछ भिन्न होकर गिर जाते हैं। जैसे 'माता' का अर्थ साधारण 'मा' है, परंतु जब किसी बच्चे के चेचक निकल आती है तो कहते हैं 'उसके माता निकल आई है'। यहाँ 'माता' का अर्थ केवल भिन्न नहीं हो गया अपितु गिर भी गया। इसी प्रकार शीतला, महारानी की दया, मय्या की महर, देवी आदि भी चेचक के लिये आते हैं। कभी कभी अर्थापदेश में अर्थ भिन्न

होने तथा गिरने के अतिरिक्त कुछ संकुचित भी हो जाता है, जैसे 'सर्प' एक भयानक पशु है, उसकी भयानकता कम करने के लिये उसे प्रायः 'काला अथवा कीड़ा' कहते हैं। अतः अर्थापदेश एक ऐसा अर्थविकार है जो अर्थभेद तथा अर्थापकर्ष के संमिश्रण से निर्मित होता है और जिसमें कभी कभी अर्थसंकोच भी संमिलित रहता है।

५—*मूर्तिकरण*—कभी कभी कारणवश भाव, क्रिया, गुण आदि अर्थात् अमूर्त पदार्थवाचक शब्द, द्रव्य अर्थात् मूर्त पदार्थवाचक हो जाते हैं. जैसे प्राचीन काल में जनता=जन+ता था और अमूर्त अर्थ में प्रयुक्त होता था, परंतु आजकल इसके अर्थ मूर्त होकर 'प्रजा' हो गए हैं। 'संतति' का अर्थ 'सिलसिला' था, परन्तु अब संतान है। इसी प्रकार मीठा तथा नमकीन गुणवाचक विशेषण हैं, परन्तु 'दो रुपये का मीठा और एक रुपये का नमकीन दे दीजिए' में मीठा तथा नमकीन के अर्थ मूर्त हो गए। 'black of the lamp' में black के अर्थ स्याह नहीं, अपितु स्याही हैं।

६—*अमूर्तिकरण*—यह मूर्तिकरण का ठीक उल्टा है। जब किसी शब्द के अर्थ से मूर्त अमूर्त हो जाते हैं तो उसे अमूर्तीकरण कहते हैं, जैसे 'अर्धरात्रि में श्मशान भूमि तक जाने के लिये बड़ा भारी कलेजा चाहिए', 'उसके ऊपर अंकुश तो है नहीं', 'उसके लिए रोटी पैदा करना बड़ा कठिन है' इत्यादि में 'कलेजा' 'अंकुश' तथा 'रोटी' के अर्थ क्रमशः साहस, दबाव तथा जीविका हैं।

७—*अर्थसंकोच*—प्रत्येक शब्द में प्रारंभ में बहुत शक्ति होती है और उसका अर्थ अधिक व्यापक होता है; परंतु चूँकि भाषा परिवर्तनशील है, अतः ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती जाती है, शब्दार्थ संकुचित होता जाता है। जब किसी शब्द का अर्थ अनेक ओर से खिंचकर एक ओर आ जाता है अर्थात् साधारण से मुख्य हो जाता है, तो उसे अर्थसंकोच कहते हैं, जैसे प्राचीन काल में 'मृग'

का अर्थ 'पशुमात्र' था, जैसा कि मृगया (शिकार) तथा मृगेंद्र (मृग = पशु, इन्द्र = राजा, पशुओं का राजा अर्थात् शेर) के अर्थों से प्रकट होता है; परंतु आजकल इसका अर्थ 'हिरन' है। 'धान्य' के अर्थ 'अनाज' थे जो कि 'धन-धान्य' (धन तथा अन्न) में अब भी अवशेष हैं, परंतु आजकल इसके अर्थ संकुचित हो गए हैं और 'धान' केवल 'बिना कूटे हुए भूसीदार चावल' के लिये आता है। 'अछूत' का अर्थ है अस्पृश्य, न छूने योग्य, परंतु आजकल यह केवल भंगी, चमार; कोरी आदि नीच जातिओं के लिये आता है। इसी प्रकार फ़ारसी में मुर्ग के अर्थ 'पक्षी मात्र' हैं जैसे मुर्ग बिसमिल = घायल पक्षी, परंतु उर्दू हिंदी में मुर्गा' एक पक्षी विशेष को कहते हैं।

८—*अर्थवृद्धि अथवा अर्थविस्तार*—का कार्य अर्थसंकोच के ठीक विपरीत है। जब अर्थ संकुचित से व्यापक हो जाता है अर्थात् एक ओर से खिंचकर अनेक ओर को जाता है तो उसे अर्थविस्तार अथवा अर्थवृद्धि कहते हैं जैसे 'फिरंगी' का अर्थ था 'पुर्तगाली डाकू' परंतु अब 'योरोपियन मात्र' के लिये आता है, 'यवन' केवल ग्रीसनिवासियों के लिये आता था, परंतु अब मुसलमानों के लिए भी आता है; 'जुनरी' जुआर को कहते हैं, परंतु लखनऊ में मक्का के लिये भी आता है। यहाँ जुआर को छोटी जुनरी और मक्का को बड़ी जुनरी कहते हैं।

९—*अनेकार्थकता*—से आशय है किसी शब्द का एक से अधिक अर्थों में प्रयुक्त होना।' कभी कभी स्थितिपरिवर्तन से एक ही शब्द के अनेक अर्थ हो जाते हैं; जैसे 'वह बड़ी सुशील स्त्री है', 'वह मेरी स्त्री है' तथा 'क्या स्त्री गरम है ?' में स्त्री के अर्थ क्रमशः 'स्त्री, पत्नी, धोबी के लोहे की स्त्री' आदि हैं; 'गाँव में कच्चे घर होते हैं', 'इस मकान में चार घर है', 'यह पचास घर की बस्ती है, मेरा घर का मकान है', 'वह बड़े घर की बहू है', 'लकड़ी में घर कर ले',

बीमारी ने घर कर लिया है' 'वह घरबार छोड़कर चल दिया' 'भारतवर्ष हमारा घर है, आपका घर कहाँ है', 'मेरे, घर में बीमार है', 'उसका घर बिगड़ गया' इत्यादि में घर के अर्थ क्रमशः मकान (इमारत), भाग (हिस्सेदार), कुल (खांदान), निजी, वंश (कुल), छेद, अधिकार, संपत्ति, रहने का स्थान अथवा जन्मभूमि, निवासस्थन, पत्नी, गृहस्थी आदि हैं।

(ख) अर्थविकार और उनके कारण

अर्थविकार और उनके कारण का संबंध बड़ा जटिल है। कभी अनेक कारणों से एक ही अर्थविकार और कभी अनेक अर्थ-विकार एक ही कारण से होते हैं। अर्थविकार और उनके कारण इतने अन्योन्याश्रित हैं कि इनका पृथक् विवेचन करना कठिन है क्योंकि अर्थविकारों को प्रधानता देकर उनके कारणों की गौण रूप से व्याख्या करने से समस्त कारण समझने में पाठकों को कुछ कठिनाई होती है, अतः कारणों को प्रधानता देकर इनके द्वारा होनेवाले अर्थविकारों की विस्तृत व्याख्या की जायगी।

कारण और उनसे होनेवाले अर्थविकार

(१) *अतिशयोक्ति*—किसी बात को बढ़ा चढ़ाकर कहना।

(अ) *अर्थापकर्ष*—यह एक स्वाभाविक बात है कि हम प्रायः आवेश में आकर बात को बढ़ा चढ़ाकर कहते हैं' अतः शब्दों की शक्ति कम हो जाती है और उनका अर्थ गिर जाता है, जैसे 'निर्जीव जीवन' में 'निर्जीव' का अर्थ 'बेजान' नहीं अपितु 'निरानंद' है, 'मुर्दादिल' में 'मुर्दा' का अर्थ 'मरा हुआ' नहीं अपितु 'निरुत्साह' है, 'fawullv good' में awfully का अर्थ 'भनायक' नहीं अतितु 'बहुत' है। इसी प्रकार भयानक, प्रचंड terrible, dreadful आदि अनेक शब्दों में अर्थावनति हो जाती है।

(२) *गोपनीय भाव*—कामशास्त्र आदि से संबंधित भाव गोप-नीय समझे जाते हैं।

(अ) अर्थापकर्ष—गोपनीय भावों को प्रकट करने में शब्दों के अर्थ प्रायः कुछ गिर जाते हैं। प्रयोगाभाव के कारण प्रायः उनका साधारण अर्थ लुप्त हो जाता है, और केवल काम संबंधी अर्थ अवशेष रह जाता है' जैसे सं० स्तंभन अथवा हि० रुकावट सामान्य अर्थ 'रुकना या थमना' है, परंतु आजकल इनका केवल कामशास्त्रीय अर्थ में ही प्रयोग होता है। फा० 'मजा' का साधारण अर्थ 'आनंद' है, परंतु इसका भी संबंध कामशास्त्र से हो चला है। इसी प्रकार अ० 'इश्क़', 'आशिक़', 'माशूक़', तअल्लुक़; फा० 'यार' अथवा 'यारी', बों० लौंडा; अं० lover, beloved आदि के अर्थ भी गिर गए हैं।

(३) बलप्रयोग—यद्यपि प्रत्येक शब्द में अपनी कुछ शक्ति होती है और उसी के अनुसार अर्थोद्योतन होता है तथापि बलप्रयोग से उसकी शक्ति बढ़ जाती है और उसके अर्थ में बहुत कुछ भेद हो जाता है।

(अ) अर्थभेद—'वह स्कूल जाता है' एक साधारण वाक्य है. परंतु 'वह स्कूल जाता है?' 'वह स्कूल तो जाता है', 'जी हाँ वह जाता तो है स्कूल 'वह तो स्कूल जाता है', 'वह जाता तो है स्कूल को ही' आदि में बलप्रभेद होने से वाक्यों के अर्थों में बहुत भेद हो गया।

(७) सततप्रयोग—से तात्पर्य शब्दों के अधिक तथा अनंतर प्रयोग से है। प्रायः अधिक काल तक प्रयुक्त होते होते शब्दों की शक्ति घटबढ़ जाती है और तदनुसार उनके अर्थों में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है जिसके कारण निम्न प्रकार के अर्थ-विकार होते हैं।

(अ) अर्थापकर्ष—निम्नलिखित उदाहरणों के तुलनात्मक अध्ययन से विदित हो जायगा कि इन शब्दों में अर्थ की कितनी अवनति हुई है—

शब्द	प्राचीन अथवा शाब्दिक उन्नत अर्थ	वर्तमान अवनत अर्थ
महाब्राह्मण	भास के नाट्यकाल तक 'उच्च कोटि का ब्राह्मण'	कुदान लेनेवाले कट्टहा ब्राह्मण
धन्नामेट	धनी	धनी (व्यंग)
चंडाल चांडाल अथवा चंडालिनी	प्राचीनकालीन में भंगियों की नीच जाति की स्त्री	दुष्टा स्त्री
महाप्रसाद	ईश्वर या देवताओं का प्रसाद	मांस (व्यंग)
सं० किंकर हि० चाकर	क्या कर सकता है ?	नौकर
विधर्मी	दूसरे धर्म का अनुयायी	धर्मभ्रष्ट
आर्य	एक उच्च जाति, तत्पश्चात् दयानंद मतावलंबी आर्य-समाजी	आर्यसमाजियों से विद्वेष रखने के कारण प्राचीन विचार के हिंदुओं में 'धर्मभ्रष्ट'
चोंचू	चोंचवाला	मूर्ख
चोंगा	कागज अथवा टीन की बनी हुई नली	मूर्ख, जैसे 'अजब चोंगा आदमी है'।
कन्याराशी	जिसकी जन्मराशि कन्या हो	मनहूस, भाग्यहीन
नायिका	रूपगुणसंपन्न स्त्री, शृंगाररस का आलंबन	दूती, वेश्या, वेश्या की माँ

शब्द	प्राचीन अथवा शाब्दिक उन्नत अर्थ	वर्तमान अवनत अर्थ
बाई	स्त्रियों के लिये आदर-सूचक शब्द (स्त्री-साधुओं के लिये अब भी प्रयुक्त होता है)	उत्तरी भारत में वेश्याओं के लिये आता है
उस्ताद	गुरु	उस्तादजी—वेश्याओं का उस्ताद
बाबू	बापू, आदरसूचक शब्द	बाबूगीरी बाबूपन आदि में फैशन तथा आरामतलबी का भाव आ गया है
लड़का	लड़का, पुत्र	अनाड़ी जैसे 'वह अभी लड़का है'
बालाखाना	ऊपर का मकान अथवा कमरा	वेश्याओं का ऊपर का चौबारा
फकीर	धार्मिक साधु	भिखमंगा
जानवर	जानवाला	मूर्ख, जैसे तुम भी हो निरे जानवर ही
बछिया का बाबा या ताऊ	बैल	मूर्ख
Clerk	पादरी	मुंशी
Graffer	वृद्ध मनुष्यों के लिये आदरसूचक शब्द	आजकल इसमें निरा-दर अथवा घृणा का भाव आ गया है।

शब्द	प्राचीन अथवा शाब्दिक उन्नत अर्थ	वर्तमान अवनत अर्थ
Idiot	प्राइवेट आदमी	मूर्ख, बुद्धू
Boy	लड़का	नौकर, जैसे Word-boy
Scavenger	सड़कों आदि का इंसपेक्टर	भंगी
Constable	एक कड़ा सरकारी अफसर	साधारण सिपाही
Hypocrite	एक्टर	ढोंगिया
Cypress	एक वृक्ष विशेष	मृत्यु का चिह्न
Dugeon	किले की मुख्य मीनार	तंग अँधेरी कोठरी
Oversight	देखभाल	भूल चूक
Stable	मुख्य बाजार	घुड़सार

इसी प्रकार 'चतुर्वेदी (चौबे), द्विवेदी (दुबे), त्रिपाठी (तिवारी), महाशय, मुंशी, Mr., Capady आदि के अर्थ भी गिर गए हैं।

(अ) *अर्थोत्कर्ष*—निम्नलिखित उदाहरणों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा कि इन शब्दों के अर्थों में कितनी उन्नति हुई है—

शब्द	प्राचीन अथवा शाब्दिक अवनत अर्थ	वर्तमान उन्नत अर्थ
गोसाईं	गो का स्वामी	धार्मिक तथा संमानित व्यक्ति, साधु, ईश्वर

शब्द	प्राचीन अथवा शब्दिक अवनत अर्थ	वर्तमान उन्नत अर्थ
दर्शन	दृश् धातु से बना है इसके साधारण अर्थ 'देखना' है	किसी बड़े साधु महात्मा अथवा देवी-देवता को देखना
रज	धूल अथवा गर्द	साधु आदि बड़े आदमी के पैरों की धूल अथवा गंगा आदि पवित्र नदी की मिट्टी
कुटी, कुटीर	झोपड़ी	आजकल बड़े बड़े पक्के मकानों पर भी 'कपूर-कुटी', 'राम कुटीर' आदि लिखा रहता है
Cottage	झोपड़ा	साफ सुथरा घर जैसे Cottage ward
Quecn	साधारण स्त्री	रानी
Palm	खजूर	विजयचिह्न
Gem	कोपल (leaf bud)	रत्न
Cubs	निम्न श्रेणी के पशुओं के बच्चे	मनुष्यों के बच्चे जैसे cubs scout, cub-master

(इ) **अर्थभेद**—सतत उपयोग द्वारा होनेवाले अर्थभेद के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

शब्द	प्राचीन अथवा शाब्दिक अवनत अर्थ	वर्तमान उन्नत अर्थ
उष्ट्र	बैल भैंस	ऊँट
पत्र	पत्ता	चिठ्ठी
Curfew	(फ्यूडल समय तक) रोशनी आदि ढकना अथवा बुझाना	अपने को घर में छिपाना
Drawing room	खाने के बाद जाने की जगह	बैठक
Gun	बंदूक	तोप
Hostel	सराय	विद्यार्थियों के ठहरने की जगह, बोर्डिंग हाउस
Noon	नवाँ घंटा, दिन के ३ बजे	दिन के बारह बजे
Digit	उँगली अथवा उँगली की चौड़ाई	१ से ६ तक में से कोई भी अंक
Gazetteer	गजट का लेखक	भौगोलिक कोष
Hospital	परदेशियों अथवा मेहमानों के ठहरने की जगह	अंग्रेजी इलाज की जगह
Ivory black	हाथी दाँत की राख	हड्डी की राख

इसके अतिरिक्त कभी कभी एक ही भाषा के तत्सम तथा तद्भव शब्दों के अर्थों में भी बड़ा भेद हो जाता है जैसे—

तत्सम	तद्भव
सं० गो (पुल्लिंग)	हिं० गाय (स्त्रीलिंग)
सं० कार्य (काम)	हिं० काज (टहला शादी)
सं० विभूति (ऐश्वर्य)	हिं० भभूत (राख)
सं० स्थान (जगह)	हिं० थाना (पुलिस स्टेशन) हिं० थान (देवी दुर्गा का)
सं० महिष (पुल्लिंग)	हिं० भैंस (स्त्रीलिंग)
सं० गर्भिणी (स्त्रियों के लिये)	बो० गाभिन (पशुओं के लिये)
सं० दाह (जलन)	हिं० डाह (विद्वेष)
सं० दुर्लभ (कठिनता से प्राप्य)	हिं० दुल्हा (पति)
सं० वेष (उच्चवृत्ति में)	हिं० भैंस (नीचवृत्ति में)
सं० कलश (मिट्टी का गगरा)	हिं० कलसा (ताँबे पीतल आदि का गगरा)
सं० क्षीर (दूध)	हिं० खीर (दूध में पके हुए चावल)
सं० ध्वनि (आवाज)	हिं० धुन लगन)
सं० राजपुत्र (राजा का लड़का)	हि० राजपूत (एक जाति)

(ई) *मूर्तिकरण*—जैसे चट्टान अथवा चाट भाववाचक संज्ञा है और इसका अर्थ चाटने की क्रिया है, परंतु आजकल मिर्च मसाले की दहीबड़े आदि को चाट कहते हैं; दिखाई के अर्थ हैं नववधू का मुँह देखना; परंतु आजकल उस धन को कहते हैं जो मुँह दिखाई में नववधू को दिया जाता है, फा० सब्जी के अर्थ 'हरियाली' हैं, परंतु आजकल 'तरकारी' के लिये आता है; lamp के अर्थ रोशनी (Light) थे, परंतु आजकल 'लालटेन' हैं; kindered का अर्थ संबंधित होना था, परंतु आजकल 'संबंधी'

है। candidus के प्राचीन (लैटिन) अर्थ 'श्वेत' था, परंतु आधुनिक (अंगरेजी) अर्थ उम्मेदवार (रोम में उम्मेदवारों के श्वेत वस्त्र पहनने के कारण) है। इसी प्रकार भवन, देवता, जाति, शयन, वसन आदि भी भाववाचक से द्रव्यवाचक हो गए हैं।

(उ) अर्थसंकोच—

शब्द	प्राचीन अथवा शाब्दिक व्यापक अर्थ	वर्तमान संकुचित अर्थ
अन्न	खाद्यपदार्थ	अनाज
रत्न	प्रत्येक मूल्यवान वस्तु जैसे नररत्न, स्त्रीरत्न	एक प्रकार का बहुमूल्य पत्थर
संबंधी	जिससे किसी प्रकार का संबंध हो	नातेदार
संयुक्तप्रांत	मिला हुआ प्रदेश	यू० पी०
लड़का, लड़की	लड़का-लड़की	पुत्रपुत्री, जैसे उसके तीन लड़के और दो लड़कियाँ हैं
सं० नप्तृ	पौत्र तथा दौहित्र	नाती (तद्भव रूप) केवल धेवता
जलयान	जल में काम आनेवाली सवारी	जहाज
प्रयागवाल	प्रयागवाला	प्रयागतीर्थ के पंडे
औरत	स्त्रीमात्र	पत्नी, जैसे 'यह किस की औरत है?'
गजक	चाट, जलपान	गुड़, बूरे तथा तिल की बनी हुई मिठाई
हरजाई	हर जगह जानेवाली	वेश्या

शब्द	प्राचीन अथवा शाब्दिक व्यापक अर्थ	वर्तमान संकुचित अर्थ
खुश्का	खुश्क की हुई वस्तु	उबला हुआ चावल
नीलकंठ	जिसका नीला कंठ हो	एक पक्षीविशेष
हिंदू	हिंद (भारतवर्ष) का निवासी	सनातनधर्मी
मंदिर	घर अथवा निवास स्थान, जैसे विद्यामंदिर	देवालय
महाराष्ट्र	बृहत् राष्ट्र	दक्षिणी भारत का एक प्रसिद्ध प्रदेश
सगाई	नाता, रिश्ता	मँगनी
आर्य	एक श्रेष्ठ तथा सभ्य जाति	दयानंद मतावलंबी आर्यसमाजी
तख्ती,	पट्टी, छोटा तख्ता	बच्चों के लिखने की तख्ती या पट्टी
कन्नौजिया	कन्नौज का	कान्यकुब्ज ब्राह्मण
त्रिकूट	वह पर्वत जिसमें तीन चोटियाँ हों	वह पर्वत जिस पर लंका बसी है
बणिक्, बनिया	सौदागर, व्यापारी	वैश्य जाति
गंध या बू	सुगंध तथा दुर्गंध दोनों के लिये	दुर्गंध अथवा बदबू
काल	समय	मृत्यु, जैसे 'उसका काल आ गया था'
तकाजा	माँगना	रुपया पैसा माँगना
ईद	खुशी, आनंद	एक त्यौहार

शब्द	प्राचीन अथवा शाब्दिक व्यापक अर्थ	वर्तमान संकुचित अर्थ
जानवर अ॰ animal	जानवाला	निम्न श्रेणी के पशु जैसे गाय बैल
विलायत	मुल्क, देश	यूरुप
Cutter	काटनेवाला	दर्ज़ी
Deer	पशुमात्र	हिरन
Tide	समय, जैसे 'Time and tide wait for none'	ज्वार-भाटा
Grass	तृणमात्र	घास
Paper	कागज	समाचारपत्र
To act	काम करना	पार्ट करना
Fighter	लड़ाकू	लड़ाकू जहाज
Hat	सिर ढकने की वस्तु	टोप
Meat	खाद्य पदार्थ, जैसे sweetmeat	मांस
petroleum	(L. petra = rock + Gr. oleum = oil) कोई भी पहाड़ी तेल	पेट्रोल
Current	लहर, धारा	बिजली की धारा
To drink	पीना	मद्य पीना
Adverb	(L. ad = to + Verbum = word) दूसरे से जुड़ा हुआ शब्द	क्रियाविशेषण

कभी कभी अर्थ का संकोच करके नवीन शब्दों का निर्माण तथा नामकरण भी किया जाता है जैसे—

शब्द	प्राचीन अथवा शाब्दिक व्यापक अर्थ	वर्तमान संकुचित अर्थ
शुश्रूषा	सुनने की इच्छा	सेवा
दुहिता	जो दूध दुहती हैं	पुत्री
प्रसन्न	सद् अथवा सीद् (जमना) धातु से बना हैं, जो जिसमें जमा हुआ हो, अर्थात् प्रसन्न हो	खुश
भुजंग	जिसका अंग भुजा के समान हो	साँप
पर्वत	पोरोंवाला	पहाड़
कपि	काँपनेवाला, स्थिर न रहने वाला, चंचल	बंदर
दोमुँहा } दुमुही }	दो मुँहवाला	एक साँप विशेष
भार्या	जिसका भरणपोषण किया जाता है।	पत्नी
ननांदा	जो भावज को तंग करती है	नंद
भृत्य } brother }	ले जानेवाला, bearer	भाई
तृण	तृद् (चुभना) धातु से बना है, जो चुभता है	तिनका
चार्वाक	जिसकी मीठी बोली हो	एक पक्षी विशेष
श्राद्ध	जो श्रद्धा के साथ किया जाता है	श्राद्ध, जो पितृपक्ष में किए जाते हैं
अक्षर	जो अविनाशी है	वर्ण
शिखी	शिखावाला	मोर

शब्द	प्राचीन अथवा शाब्दिक व्यापक अर्थ	वर्तमान संकुचित अर्थ
द्रुम	जो बढ़ता है	वृक्ष
सूर्य	आकाश में भ्रमण करनेवाला	सूरज
राजा	जो आनंद देता है	राजा
सर्प	टेढ़ा चलनेवाला	साँप
पुरुष	जो पुर अर्थात् शरीर में रहता है	आत्मा
गो	गम् (जाना) धातु से बना है जो जाती है	गाय
निपुण	जो पुण्य कर्म करता है	कुशल, चतुर
भ्रमर	चक्कर लगानेवाला	भौंरा
अक्षत	अ+क्षत=बिना टूटा हुआ, समूचा	देवताओं पर चढ़ाए जानेवाले चावल
कष्ट	जिससे परीक्षा होती है	दुःख
ग्रंथ	जो गूथकर रखा गया हो	पुस्तक
वह्नि	जो वहन की जाती है	आग
पृथ्वी	विस्तृत	जमीन
अबला	जिसके बल नहीं	स्त्री
प्रहार,प्रहर	आघात	पहर (तद्भव) घंटा
फा० पेशाब	पेश+आब = सामनेवाला पानी	मूत्र
फा० म्यानी	जो बीच में हो	पैजामे का बीच का भाग
फा० चर्ख	घूमनेवाला	आकाश
अ० फर्शी	फर्श छूनेवाली	हुक्के की फर्शी
अ० हम्माल	उठाने या ले जानेवाला	पल्लेदार

शब्द	प्राचीन अथवा शाब्दिक व्यापक अर्थ	वर्तमान संकुचित अर्थ
अ० हामला	उठानेवाला	गर्भवती
Volume (a roll of paper)	कागजों का गट्ठा	बड़ी किताब
Loafeater फा० टुकड़-खोर	रोटी अथवा टुकड़े खानेवाला	नौकर
moon	ma (to measure) धातु से बना है और इसके अर्थ हैं measure of the time (समयनिर्णायक)	चंद्रमा

(ऊ) *अर्थ विस्तार*—कभी कभी सतत उपयोग से शब्दों के यौगिक अर्थ विस्तृत होकर केवल रूढ़ अर्थ रह जाते हैं और अर्थ मुख्य से साधारण, संकुचित से व्यापक अथवा विशेष से सामान्य हो जाते हैं, जैसे—

शब्द	प्राचीन अर्थ विशेष	वर्तमान व्यापक अर्थ
चिड़िया	एक पक्षी विशेष	पक्षीमात्र, जैसे चिड़ियाघर
स्याही	काली स्याही	लाल, नीली आदि सब प्रकार की स्याही
सं० पितृ	पिता	तद्भव 'पितर' मृत बाप दादा परदादा आदि जैसे पितृ-पक्ष, पितृपद, पितृतर्पण आदि।

शब्द	प्राचीन अर्थ विशेष	वर्तमान व्यापक अर्थ
बच्चा	शिशु	छोटा-बड़ा सब के लिये जैसे किसी पुरुष अथवा स्त्री के मरने पर 'हाय बच्चे' 'हायबच्ची !', पुत्र, जैसे आप ही का बच्चा (लड़का) है
दादा	बाबा	भाई को भी कहते हैं
श्रीगणेश बिस्मिल्ला	विद्या आदि आरंभ करने का पूजन	आरंभ मात्र
हरीरा	सोवर में दी जानेवाली घी मेवे की बनी पतली वस्तु	अन्य प्रकार के पेय पदार्थों के लिये भी आता है
सं० अश्व-वार	घुड़सवार	तद्भव सवार, घोड़े-गाड़ी आदि सब प्रकार का सवार
बाबा	बाप का बाप	बाप-दादा
श्वशुर तथा श्वश्रू	बहू के ससुर सास	बहू तथा पति दोनों के ससुर सास
भाई	सगा भाई	एक ही बिरादरी अथवा प्रदेश का मनुष्य
वणिक्	वैश्य, बनिया	बंबई में हिंदूमात्र
सं० परश्व	आनेवाला परसों	तत्भव परसों, भूत तथा भविष्यत् दोनों कालों में आता है

शब्द	प्राचीन अर्थविशेष	वर्तमान व्यापक अर्थ
भैया	भाई	प्रथम पुत्र तथा बड़े लड़के को भी कहते हैं
बीबी	पत्नी	बहन के लिये भी आता है तथा स्त्रियों के लिये आदर सूचक शब्द भी है
छुरा	लोहे का हथियार	उस्तरा, चाकू, छुरी आदि
दरख्त	पेड़	पेड़ पौदा आदि सबके लिए
pen	पर का कलम	लोहा, लकड़ी आदि सब प्रकार का कलम
Good-morning	I wish you good morning (सुबह का सलाम)	सुबह के अतिरिक्त दोपहर तीसरे पहर का सलाम भी
parlour	मठ (monastery) में बातचीत की जगह	प्रत्येक प्रकार का कमरा

(५) *भाषाभेद*—(अ) अर्थापकर्ष—भूत का अर्थ संस्कृत में 'प्राणी' है जैसे 'सर्वभूतानां, परंतु हिंदी में 'प्रेत' है; 'राग' का अर्थ संस्कृत में 'प्रेम' है, परंतु बँगला तथा मराठी में 'क्रोध' है; 'विवेक' का अर्थ संस्कृति तथा हिंदी में 'ज्ञान' है, परंतु गुज० में 'अच्छा चाल ढाल' तथा बँगला में 'दिल अथवा आत्मा (conscience)' है; 'पुंगव' का अर्थ संस्कृत में 'श्रेष्ठ' है, परंतु इसके तद्भव 'पोंगा' का अर्थ ब्रो० में 'बुद्धू' है; भद्र के अर्थ

संस्कृत में 'सभ्य' हैं, परंतु इसके तद्भव 'भोंदू' के अर्थ ब्रो० में गावदी अथवा बुद्धू हैं; 'बुद्ध' का अर्थ संस्कृत में जाग्रत् अथवा ज्ञानी हैं; परंतु इसके तद्भव बुद्धू का अर्थ ब्रो० में मूर्ख हैं; 'राजा' तथा 'गुरु' 'बनारसी' बोली में गुंडेपन का भाव लिए हुए हैं; सं० दारु का अर्थ लकड़ी है; परंतु हिंदी में मद्य है; फा० मग्रूर का अर्थ 'मरा हुआ' है, परंतु हिंदी में 'दुष्ट' हैं; फा० खैरख्वाह का अर्थ भला 'चाहनेवाला' है, परंतु बंगला में नीच वृत्ति में आता है; अ० मेहतर का अर्थ बुजुर्ग तथा सं० 'महत्तर के अर्थ 'दो में बड़ा' है और चितराल में शाहजादों की उपाधि है, परंतु हिंदी में भंगी को कहते हैं; अरबी में काफिर विधर्मी को कहते हैं, परंतु हिंदी में 'निर्दयी' को कहते हैं; 'बेटा' के अर्थ हिंदी तथा गुज० में 'पुत्र' हैं, परंतु बंगला तथा हि० ब्रो० में नीच वृत्ति में प्रयुक्त होता है।

(आ) *अर्थोन्नति*—संस्कृत में 'सेवक तथा दास' नौकर अथवा गुलाम को कहते हैं, परंतु हिंदी में नम्रतासूचक शब्द है, जैसे, मैं तो आपका दास अथवा सेवक हूँ; 'मुग्ध' के अर्थ संस्कृत में 'मूढ़' हैं, परंतु बंगला तथा हिंदी में 'अत्यंत प्रसन्न' हैं; 'साहस' संस्कृत में चोरी, डाका, हत्या आदि के लिये हिम्मत करने के लिये आता है, परंतु हिंदी तथा बँगला में 'अच्छे कार्य के लिये' हिम्मत करने' के लिये आता है।

(इ) *अर्थभेद*—'आदर' हिंदी में 'इज्जत', बँगला में 'प्रेम', 'घाम' हि० में 'धूप' बँ० में 'पसीना'; 'कटु' सं० में तेज, हि० में कड़वा अथवा कठोर; बाड़ी सं० में वाटिका, बँ० में घर; 'बाड़ा' हिं० तथा म० में मुहल्ला, गुज० में सहन; 'खुर्मा' हिं० में एक मिठाई, फा० में छुआरा; तूती तथा बुलबुल हिं० में स्त्रिलिंग, फा० में पुल्लिंग; 'मगज' हिं० में दिमाग; फा० में बीज 'मग्ज कद्दू' 'गोशाला' सं० तथा हिं० में गायों का घर, फा० में गोसाला गाय

का बच्चा; 'लीली' हिं० में नीली, गुज० में हरी; आसेब फा० में दुःख, अ० में भूत, जिन; पहलू फा० में गोद, हिं० बगल; हुक्का फा० में डिब्बा जैसे हुक्कएजर=सोने का डिब्बा, हिं० में चिलम, तमाकू का हुक्का, अजीज अरबी में प्यारा उर्दू में नातेदार जैसे आप मेरे अजीज हैं; अमीर अरबी में सरदार, हिं० में मालदार सोख्ता फा० में जला हुआ उ० हिं० में सुखानेवाला जैसे स्याही सोख्ता; 'अलजब्र' अरबी में किसी टूटी वस्तु को जोड़ना अं० में Algebra, Mathematics की एक शाखा; कंद अरबी में शकर candv अं० में शकर की बनी एक मिठाई; जाजम तु० में फर्श पर बिछाने की चादर हिं० में ऊपर तानने की चादर; पारा फा० में टुकड़ा, हिं० में एक धातु; पर्चा फा० में कपड़ा पर्चा हिं० में कागज का टुकड़ा; Banco इटैलिक में बेंच जिस पर सर्राफ अपना रुपया पैसा रखते थे, अं० में Bnak जहाँ रुपया पैसा आदि जमा किया जाता है; ohit अं० में सुंदर छोटा बच्चा, हिं० में कागज का टुकड़ा; cough अं० में खाँसना हिं० में बलगम; gazette अं० में सरकारी समाचारपत्र, इटैलियन में १६वीं शता० में वेनिस का ३ पेंस का एक सिक्का; clock अं० में घड़ी, गु० में घंटा इत्यादि।

(ई) *अर्थसंकोच*—'कण' सं० में जर्रा (छोटा सा टुकड़ा) गुज० में थोड़ासा परिवर्तन; 'तकिया' अरबी में जिस पर सहारा लगाया जाय, हि० में सिर के नीचे लगाने का तकिया; बालाई फा० में ऊपर की वस्तु, हिं० में दूध की मलाई; 'चाशनी' फा० में खाने पीने की वस्तु का थोड़ा सा नमूना, हिं० में मिठास, तथा गुड़ अथवा शकर का औटने पर तार दीखना; सूद फा० में लाभ, हि० में ब्याज; शादी फा० में खुशी, हिं० में विवाह; सवारी हिं० में बच्चा बूढ़ा, स्त्री पुरुष सब, उ० में केवल स्त्रियाँ; 'मलीदा' फा० में मली अथवा चूरा की हुई वस्तु, हिं० में केवल पूरी का चूर्मा; जीरा

फा० में छोटा दाना, हिं० में एक मसाला; 'शीरा' फा० में पतली मिठाई, हिं० में गुड़ का शीरा; 'शरबत' फा० तथा अ० में पेय पदार्थ, हिं० में गुड़ या बूरे का शरबत; जामा फा० में कपड़ा, हिं० में विवाह के समय पहनने का चुन्नटदार घेरे का एक प्रकार का कपड़ा; curtain अं० में पर्दा, गुज० में केवल पलँग का पर्दा, Policeman अं० में पुलिस का आदमी, हिं० में सिपाही, slip अं० में किसी भी चीज की लंबा कत्तर या टुकड़ा, हिं० में केवल कागज का टुकड़ा; इत्यादि।

(उ) *अर्थविस्तार*—'गोला' फा० में तोप का गोला, हिं० में प्रत्येक प्रकार का गोला; चमन' फा० में क्यारी, हि० में बगीचा; गंगा हि० में एक नदी विशेष, मराठी में प्रत्येक नदी इत्यादि।

(६) *स्थानभेद*—(अ) अर्थापकर्ष—इसका कारण स्थान के साथ साथ व्यवसाय भी है। उदाहरणार्थ 'भैया' यू० पी० में भाई तथा पहले अथवा बड़े लड़के को कहते हैं, परंतु गुजरात तथा महाराष्ट्र में हट्टे कट्टे संयुक्तप्रांतीय नौकर को कहते हैं; यू० पी० में महाराज, विहार में बाबाजी, उड़ीसा में पुजारी, बंगाल में ठाकुर आदि सबके अर्थ गिर गए हैं और रसोइए के लिये आते हैं; Hotel फ्रांस में महल को और भारत में भोजनालय को कहते हैं।

(आ) *अर्थभेद*—के लिये स्व० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी का एक उद्धरण देना पर्याप्त होगा, "अगर बिहार में 'हाथी विहार करती' है तो पंजाब में 'तारें आती' हैं और संयुक्तप्रांत के काशी-प्रयाग में लोग 'अच्छी शिकारें, मारकर 'लम्बी सलामें' करते हैं। अगर बिहार में दही खट्टी होती है तो मारवाड़ में 'जुवार चढ़ती' है, 'जनेऊ उतरती' है और कानपुर के मैदान में 'बूँद गिरता' और 'रामायण पढ़ा जाता' है। 'बिहार में हवा चलता' है तो झालरापाटन में 'नाक कटता' है और मुरादाबाद में 'गोलमाल मचती' है।"

(इ) *अर्थविस्तार*—'तसला' यू० पी० में एक फैला हुआ कटोरे की तरह का गहरा बर्तन होता है, परंतु बलिया में पतीली को भी तसला कहते हैं; 'मेये; बंगाल में औरत जाति और बेटी को कहते हैं, परंतु रानीगंज में स्त्री, पत्नी तथा लड़की को भी कहते हैं; बुटन्ना हिंदू बस्तियों में जाँघिया नेकर को कहते हैं, परंतु मुसलमान बस्तियों में पैजामें को भी कहते हैं। मुरादाबाद मैं 'शक्कर अथवा शकर' एक विशेप प्रकार की गुड़ की चीनी को कहते हैं : परंतु प्रयाग कानपुर आदि में प्रत्येक प्रकार की चीनी को कहते हैं

(७) *व्यंग्य*—से तात्पर्य किसी बात को ताने के साथ कहने से हैं,

(अ) *अर्थापकर्ष*—कोई काम बिगड़ने पर; कहते हैं, 'वाह 'बेटा'! यहाँ 'बेटा' नीचवृत्ति में प्रयुक्त हुआ है। 'कमाऊ पूत' के अर्थ हैं 'खूब कमाई करनेवाला पुत्र', परंतु 'आ गए कमाऊ पूत' में कमाऊ पूत के अर्थ 'निखट्टू' हैं। 'आए बड़े लाट साहब कहीं के' में 'लाट साहब' के अर्थ 'शेखीबाज आदमी' हैं। इसी प्रकार 'तुम बड़े साधु धूर्त हो' तुम भी यार हो पक्के उस्ताद अथवा गुरू-घंटाल (चलतें पुर्जे)', एक वह बड़ा देवता (दुष्ट) है और एक तुम' 'वह पक्का बनिया (बुजदिल) है', 'तुम बड़ी अनखत्रा अथवा फूल सूँघनी (खाऊ) हो', 'जी हाँ वह तो सती सावित्री (कुलटा) है', 'तुम तो पक्के कुंभकरन (सोनेवाले), हो', आ गए नारदमुनि (लड़ाई करानेवाले) अब शांति कहाँ' इत्यादि अर्थापकर्ष के सुंदर उदाहरण हैं। गुज० में मूर्ख के लिये 'दोढ़ चतुर', अक्कलनो समुंदर' आदि आते हैं।

(८) *भयानकता, भद्दापन, पवित्रता, अमंगल, अप्रियता, कटुता आदि*—दोषों के निवारण के हेतु प्रायः सुंदर शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिससे उनके अर्थ कुछ विकृत तो हो जाते हैं। इसमें ऐसा अर्थविकार होता है, जिसमें अर्थसंकोच, अर्थभेद, अर्थापकर्ष आदि का संमिश्रण रहता है। यथा—

भयानकता—शै के अर्थ अरबी में 'वस्तु' है, परंतु 'इस मकान में शै है' 'शै' के अर्थ दुःखदाई भूत, जिन हैं। साँप को कीड़ा अथवा काला कहने का भी यही कारण है।

भद्दापन—'पेशाब करने' के लिये लघुशंका करना, to make water; 'पैखाना जाने के लिये' मैदान जाना, दड़े पर जाना, शौच जाना, to answer the call of Nature, बैतुलखला जाना; 'मुर्दे की हड्डी बीनने के लिये' अस्थि बीनना, फूल बीनना'; 'गू' के लिए 'छी छी' अथवा 'छिच्छी'।

अमंगल अथवा अशुभ—मृत्यु के लिए काल, खबर, गंगालाभ, वैकुंठलाभ' वैकुंठवास, स्वर्गवास, पंचतत्त्व-प्राप्ति, सं० पंचत्वं गतः कथाशेषतां गतः, अंतकाल, अं० इंतकाल, पारसी 'फुलवाड़ी मां जंबु,' 'पुलगुजार' गुज० सनानना समाचार, इत्यादि आते हैं; चूड़ी उतारना, तोड़ना अथवा फोड़ना विधवा होने के लिये आता है, अतः चूड़ी तोड़ने के लिए 'चूड़ी बढ़ाना' आता है; दिया बुझाना या चिराग गुल होना वंश नष्ट होने का सूचक है, अतः साधारणतः दिया बुताने के लिए दिया बढ़ाना आता है; 'दूकान बंद होना' 'दूकानदार' के मरने अथवा दिवालिया होने का सूचक है, अतः साधारणतः 'दूकान बढ़ाना' कहते हैं। गर्भवती के आठवें महीने को अनगिना महीना कहना भी इसी कारण के अंतर्गत है।

अप्रियता अथवा कटुता—भंगी तथा भंगिन को मेहतर मेहतरानी, नाई को ठाकुर (बंगाल में नौकर को), अछूत को हरिजन, धोबी को बरेठा, कहार को महरा, चमार, को रैदास तथा भगत, लोहार, बढ़ई आदि को कारीगर, जूती को चरणदासी तथा चर्मछत्र मारने पीटने को पूजा करना, काने को डिप्टी साहब, रोजा साहब, समदर्शी तथा एकाक्षी, वेश्या को रामजनी अथवा क्वाँरी कन्या, अपढ़ को निरक्षर भट्टाचार्य, बेकार को महकमे बेकारी का इन्सपेक्टर;

अथवा बेमुल्की नवाब, मूर्ख को गोबरगणेश, बुजदिल को मिट्टी का शेर, अंधे को सूरदास अथवा हाफिज जी, दर्जी को मास्टर, Third Division को Royal Division आदि कहते हैं। इसी प्रकार दाल में नमक कम होने के लिये कहते हैं आज दाल में घी अधिक पड़ गया है; दाल अधिक परोस जाने पर कहते हैं 'क्या आज दाल अधिक हो गई है?' गुज० में नमक को 'मीठु' हिं० में 'रामरस' कहते हैं; बच्चे के बीमार होने पर माँ कहती है, 'अमुक की मा बीमार है', गुज० 'एनी मा अथवा बेन बिमार छे' इत्यादि।

कभी कभी नम्रता, धार्मिक भावना तथा प्रथा के कारण भी इस प्रकार का प्रयोग होता है, जैसे नम्रता के लिये—घर के लिये दौलतखाना, गरीबखाना, झोपड़ी आदि आते हैं—आपका दौलत-खाना कहाँ है?' मेरा गरीबखाना अथवा झोपड़ी प्रयाग में है'; नाम के लिये शुभ नाम, इस्मेशरीफ, इस्मे मुबारक, बीमारी के लिये 'क्या हुजूर के दुश्मनों की तबियत नासाज है?' गुज० 'दुश्मने ताप आवेछे' आदि आते हैं। इसी प्रकार तू के लिये आप, आप के लिये हुजूर, मान्यवर, श्रीमान् जी, बंदानवाज इत्यादि, 'कहते हैं' के लिये फर्माते हैं, अर्ज करते हैं इत्यादि आते हैं।

धार्मिक भावना के लिये—चेचक के दाने मुरझा जाने को कहते हैं 'मैया ढोला ले गई; बड़ी चेचक को जलभरी माता कहते हैं; बनारस में गधे को शीतला की सवारी कहते हैं। कभी कभी नाम भी इसी भावना के अनुसार (कि जिसकी यहाँ चाह है उसकी वहाँ भी है, सुंदर नाम ईश्वर को भी प्रिय है, अतः अच्छे नामवाले शीघ्र मरते हैं) रक्खे जाते है, जैसे दमड़ीदास, छदम्मीलाल, पचकौड़ी, फकीरचंद, रामसेवक, भगवानदास इत्यादि।

प्रथा के लिये—हिंदुओं में पतिपत्नी परस्पर एक दूसरे का नाम नहीं लेते, जैसे रम्मो के चाचा, लल्ला की अम्मा, गुज० की डाना बाबा;, की कानी अम्मा' आदि।

(६) *आलंकारिक प्रयोग*—(अ) *अर्थभेद*—प्रायः समास आदि में अर्थभेद हो जाता है, जैसे 'मुँह काला' के शाब्दिक अर्थ हैं 'काला मुँह' परंतु मिलकर इसके अर्थ हुए 'बदनामी'। इसी प्रकार मुँहफट, मुँहदेखी, मुँहजोर, मुँहपेट (कैदस्त), धरपकड़, मरभुक्खा, दौड़धूप, दियासलाई, आवभगत, मारधाड़, नेग-जोग, नीलापीला (क्रोधित), दालमोठ, कचरपच्चर, देखरेख दिनरात, बड़बोला, उठनाबैठना, आनाजाना इत्यादि में भी अर्थभेद हो जाता है।

(*आ*) *अमूर्तिकरण*—पचास आदमियों के गोल में जाने के लिए बड़ी छाती (साहस) चाहिए, खटाईमिटाई (खट्टीमिठी वस्तु) को तिलांजलि (त्याग) दो, चोर के पैर (साहस) नहीं होते, मेरे रास्ते का काँटा (रुकावट) निकल गया, मेरे रास्ते में रोड़े (रुकावट) क्यों अटकाते हो ? उसका कपाल (भाग्य) ही फूटा है, कुर्सी (पद) सब सिखा लेती है, यह औषधि नीम की पत्ती (कड़वी) है, यह लड़की बड़ी लंका (चंचल) है. तुमने उसकी नाक काट ली (हरा दिया), यह मकान किला अथवा संदूक है (सुरक्षित है) इत्यादि।

(*इ*) *अर्थसंकोच*—बहुब्रीहि समास आदि में प्राय अर्थ-संकोच हो जाता है, जैसे वृकोदर = वृक (भेड़िया) + उदर (पेट वह मनुष्य जिसका पेट भेड़िए का सा हो अर्थात् भीम; गुडाकेश = गुडाका (नींद) + ईश (मालिक), नींद का मालिक अर्थात् शिव अथवा अर्जुन; त्रिपुरारी = त्रिपुर + अरि, त्रिपुर का शत्रु अर्थात्

शिवजी; पंजाब का सिंह = पंजाब का शेर अर्थात् रणजीतसिंह; King of Indio = भारत का राजा अर्थात् जवाहरलाल इत्यादि।

(ई) *अर्थविस्तार*—१—व्यक्तिवाचक नाम अपने गुणों के कारण जातिवाचक हो जाते हैं जैसे *टैगोर* अपने समय का *शेक्सपियर* था, काश्मीर भारत का *वैनिस* है, वह द्वितीय *कर्ण* है, *लंका* के छोर पर तो आपका घर है, सब कोई *कालिदास* नहीं हो सकते, पंजाब का बच्चा बच्चा *भगतसिंह* है, अभी अनेक *सुभाष बाबूओं* की आवश्यकता है, हमारे स्कूल में चार *मोहनलाल* हैं, किसी भी नदी में स्नान करने पर लोग प्राय *हरगंगा* कहते हैं, इत्यादि में रेखांकित शब्द जातिवाचक हैं।

(२) (क) *जति-वाचक नामों में अर्थविस्तार*—'लड़की क्या है *नौक्रन* है' आज **चाँद** (सुंदरी विशेष) छिपा क्यों है' आप तो ईद के चाँद हो गए, आज **कमल** (चेहरा) कुम्हलाया क्यों है? स्त्री शिक्षा *माताओं-बहनों* (स्त्रियों) के लिए एक सुंदर पुस्तक है, एक एक ग्रह एक एक **चाँद** (अथवा सूर्य) है, इत्यादि में रेखांकित में अर्थविकार हो गया है।

लिंगविस्तार—पशु पक्षियों के जातिवाचक नामों में प्रायः लिंगविस्तार हो जाता है, जैसे बिल्ली, मैना, चिड़ियाँ, चील आदि स्त्रीलिंग हैं और कबूतर, साँप, तोता चूहा आदि पुंल्लिंग; परंतु सब साधारणतः नरमादा दोनों के लिए प्रयुक्त होते हैं।

(३) *मुहावरा*—(आलंकारिक प्रयोग)—खाना अथवा फा० (खोरी) किसी वस्तु के खाने के लिए आता है, अतः मार खाना गम खाना, गमखोरी घूस खाना घूसखोरी, घास खाना, धक्के खाना, झक खाना, भयखाना, आदि में अर्थविस्तार हो

गया। इसी प्रकार 'सूधे मन सूधे वचन सूधी सब करतूति' weighty answer, fat salary, hazy idea, sweet voice, कर्कश शब्द, मीठी बोली, कड़ा मिजाज इत्यादि भी अनेक प्रयोग प्रचलित हैं।

४—*सादृश्य*—गर्दन के सादृश्य पर घड़े की गर्दन, बोतल की गर्दन, मनुष्य की गोद के सादृश्य पर गंगा की गोद इत्यादि। इसी प्रकार बंदूक का घोड़ा, घड़ी का कुत्ता, अनन्नास अथवा ईख की आँख, नदी की शाखा, जीवन का स्रोत, जीवन की पुस्तक, सारंगी के कान, ज्ञान का आलोक, मौर का घर, चींटियों की फौज, नारियल का खोपड़ा, तलवार से कलम की मार तेज है, क्रोधाग्नि इत्यादि में भी अर्थविस्तार हो जाता है।

५—*लाक्षणिक प्रयोग अथवा उपचार*—(क) अंग से अंगी का बोध—दशानन (दस मुख) अर्थात् रावण, सुग्रीव (सुंदर ग्रीव) अर्थात् बालि का भाई सुग्रीव, तुम अद्भुत जीव (मनुष्य) हो, चोटी (हिन्दू) दाढ़ी (मुसलमान) का मिलना कठिन है; two heads of cattle (दो जानवर), Two hands (आदमी) are short in this office. A fleet of ten sail (जहाज), इत्यादि।

(ख) *बाह्य लक्षण से व्यक्ति अथवा वस्तु का बोध*—घाँघरा रिजमिंट (स्त्री पलटन), सफेद पगड़ी (पादरी), लाल पगड़ी (सिपाही), Blue jacket (seamen = समुद्री आदमी), peticoat government (स्त्रियों का शासन), Red Shirts (रूसी सिपाही अथवा खाकसार वालंटियर) इत्यादि। इसी प्रकार 'मैं कैंची (Scissors) पीता हूँ से 'मैं कैंची मार्का सिगरेट पीता हूँ' है, पैरट (parrot) का मूल्य क्या है' से आशय 'पैरट (तोता), मार्का पालिश का मूल्य क्या है' है; इसी प्रकार Cobra

555, 501, passing Show, White Horse; इत्यादि अनेक बाह्य चिह्न समस्त वस्तुओं के लिये प्रयुक्त होते हैं।

(ग) *लेखक से रचना अथवा जगह से वस्तु का बोध*—वह शीराजी (शीराज की बनी शराब) पीता है, वह शैम्पेन (शैम्पेन की बनी शराब) पीता है, वह पोर्ट (पोर्टो की बनी मद्य) पीता है, मैंने शेक्सपियर (उसकी रचनाओं) का अध्ययन किया है, निराला (की कविताओं) के साथ पंत (की कविताओं) का पढ़ना आवश्यक है।

(घ) *धातु से उसकी बनी हुई वस्तु का बोध*—तार (तार द्वारा जानेवाली सूचना अथवा सूचना का कागज), शीशा (शीशे से बना हुआ मुँह देखने का, लालटेन का अथवा अचार आदि का शीशा), Tin (टीन का बना हुआ डिब्बा अथवा पीपा), paper (कागज द्वारा बना हुआ अखबार) इत्यादि।

(ङ) *आधार से आधेय का बोध*—थाली (थाली में रक्खा खाना) परोस दी गयी है, मारवाड़ (मारवाड़ निवासी) धनी है, सारा शहर (शहर के रहनेवाले) कह रहा है, दो-चार पैसे का खोन्चा (खोन्चे में रक्खा सामान) खा लो, दुनिया (दुनिया के मनुष्य) भूखों मर रही है, वह पूरी बाल्टी (बाल्टी की वस्तु) पी गया, मैंने तीन तश्तरी (की वस्तु) खाई, उसने पूरी पतीली (उसकी वस्तु) साफ कर दी, इत्यादि।

(च) *गुण से गुणी का बोध*—रोजगार (रोजगारी) धन चाहता है, क्या नशा (नशील वस्तु) पी लिया है? विद्या (विद्यार्थी) शांति चाहती है।

(छ) *अंश से समस्त का बोध*—आओ रोटी (खाना) खा लो, कुछ जलपान (नाश्ता) कर लो, पानी (नाश्ता) तो पीते ही जाओ, उसके पास पैसा अथवा रुपया (धन) है, वह टके अथवा

चार पैसे (धन) वाला है, मेरे पास तो फूटी कौड़ी अथवा कानी कौड़ी (धन) भी नहीं है इत्यादि ।

(१०) *प्रकरण अथवा परिस्थिति*—(अ) अनेकार्थकता—'कर' का अर्थ 'हाथ' है, परंतु हस्ती के साथ सूँड़, सूर्य के साथ किरण, जमीन आदि के साथ 'मालगुलारी' वेतन के साथ 'टैक्स' आदि हैं; कलम का अर्थ लेखनी है, परंतु वाटिका के साथ पेड़ की शाख होते हैं; अंक का अर्थ संख्या है, परंतु भाग्य के साथ विधान के अक्षर, नाटक के साथ उसका भाग, स्त्री के साथ गोद इत्यादि हो जाते हैं । इसी प्रकार 'दल' के समूह, सम्प्रदाय, पत्ता, फौज आदि अनेक अर्थ हैं। Sister का अर्थ बहन है, परंतु अस्पताल में हेड डाक्टरनी तथा धर्म में एक श्रेणी आदि होते हैं ।

(११) *संक्षिप्त की प्रवृत्ति*—(अ) अनेकार्थकता—कोष से शब्दकोष अथवा धनकोष आदि, राम से पशुराम अथवा श्रीरामचंद्रजी आदि, सभा से ना० प्र० स०, राष्ट्रिय सभा अथवा साधारण सभा आदि, महात्माजी से गांधीजी अथवा अन्य कोई साधुमहात्मा, स्वामीजी से दयानंद सरस्वती अथवा अन्य कोई साधारण साधु, गोसाईंजी से तुलसीदास अथवा अन्य कोई प्रतिष्ठित धार्मिक व्यक्ति, कांग्रेस से भारतीय कांग्रेस, वियना की कांग्रेस, अमेरिका (फिलाडिलफिया) की कांग्रेस, संघ से राष्ट्रिय संघ अथवा अन्य कोई व्यापारी संघ आदि समझा जाता है ।

(अ) *मिथ्याप्रतीति*—प्रायः व्युत्पत्ति न समझने से निम्न प्रकार के अर्थविकार होते हैं—

(अ) *अर्थापकर्ष*—असुर 'असु' (प्राण) से बना है, परंतु इसकी व्याख्या अ+सुर होने के कारण इसका अर्थ दैत्य हो गया ।

(आ) *अर्थोत्कर्ष*—निखालिस = नि + खालिस अर्थात् जो खालिस न हो परंतु प्रायः लोग इसकी व्युत्पत्ति न समझने के

कारण निखालिस तेल अथवा घी माँगा करते हैं, जिससे इसके अर्थ 'खालिस हो गया है।

(इ) *अर्थभेद*—म्यूजियम (museum) में अद्भुत वस्तुएँ रहती हैं, अतः इसे जादूघर कहने लगे, एरोप्लेन चील की भाँति उड़ता है, अतः इसे चीलगाड़ी कहने लगे, Oxen सं० उक्षन से बना है और एकवचन है, परंतु en को बहुवचन प्रत्यय समझकर इसे बहुवचन मान लिया गया। इसी प्रकार cherries तथा peas एकवचन हैं, परंतु 's' को बहुवचन प्रत्यय समझकर इन्हें बहुवचन मान लिया गया तथा complex sentence को 'जटिल वाक्य' के स्थान में 'मिश्रित वाक्य' कहने लगे।

(ई) *अर्थविस्तार*—गोपाउ=घे (म० लो)+पाउ (पुर्त० रोटी) =रोटी ले, परंतु भ्रम से गोवा के रोटी बेचनेवालों को ही कहने लगे, तत्पश्चात् इसमें अर्थविस्तार हो गया और योरोपियन मात्र के लिए आने लगा। 'ॐ नमः सिद्धम्'' विद्यार्थियों के अर्थ न समझने के कारण 'ओना मासी धम हो गया और मुंडी पढ़ना प्रारंभ करने में मंगल के लिए आने लगा।

सहायक ग्रंथसूची

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम
१—अष्टाध्यायी	पाणिनि
२—अशोक के धर्मलेख	जनार्दन भट्ट
३—अशोक	भंडारकर
४—एल्फाबेट	टेलर
५—एलीमैंट्स आव दी साइंस आव लैंग्वेज	आई० जे० एस० तारापुरवाला
६—एवोल्यूशन आव अवधी	बाबूराम सक्सेना
७—ओरीजिन एण्ड डेवलपमैंट आव बंगाली लैंग्वेज	एस० के० चटर्जी
८—ओरीजिन आव लैंग्वेज	फ्रार
९—ओरीयंटल एण्ड लिंग्युस्टिक स्टडीज	ह्विटनी
१०—आउट लाइन आव इंडियन फिलालॉजी	जोन बीम्स
११—कम्पैरेटिव फिलालाजी	गुने
१२—कम्पैरेटिव ग्रैमर आव द्रविड़ लैंग्वेजेज	गोल्डवैल
१३—कम्पैरेटिव ग्रैमर आव माडर्न आर्यन लैंग्वेज आव इंडिया	जोन बीम्स
१४—ग्रैमर आव हिंदी लैंग्वेज	कैलाग
१५—टैम्पेस्ट	शेक्सपियर
१६—तुलनात्मक भाषाशास्त्र	मंगलदेव शास्त्री
१७—नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४६ अङ्क २	
१८—प्राचीन लिपि माला	गौरीशंकर हीराचंद ओझा

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम
१६—ब्रजभाषा और लिपि	धीरेंद्र वर्मा
२०—भारतीय इतिहास की रूपरेखा	जयचंद्र विद्यालंकार
२१—भाषाविज्ञान	श्यामसुंदरदास
२२—भाषारहस्य	” ”
२३—भाषा और साहित्य	” ”
२४—भाषाविज्ञान	नलिनीमोहन सान्याल
२५—मैनुअल आव काश्मीरी लैंग्वेज	ग्रियर्सन
२६—रेस एण्ड लैंग्वेज	लैफब्रे
२७—राबिन्सन क्रूसो	डैनियल डि फो
२८—लैंग्वेज	जैस्पर्सन
२६—लिंग्युस्टिक सर्वे आव इण्डिया भाग १ तथा २	ग्रियर्सन
३०—लाइफ एण्ड ग्रोथ आव लैंग्वेज	ह्विटनी
३१—स्टडी आव लैंग्वेज	ब्लूम फील्ड
३२—विश्वभारती खंड १ तथा २	
३३—साइंस आव लैंग्वेज भाग १ तथा २	मैक्समुलर
३४—हिंदी भाषा का इतिहास	धीरेंद्र वर्मा
३५—हिंदी व्याकरण	कामताप्रसाद गुरु
३६—हिस्ट्री आव लैंग्वेज	कैलाग

तथा

हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी, फारसी, अरबी इत्यादि के अनेकों शब्दकोष तथा पत्रपत्रिकाएँ।